राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत: अखिलभारतीय तथा विशेषत: राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर,
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी;
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई, प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि

ग्रन्थाङ्क ८४

कविया चिमनजी कृत

सोढायण

[कवि की अन्य रचनाओं सहित]

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

१९६६ ई०

कविया चिमनजी कृत

सोढायण

[कवि की अन्य रचनाओं एवं विस्तृत भूमिका सहित]

सम्पादक

श्री शक्तिदान कविया, एम० ए०

शोध सहायक, हिन्दी विभाग

जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्रकाशनकर्त्ता

संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२२
प्रथमावृत्ति १०००

भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८७

ख्रिस्ताब्द १९६६
मूल्य ७.००

मुद्रक : जगदीशचन्द्र स्वर्णकार, अजन्ता प्रिण्टर्स, जोधपुर.

अनुक्रमणिका



संचालकीय वक्तव्य



राजस्थान मे प्राचीन समय मे जिन राजपूत जातीय क्षत्रियो का प्रभुत्व रहा उनमे परमार जाति सर्व प्रमुख थी। राजस्थानीय सस्कृति का केन्द्र-स्थान अथवा उद्‌गम-स्थान अर्बुदाचल—आबू पर्वत समझा जाता है। सर्व प्रथम आबू के आसपास का प्रदेश ही राजस्थानोय क्षत्रिय, वैश्य और कृषक-वर्ग का मुख्य निवास रहा और उसी प्रदेश से इन वर्गों का विकास और विस्तार हुआ।

आबू के आसपास के भूप्रदेश पर प्राचीन काल मे जिन राजपूत जातीय क्षत्रियो का प्रभुत्व रहा उनमें परमार वशोय राजपूत मुख्य थे और इसीलिये परमार जातीय क्षत्रियो की उत्पत्ति का मूल स्थान भी आबू ही माना जाता है। धीरे-धीरे परमारो का वश-विस्तार बहुत हुआ और उन्होने सारे मारवाड़—जो आबू के पश्चिम मे मरुभूमि स्वरूप विशाल भूप्रदेश है—उस पर अपने वश का आधिपत्य-स्थापन किया। इसी तरह उन्होने मेवाड, मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र मे भी अपने अनेक राज्य स्थापित किये। उज्जयिनी का इतिहास-विश्रुत विक्रमादित्य भी इसी परमार-वंश का एक प्रमुख राजा था—ऐसा उल्लेख मिलता है। बाद मे मालवा मे प्रसिद्ध हुए राजा मुज और भोज का परमार-वशीय होना तो स्वय उन्ही के शिलालेखो, दानपत्रो और ग्रन्थो के प्रमाणो से सुनिश्चित ही है। आबू के शासको ने बाद मे अपनी राजधानी चन्द्रावती बनाई जो आबू के निकट, गुजरात, सौराष्ट्र, सिध, मारवाड़, मेवाड और मालवा के प्रधान राजमार्गों के केन्द्रस्थान पर अवस्थित थी।

आबू के परमारो का वश-विस्तार बहुत हुआ और उन्होने सिंध और मारवाड़ के अनेक स्थानों पर अपने छोटे-छोटे ठिकाने कायम किये। इनमे नौ स्थान मुख्य थे जो परमारो के गढ या कोट कहे जाते थे और इन्ही नव कोटो के सकेत-स्वरूप राजस्थानी साहित्य मे मरुभूमि अर्थात् मारवाड़-प्रदेश की भूमि को सीमा का सूचन करने वाली **'नव कोटी मारवाड़'** यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गई। ये नौ कोट अर्थात् गढ परमारो के अधीन थे इसलिये यह सारी भूमि परमारो को

कही जाती थी। अतः राजस्थान मे यह भी दूसरी लोकोक्ति प्रचलित रही कि 'प्रथमी बडा परमार प्रथमी परमारा तणी'। परमारो के अभ्युदय के साथ-साथ राजस्थान मे अर्थात् आबू ही के प्रदेश मे एक ऐसे ही दूसरे क्षत्रिय-राजकुल का प्रादुर्भाव हुआ जो प्रतिहार वश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वश ने परमारो से जालोर का दुर्ग छीन लिया और उसने वहाँ से अपनी प्रभुसत्ता फैलाने का प्रयत्न किया। जालोर के बाद प्रतिहारो ने परमारो का दूसरा बडा दुर्ग मण्डोर अपने अधीन किया। इन्ही प्रतिहारो के साथ-साथ इस प्रदेश मे एक और तीसरा क्षत्रिय-राजकुल प्रसिद्धि मे आया जो चाहमान अर्थात् चौहान राजवंश के नाम से विख्यात हुआ। इन चौहानो ने अजमेर के आस-पास का प्रदेश जो उस समय सपादलक्ष के नाम से प्रसिद्ध था, परमारो से छीन लिया। इन चौहानो ने अपना मुख्य निवास-स्थान शाकभरी अर्थात् साभर को बनाया। इस वश के राजा अजयपाल ने अजयमेरु दुर्ग अर्थात् अजमेर नगर की स्थापना की और उसे चौहानो की मुख्य राजधानी बनाई।

आबू के परमारो की एक शाखा ने मालवा के विशाल और रसाल प्रदेश को अपने अधीन किया और उसने भारत को इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन नगरी उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया। प्रतिहारो और चौहानो की प्रभुशक्ति बढती गई, जिससे आबू के परमारो की सत्ता क्षीण होती गई। धीरे-धीरे प्रतिहारो तथा चौहानो ने परमारो के उक्त प्रकार के मारवाड के नौ कोटो मे से बहुत से प्रसिद्ध कोट छीन लिये और अन्त मे देवडा चौहानो ने (जिन्होने बाद मे सिरोही को अपना राज्य बनाया) परमारो से आबू और उसकी निकटस्थ राजधानी चन्द्रावती को भी हस्तगत करके आबू के परमारो की राज-सत्ता सदा के लिये नष्ट कर दी।

मुहता नैणसी के उल्लेखानुसार परमार वंश की कुल ३५ शाखायें थी। इनमे सोढा और साँखला शाखा वालो का उल्लेख इतिहास मे विशेष रूप से मिलता है। सोढो का मुख्य ठिकाना सिंध प्रदेश के ऊमरकोट और पारकर मे रहा। सांखला वश का निवासस्थान बीच मे बीकानेर प्रदेश में जागलू रहा— राठोडो ने उनकी सत्ता नष्ट कर दी। सोढो ने सिन्ध के प्रदेश मे अपनी धाक जमाये रखी। मुसलमानी आक्रमणकाल मे सोढो ने बडी वीरता दिखाई और सैंकडो वर्षो तक वे मुसलमानो से लोहा लेते रहे। उनका मुख्य स्थान ऊमरकोट

प्राचीन काल से एक ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान रहा है और राजस्थानी सस्कृति का एक निराला ही केन्द्र रहा है। दुर्भाग्य से सोढो का यह क्रीडा-क्षेत्र अब पाकिस्तान मे चला गया है और अब सदा के लिये राजस्थान से बिछुड गया है। बडी आशका है कि शनैः शनैः यह पराक्रमी राजपूत जाति विधर्मियो के अत्याचारो के कारण नामशेष हो जायगी।

प्रस्तुत सोढायण काव्य उक्त सोढा-वशीय राजपूत जाति के गुण-गौरव का वर्णन करने वाला एक कथा-काव्य है। इसके रचयिता चारण कवि चिमनजी हैं। जिस तरह राजस्थानी मे हमीरायण, वीरमायण आदि ऐतिहासिक वीरो की गाथा विषयक रचना हुई है उसी प्रकार की यह भी एक ऐतिहासिक राजकुल की कीर्त्ति कथा करने वाली रचना है। कवि अधिक प्राचीन नही है। प्रायः ४ वीसी पूर्व ही उनकी मृत्यु हुई थी। अत. यह कोई वैसी प्राचीन रचना नही है तथापि जिस सोढा वश का इसमे वर्णन किया गया है वह हमारे इतिहास के साधनो मे एक उल्लेखनीय स्थान रखता है।

इस पुस्तक के सम्पादक कविया श्री शक्तिदानजी ने बहुत परिश्रम एव खोज के साथ पुस्तकगत वर्णन का यथेष्ट स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया है। रचना की केवल एक मात्र ही हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है और वह भी बहुत जीर्ण-शीर्ण दशा मे। इस पर से सम्पादकजी ने बडे परिश्रमपूर्वक पाठ तैयार किया है और साथ मे कठिन लगने वाले शब्दो का अर्थ स्पष्ट करने के लिये मूल रचना के नीचे पाद टिप्पणी के रूप मे विस्तृत शब्दावली दी है। इससे रचना की भाषा और भाव दोनो के समझने मे पाठको को बहुत मदद मिलेगी।

ग्रन्थ मे वर्णित ऐतिहासिक तथ्यो का स्पष्टीकरण करने के लिये जो विवेचन किया गया है वह सर्वथा सगत है, ऐसा नही कहा जा सकता, क्योकि इस विषय पर प्रकाश डालने वाली प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री बहुत ही अल्प-उपलब्ध होती है। भाटो और चारणो द्वारा ग्रथित जनश्रुतियो मे ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम प्रतीत होता है। अतः ऐसी रचनाओ का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्याकन करना वास्तविक नही होता। तथापि ऐसी जनश्रुतियो का उपयोग हमारे जातीय एव राष्ट्रीय सांस्कृतिक आलेखन मे अवश्य सहायक और उपकारक हो सकता है।

विद्वान् सम्पादक ने इस दृष्टि से भी प्रस्तुत पुस्तक के विवेचन में जो परिश्रम उठाया है, वह उपयोगी सिद्ध होगा। लगन और उत्साह पूर्वक यह पुस्तक तैयार कर "राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला" के सुन्दर पुष्प के रूप मे सम्पादकजी ने प्रस्तुत की है उसके लिये मैं अपना हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

दिनाङ्क १५ मार्च, १९६६ ई०

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर.

मुनि जिनविजय
सम्मान्य सञ्चालक



भूमिका

प्रारंभ—

भारत की तपोभूमि आदिकाल से ही अपनी विविध विशिष्टताओं के कारण विश्व मे कमनीय कान्ति का केन्द्र रही है। आतरिक एव बाह्य सौष्ठव के फलस्वरूप इस देश को 'जगद्गुरु' की अनुपम उपाधि से अलकृत किया गया था। उत्तर मे हिमाच्छादित उज्ज्वल हिमालय के उत्तुग शृग, दक्षिण मे विशद एव विशाल नीलाम्बुधि, पश्चिम मे अरब-सागर की लोनी लहरिकाएँ तथा पूर्व मे बगाल की सुषम श्याम-खाडी और मध्य-देश मे गगा-यमुना के पवित्र प्रवाह आदि के कारण भारत सदैव सुरम्य व शस्य-श्यामल बना रहता है। इसका बाह्यरूप जितना सुभग एव सलौना है, आतरिक रूप उतना ही उदात्त, आभामय व अनुपम है।

इस देश के ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणो से धरती के समस्त मनुष्यो ने चरित्र-शिक्षा ग्रहण की थी। इसी कान्त कर्मभूमि पर जन्म लेने के लिये स्वर्ग के वासी और विलासी देवगण भी लालायित रहते थे। अध्यात्म-विद्या की अद्भुत आभा एव उपादेयता से निखिल विश्व भारत-भूमि के भव्यरूप की धाक मानता था। भूमि का प्रभाव वहाँ की सतति पर पडता है। राजस्थानी भाषा का एक दोहा इसी तथ्य की पुष्टि इन शब्दो मे करता है—

'भोम परक्खो हे नरां, कहा परक्खो बिंद ।
भुय बिन भला न नीपजै, कण त्रण तुरी, नरिंद' ॥१॥

भारत की वीर वसुधरा पर विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और चरणो से शूद्रो की उत्पत्ति हुई। उनकी पहचान उनके स्वभावानुसार आचरण से होती है।† क्षत्रिय-वर्ण के लक्षण श्रीमद्भागवत के एकादश-स्कध मे इस प्रकार दिये हैं—

'तेजो बल धृति: शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यम: ।
स्थैर्यं ब्रह्मण्यमैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमा' ॥

---

†विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजा: ।
वैराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचार लक्षणा ॥
[श्रीमद्भागवत]

अर्थात् तेज, बल, धैर्य, वीरता सहनशीलता, उदारता, उद्योग, स्थिरता, ब्राह्मण-भक्ति तथा ऐश्वर्य ये क्षत्रिय-वर्ण के स्वभाव हैं। एक अन्य प्राचीन मत के अनुसार महर्षि वसिष्ठ ने दैत्यो का वध करने के लिये आबू पहाड पर यज्ञादि अनुष्ठान के द्वारा अग्निकुण्ड मे से चार प्रकार के क्षयिओ को उत्पन्न किया था। ये चारो क्षत्रिय थे—परमार, प्रतिहार, चौहान और सोलकी। इन चारो के पीछे अनेक जातियाँ और उपजातियाँ बनती रही। परमार-वंश मे से ३५ शाखाएँ बनी, जिनके नाम राजस्थानी-ख्यातो मे विद्यमान है।

परमार जाति के क्षत्रिय शुरू से ही वीरता एव उदारता के क्षेत्र मे विख्यात रहे हैं। जगत्-प्रसिद्ध दानवीर विक्रमादित्य, भोज, जगदेव आदि क्षत्रिय परमार ही थे। किसी समय मे भारत पर परमारो का ही सर्वाधिक बोलबाला था। इनकी प्रसिद्ध राजधानियाँ उज्जयिनी, आबू एव धारानगरी थी, इस विषय का एक राजस्थानी सोरठा प्रसिद्ध है—

प्रथमी बडा पवार, प्रथमी परमारां तणी।
एक उजीणी, धार, बीजो आबू बैसणो॥१॥

इन्ही परमारो की एक शाखा सोढ नाम से प्रसिद्ध हुई जिस पर श्री चिमनजी ने 'सोढायण' ग्रथ का निर्माण किया। 'सोढायण' के कर्त्ता श्री चिमनजी कविया का जो कुछ भी जीवन-परिचय प्राप्त हुआ, उसे यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—कवि-परिचय

१. (अ) कवि की जन्मभूमि—

श्री चिमनजी कविया का जन्म १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जोधपुर जिले की शेरगढ तहसील के अतर्गत बिराई गाँव मे हुआ था। इनकी जन्म एव निर्वाण की तिथियो के बारे मे बिराई मे भी किसी को पता नही है और न ही तत्सम्बन्धी कोई लिखित सामग्री उपलब्ध हो सकी है। फिर भी, उपलब्ध बाह्य एवं अतःसाक्ष्य के आधार पर उनका जन्म, काव्य का प्रारभिक काल, अतिम ग्रथ-रचना व निधन-काल आदि के विषय मे यहाँ विचार किया जा रहा है।

(ब) जन्म, जाति व वंश-परंपरा—

श्री चिमनजी कविया गोत्र के चारण कुल मे उत्पन्न हुए थे। उनकी जन्म-भूमि बिराई गाँव मे ४ वास (मोहल्ले) हैं, जिनमे पश्चिम की ओर स्थित 'आथूणा वास' मे शिवदानजी के धडे (गोत्र खड) मे इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का

नाम श्री लुद्रदानजी तथा पितामह का नाम श्री करनीदानजी था। श्री लुद्रदानजी के चार भाई थे। अन्य तीन उनसे छोटे थे, जिनके नाम क्रमशः महेसदानजी, सलजी और आवडदानजी थे। विधि की विडम्बना है कि आज करनीदानजी के चारो पुत्रो के वश मे एक भी व्यक्ति जीवित नही है। सवत् १९७५ वि० की महामारी से उस इलाके मे गाँव के गाँव उजड गये थे, जिसमे उक्त कवि का परिवार भी चल बसा। श्री करनोदानजी के सब से बडे पुत्र लुद्रदानजी के दो लडके हुए, बडे तो श्री चिमनजी और छोटे नवलजी थे। चिमनजी की सात पीढियो के नामो का एक दोहा रावल जाति के लोग 'रामत' [एक प्रकार का सास्कृतिक नृत्य विशेष, जिसके दर्शको मे किसी चारण का होना अनिवार्य समझा जाता है] मे प्रभात के समय आज भी गाते हैं। इस दोहे मे स्वय कवि सहित सातो पीढियो के नामो के अतिरिक्त चिमनजो की उदारहृदयता का भी आभास मिलता है। वह दोहा इस प्रकार है—

'सबळ[1], सिवौ[2], परभो[3] सकव, देवौ[4], करन[5], दिनेस।
कवियो जुग नांमा करै, लुदरावत[6], चिमनेस[7] ॥'

उपर्युक्त दोहे मे सबलजी से लेकर चिमनजी तक सातो पीढियों के नाम स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त कवि ने अपने रीतिग्रथ 'भाखा-प्रस्तार' के अत मे एक छप्पय द्वारा अपना पूरा पता इस प्रकार व्यक्त किया है:—

'मारवाड थळ मद्ध, डडग थांनक विराई।
जात सु कवियो जांण, सकत मालण सरणाई।
वसू आथमणं वास, घडै सिवदांनां सद्धर।
दादौ 'करनीदांन', पिता 'लुदरेस' वडै पर।
सीखियो भेद जुढियं सकव, करनांणी 'जीवण' कनै।
तिण मांय मदत 'खेतल' तणी, महाबुद्ध दीवी मनै ॥'१॥

उपर्युक्त छप्पय मे कवि ने अपना ग्राम, जाति, आराध्यशक्ति, वास, घडा आदि सभी परिचयात्मक तथ्यो का प्रदर्शन किया है। श्री चिमनजी और नवलजी दोनो भाइयो के बीच मे और कोई सतान नही थी और कुछ समय पश्चात् ही उनकी माताजी का देहान्त हो गया था। दोनो भाइयो की उम्र में दो वर्ष का अतर माना जा सकता है। श्री नवलजी का देहान्त स० १९७२ वि० मे हुआ। सहगोत्री और निकट के सम्बन्धी होने से मेरे पिताजी श्री गोविंददानजी को भी वह वर्ष भली-भाँति स्मरण है। वे उस समय १२ वर्ष की आयु के थे और नवलजी उन्हे बहुत लाड प्यार से रखते थे।

नवलजी की मृत्यु के समय उनकी आयु मेरे पिताजी के कथनानुसार लगभग ८० वर्ष की थी। इसी प्रसग मे पुरानी बहियाँ, चौपनिये और हस्तलिखित पुस्तको को पढते समय एक चौपनिया मे मुझे नवलजी के विवाह का निमतरा[1] [निमत्रण] प्राप्त हुआ। यह निमत्रण बरात रवाना होने से एक दिन पूर्व लिया जाता है। उनका निमतरा स० १९३९ वि० कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को लिखा हुआ है और लिखावट के हस्ताक्षर स्वय चिमनजी के हैं। चूंकि नवलजी ने दो विवाह किये थे, अतः निश्चित रूप से यह द्वितीय विवाह का निमन्त्रण ही होना चाहिए। यदि नवलजी की आयु पूरी ८० वर्ष की मानी जाय, तो उनके देहान्त के वर्ष स० १९७२ वि० से अस्सी वर्ष पूर्व स० १८९२ उनकी जन्म तिथि मानी जा सकती है। तदनुसार उनके द्वितीय विवाह के समय स० १९३९ मे उनकी आयु ४७ वर्ष की हो जाती है। यदि नवलजी का जन्म सं० १८९२ वि० मे हुआ माना जाय, तो श्री चिमनजी का स्वत. ही दो वर्ष पूर्व अर्थात् स० १८९० वि० मे होना चाहिए।

२. शिक्षा—

संवत् १८९० वि० मे श्री चिमनजी का जन्म हुआ था। मातृ-सुख से तो वे बचपन मे ही वंचित हो चुके थे, किन्तु बिराई से ४ कोस दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित ग्राम जुढिया मे, जहाँ चिमनजी का ननिहाल था, वे अपने प्रसिद्ध विद्वान् मामा श्री जीवणदासजी लालस के पास काव्य का अध्ययन करते रहें। श्री जीवणदासजी लालस स्वयं अच्छे कवि एव डिंगल के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके द्वारा लिपिबद्ध महाकवि ईशरदासजी बारहट के सात ग्रन्थ एक ही जिल्द में सगृहीत मेरे देखने मे आए हैं, तथा जीवणदासजी जोधपुर के महाराजा मानसिहजी के भी कृपापात्र थे। काव्य-भेद की शिक्षा-दीक्षा मे मुख्यतया श्री जीवणदासजी तथा साथ मे खेतसीजी* लालस का भी सहयोग रहा प्रतीत होता है, जैसा कि

---

[1] वह मागलिक सूची जिसमे सम्बन्धियों एव मित्रों द्वारा दूल्हे को उपहार स्वरूप दी गई राशि या वस्तुओ का विवरण लिखा जाता है। लिखने के पश्चात् उस पर कुकुम की बूंदें छिडकी जाती है।

*लोगों में ऐसी किंवदती है, कि चिमनजी के ननिहाल वालों को खेतपाल (क्षेत्रपाल) भैरव का वरदान था, कि तीन पीढी तक काव्य-रचना का चमत्कार लाळसो मे रहेगा और बाद मे उनके भानजो मे चला जायगा। उस हिसाब से प्रथम भानजे चिमनजी ही साबित हुए थे। खेतल शब्द खेतपाल भैरव तथा खेतसी व्यक्ति-विशेष दोनो के अर्थ मे प्रयुक्त हो सकता है; सत्य क्या था यह ईश्वर ही जाने।

चिमनजी ने साभार स्वीकार किया है। 'अपने ग्रथ भाखा-प्रस्तार' के अत मे लिखे एक परिचयात्मक छप्पय के अतिम दो चरण 'उल्लाला' के अतर्गत कवि लिखता है :—

'सीखियो भेद जुढियं सकव, करनांणी 'जीवण' कनं।
तिण मांय मदत 'खेतल' तणी, महाबुद्ध दीधी मनं ॥'

श्री चिमनजी के समय चारण-पुत्रो को काव्य के नाना भेद सिखलाने की एक सामान्य प्रथा थी। यह कार्य गाँव के वयोवृद्ध विद्वानो द्वारा सपन्न हुआ करता था। जो शिष्य जीवणदास जी जैसे धुरधर विद्वान् का तो भाणेज हो, साथ ही उनसे ही विद्याभ्यास कर पारगत हुआ हो, फिर उसकी विद्वत्ता का तो कहना ही क्या? राजस्थान मे कहावत प्रसिद्ध है कि 'मामा ज्यारा मारका, भूडा क्यू भाणेज।' इस प्रकार चिमनजी काव्य-रचना मे दक्ष होकर पुनः अपनी जन्मभूमि मे आकर बस गए और घर का काम-काज चलाने मे व्यस्त हुए। उन दिनो घर मे माता तो थी नही, पिता वृद्ध थे, दोनो भाइयो का विवाहादि होना शेष था और घर की आर्थिक स्थिति प्रायः गिर चुकी थी। फिर भी हिम्मत नही हारी और जैसे-तैसे घरेलू उद्योगो मे चित्त रमाने की चेष्टा करने लगे।

३. आजीविका, भ्रमण व ग्रंथ-रचना—

व्यक्ति जैसे स्थान पर रहता है, वहाँ के वातावरण का उस पर प्रभाव पड़ता ही है। उस समय के गाँव और विशेषतः रेगिस्तानी आँचल तो बहुत ही पिछडा हुआ एव रूढिग्रस्त था। वहाँ रह कर चिमनजी जैसा व्यक्ति कैसे जीविकोपार्जन करता? घर की आर्थिक स्थिति पहले से ही अच्छी नही थी और इधर 'काल मे इधकमासा' [अकाल मे अधिक मासा] वाली कहावत चरितार्थ करता हुआ मारवाड मे स० १९२५ का भयंकर दुर्भिक्ष पडा। अनाज तो सर्वथा उत्पन्न ही नही हुआ था और न कोई अन्य उद्योग धधा था, जिसके आधार पर सुख-पूर्वक जीवन यापन किया जा सकता। ऐसी दशा मे जनता शिर पर गूदडे लाद कर सिंध और मालवा मे मजदूरी करने को रवाना होने लगी। जो लोग घर का मोह छोडना पसद नही करते थे अथवा सिंध व मालवे जाना अपनी मानहानी समझते थे, उन्होने अधिकाशत वृक्षो के छिलके तोड-तोड कर उसी के आटे से उदरपूर्ति करनी आरभ करदी। ऐसे सक्रमण-काल मे श्री चिमनजी ने

अपने वृद्ध पिता को छोड कही पर जाना पसद नही किया। उसी वर्ष बीमारी के प्रकोप व वृद्धावस्था के कारण चिमनजी के पिता श्री लुद्रदानजी का देहान्त हो गया, ऐसा वयोवृद्ध लोगो से मुझे ज्ञात हुआ है। एक ओर तो पिता का परलोक-गमन, दूसरी ओर वह भयकर दुर्भिक्ष, 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट:' वाली बात हो गई। उसी वर्ष चिमनजी ने 'छीलरिया' नाम के एक कुए पर मिर्ची की फसल बुआई थी। बिराई रेगिस्तान मे होते हुए भी वहाँ पर लगभग २०० कुए हैं तथा पानी की कोई कमी नही है, जिसका कारण भगवती श्री माल्हणदेवी का वरदान माना जाता है। वह बेरा [कुआ, गाँव से करीब एक मील दक्षिण-पश्चिम की ओर दूर था। मिर्चों को पिलाने का समय जाडे की मौसम मे भी रात को ही होता है। सर्दी मे आधी रात के समय हमेशा दूर पहुँच कर मिर्ची को पानी देते रहना उनके शरीर ने बिल्कुल नही माना। लोग भी कहने लगे कि तुम्हारी विद्या तो निष्फल सी प्रतीत होती है, जो इस प्रकार गँवार का सा जीवन निर्वाह कर रहे हो। साहित्य के ज्ञाता अन्य लोग तो राजा रईसो की सभाओ मे सम्मान पा रहे हैं, फिर तुम क्या नही अपना भाग्य अजमाते हो? किसी प्रकार से चिमनजी ने उस कृषक-वेदना से मुक्ति पाने का दृढ निश्चय कर ही लिया। उनके साझेदारो को जब यह पता चला तो उन्होने कवि को समझाना चाहा कि 'छीलरिया' जैसा बेरा बहुत अच्छी फसल देगा और इसको छोडना बिल्कुल ही ठीक नही है। इस पर चिमनजी ने एक दोहा कहा जो आज भी प्रचलित है, कि—

'छोगो बेरो छीलरो, छीलर बेरां छात।
(पण) मो नै घतं मोकळा, रोमा आधी रात ॥१॥'

अर्थात् छीलरिया बेरा तो दूसरे बेरो का तुर्रा एव ताज स्वरूपी होगा, किंतु मुझे तो यह आधी रात के समय बहुत ही दुःख देता है, अतः मैं तो इसे छोडूगा ही। यह दोहा सुना कर कुए पर फसल को संभालने का भार अपने अनुज श्री नवलजी को सौंप कर स्वय काव्य की शक्ति पर सुखी जीवन की तलाश मे निकल पडे। तत्पश्चात् उन्होने देख लिया कि कविगण अपने काव्य-चमत्कार से समाज मे बहुत सम्मानित हो रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति उस समय कवियो का बड़ा सत्कार करता था, जिसमे कि कवि प्रसन्न होकर उस पर भी कोई अच्छा सा दोहा कह दे। मामूली से दोहो को भी लोग जबानी याद रखा करते थे। इसके विपरीत यदि कवि का कोई अनादर कर देता, तो उस पर दोष अंकित कर उसका 'भूडा' अथवा 'विमर' [विषधर, निंदास्पद] कह देने की प्रथा

भी राजस्थान के कवियो मे बहुत प्रचलित थी। सामान्यतया लोगो की ऐसी धारणा थी, कि सुकवि लोग दग्धाक्षरो तथा अशुभ गणो से युक्त किसी पर कविता लिख दे, तो नाना प्रकार के अनिष्ट उस व्यक्ति को आ घेरते है। यह असत्य नही कि साधारण जनता कवियो से भय खाती हुई भी प्रेम प्रदर्शित किया करती थी। भय के दो पहलू होते हैं, एक तो विद्यमान शान्ति मे कोई अनिष्ट न हो जाय, इसकी आशका तथा दूसरी पूर्व-स्थिति से अधिक आनद को प्राप्त कर उसे स्थायी बनाये रखने की प्रवृत्ति। प्रथम की रक्षा के लिये हम अनिष्टकारी व्यक्ति से बचे रहते है, तथा दूसरे मे हम उसे प्रसन्न कर अधिक आनद की आकाक्षा करते हैं। जो बुरा करने का सामर्थ्य रखता है, उसी मे भला करने की शक्ति होती है। चिमनजी कविया ने भी घर की हीन आर्थिक दशा देखी और ऐसा कोई व्यवसाय का जरिया न देखा, जिससे रहन-सहन अधिक सुखकर बन पाता। ऐसी सूरत मे वे जोधपुर के आसपास घूमते रहे। उन दिनो जोधपुर की गद्दी पर महाराजा तखतसिंहजी (राज्य-काल स० १६००-१६२६ वि०) राज्य करते थे। श्री चिमनजी ने उन्ही महाराज के पाटवी राजकुमार श्री जसवतसिंहजी (द्वितीय) से लेकर ठेठ सूर्य तक मिलने वाली पूर्वजो की सपूर्ण नामावली छप्पयो के माध्यम से बनाई। करीब १४ छप्पय कवित्तो मे ऐतिहासिक आधार पर गुणमयी यह नामावली कवि ने रची थी, परंतु महाराजा से कवि का मिलन नही हो सका। वे राज दरबार की कठिन चहारदीवारी की आशा छोडकर मारवाड के मालानी परगने की ओर चल पडे।

बाडमेर के समीप ही 'मेलू' नामक एक गाँव मे गये जहाँ जाटों की घनी बस्ती थी। जब चिमनजी वहाँ पहुँचे तो बहुत से भले एव सहृदय किसान कवि के सौम्य एव सरल व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए और उन्होने उनका हार्दिक स्वागत किया। उन किसानो ने उन्हे कुछ दिनो के लिये अपने पास रहने का प्रेमपूर्वक आग्रह किया।

श्री चिमनजी वहाँ के भोले, सच्चे, ईश्वरभक्त एव शुद्धहृदय के लोगो के बीच मे अपने परिवार का सा आनद अनुभव करने लगे। उस 'मेलू' गाँव मे दीपा नामक एक चौधरी था, जो धन-माल से सपन्न और काव्य-रसिक व्यक्ति था। साहित्य एवं कला की अभिरुचि एव ज्ञान पर किसी जाति विशेष का ठेका नही होता। राजस्थान मे कहावत प्रसिद्ध है 'जात रौ कारण नी, रात रौ कारण हुवै' अर्थात् किसी गुण का कारण उस व्यक्ति की जाति नही बल्कि वह रात्रि है,

जिसमे वह जन्मा है। इसी कहावत के अनुसार दीपा तथा कुछ अन्य चौधरियों ने अनेक कवियो का पहले भी सम्मान किया था और चिमनजी को विशेष मोह से उन्हे अपने वहाँ रोके रक्खा। अन्त मे कवि ने जाते समय एक 'गुरा-सबदी' [गुरा-शब्दी] नामक डिंगल का लोकप्रिय छंद अपने जाट प्रेमियो की स्मृति मे सुना कर अपने आप को अतिथि सत्कार के ऋरा से मुक्त किया। गुरा-शब्दी को जनसाधारण सरलता मे याद कर लेता है, इसी दृष्टि से इसका महत्त्व है। कवि ने मेलू गाँव के अनेक मित्रो मे से प्रमुख चार चौधरियो को अपने आदर सत्कार का स्तम्भ मान कर कह दिया, कि—

'दिपो' खगार ' सूर' 'हरदाना', लियै कीत का लावा।
मेलूयै राड़धरै माही, च्यार चौधरी चावा।
माखू दातारां का मल्ला।
सुराजो सूमा ऊपर सिल्ला ॥१॥'

इस प्रकार 'च्यार चौधरी चावा' बताते हुए कवि ने बेचारे सूमो की छाती पर शिला रख दी।

श्री चिमनजी का जीवन प्राय घुमक्कड ही रहा। कभी गाँव मे आकर २-४ महीने रहते और फिर देशाटन करने चले जाते। अच्छे-अच्छे स्थान देखते, नये-नये मनुष्यो से मिलना होता, खूब आतिथ्य एव सम्मान मिलता, नाना प्रकार के मधुर व्यजन तथा सवारी को ऊँट व घोडे रीझ मे मिलते, यह था उस समय के अच्छे कवियो का ठाट, जिसे प्राप्त करने मे शुष्क-प्रदेश का कोई भी दु:खी कवि नही हिचकिचाता था। कुछ समय पश्चात् श्री चिमनजी मालानी परगने के कल्यारापुर, जसोल व सिराधरी ठिकानो मे पहुँचे। उस समय सिराधरी के ठाकुर रावलजी श्री वभूतसिहजी महेचा (राठौड) थे, जो अत्यन्त उदार प्रकृति के, विद्यानुरागी तथा कीर्ति व गुराो के ग्राहक थे। उन्होने चिमनजी की कविता सुनी और ऐसे प्रभावित हुए कि अपना खास 'जाखोडा' यानी रावलजी की सवारी का बहुमूल्य ऊँट जिस पर दूसरा व्यक्ति चढ नही सकता था, चिमनजी को सम्मानपूर्वक एव सहर्ष भेट कर दिया। ऊँट रेगिस्तान का जहाज कहलाता है और राजस्थान मे विशेषकर मारवाड, जैसलमेर व बीकानेर के ऊँट तो बहुत ही सुन्दर व सुडौल होते हैं। राजस्थान का मुख्य वाहन होने के कारण ऊँट व घोड़ा हजारो वर्षो से महत्व पाता आ रहा है। 'सो ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय' उक्ति के अनुसार सैकडो वर्षों से राजस्थान के कवियो ने

डिंगल-भाषा मे ऊँट व घोडों की उपयोगिता व सुन्दरता के बखान छन्दो व गीतो मे किये है। उसी परम्परा के अतर्गत जब रावलजी वभूतसिहजो ने अपना श्रेष्ठ एव सुडौल ऊँट श्री चिमनजी को ससम्मान नजर किया, तो कवि का मन उस पर मोहित हो गया और उसकी वाणी 'रोमकद' जाति के छदो मे गूज उठी।

'मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगळ, ऐसाय ऊंठ वभूत अपै।'

यह पक्ति प्रत्येक छद का चौथा चरण बन गई और 'ऐसा' शब्द की व्याख्या होती गई। रावलजी द्वारा प्रदत्त ऊँट के विषय मे इन छदो का सृजनकाल स० १९२९ वि० चैत्र शुक्ला नवमी है, जिसकी लिखावट का स्थान बाड़मेर जिले का गाँव 'हाथमा' है। फिर सं० १९३१ मे चिमनजी द्वारा रचित एक डिंगल का 'सांणोर' गीत लालजी नामक सोढा राजपूत (गाँव सियार निवासी) की प्रशसा मे कहा हुआ प्राप्त होता है। सियार गाँव उमरकोट के आसपास है, अतः कवि का उन दिनो वहाँ जाना सिद्ध होता है। स० १९३२-३३ मे वे भुज के तत्कालीन रावल श्री प्रागराव के पास पहुँचे और अपना प्रशस्ति-पूर्ण सुन्दर काव्य 'प्रागराव-रूपग' उन्ही दिनो रचा था। लौटते समय पालनपुर के बाव ठिकाने में कुछ दिन तक रहे तथा वहाँ के राणा उम्मेदसिंह चौहान की प्रशसा मे रणकी छन्द रचे, जिनमे रीझ की बरसात का सुन्दर रूपक है। वाव मे एक चारण कवि कृत 'जसुराम-राजनीति' नामक नीतिग्रंथ को प्रतिलिपि चिमनजी के हाथो से की गई प्राप्त हुई है, जो स० १९३३ के श्रावण वदि ५ के दिन की लिखी हुई है। बाद मे उसी वर्ष लगभग दो महीने पश्चात् वे उमरकोट इलाके मे प्रविष्ट हो गए, जहाँ सं० १९३३ वि० आश्विन शुक्ला ९वी को सम्मा जाति के यादव क्षत्रियो के शौर्य एव औदार्य का वर्णन-ग्रन्थ 'सम्मा रा झूलणा' की रचना की, तथा स० १९३३ वि० के कार्तिक शुक्ला ३ के दिन ऐतिहासिक वीरकाव्य 'सोढायण' की रचना सम्पूर्ण कर दी। इससे कवि की रचना-प्रतिभा की विलक्षणता एव स्फूर्ति प्रकट होती है। घाट के इलाके मे वे स० १९३५ के श्रावण-भाद्रपद तक रहे थे, ऐसा उनके द्वारा लिखित तिथियो से ज्ञात होता है। वे उसी वर्ष की शरद्-ऋतु मे पुनः अपनी जन्मभूमि विराई लौट आये थे। तब तक उनके अनुज नवलजी की अवस्था सुधर चुकी थी। घर पर रहते हुए भी इस सरस्वती के पुजारी ने विद्याभ्यास कम नहीं किया और 'भाखा-प्रस्तार' नामक एक रीति-ग्रन्थ लिखा, जिसमे रीति-काल मे चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई काव्य-शास्त्र की रीति सम्बन्धी समस्त बातें वर्णित हैं। श्री चिमनजी ने स० १९२५ में ही 'पिंगल री गणपत्री'

नामक इसी प्रकार के एक छोटे रीतिग्रन्थ की नकल उतार कर उसका अभ्यास किया था। उनके हाथो से लिखी सवत्-मिति सहित वह नकल भी मिला है, तथा उनके वे अक्षर भी अभ्यास प्रारभ का बोध कराते हैं। इस प्रकार स० १९३५ के वैशाख वदि ५ सोमवार के दिन यह काव्य-शास्त्र चिमनजी द्वारा रचा गया। तत्पश्चात् काफी अर्से तक चिमनजी वही रहे। बाद मे बिलाडा के दीवान (ठाकुर) श्री लक्ष्मणसिहजी की प्रशसा मे 'लिछमरण-सुजस-विलास' नामक एक ग्रन्थ रचा। उस ग्रन्थ को सुन कर बिलाडा के दीवान श्री लक्ष्मणसिहजी बडे प्रभावित हुए और कवि को अपने पास ही रखा। उन्ही दिनो दीवान साहब ने श्री चिमनजी को स्वर्ण के दो कडे और एक बढ़िया नस्ल की सुन्दर घोडी पुरस्कार मे दी। उक्त घोडी की सुन्दरता एव सुडौलता पर प्रसन्न होकर कवि के द्वारा कहा गया एक दोहा बहुत प्रचलित है, यथा—

'उर चोटी दोडी उडै, डीघोडी त्रिग डाण।
गजमोडी तोडी गढां, दी घोडी दीवाण॥'

एक ही दोहे मे वयण-सगाई के साथ एक से छ अनुप्रास तथा दोनो पक्तियो मे प्राय एक सा ही गण-क्रम आने से दोहा चमक उठा है।

'लिछमरण-सुजस-विलास' तथा 'प्रागराव रूपग' उक्त दोनो ग्रथो के अध्ययन से कवि का गुजरात, काठियावाड, तथा वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान का पूरा देशाटन किया हुआ सिद्ध होता है। आंखो देखा भौगोलिक वर्णन, प्रमुख नगरो के नाम एवं वहाँ की मुख्य बातो सहित यह काव्य स्वत: ही चिमनजी के बहुक्षेत्रीय ज्ञान का द्योतक है। एक ग्रन्थ 'हरीजस-मोख्यारथी' रचा, जिसमे नाना मत-मतान्तरो एव मान्यताओ का दार्शनिक व धार्मिक विवेचन है। सभी मतो से पक्षपात न रखते हुए सबकी अच्छाइयो को ही चिमनजी ने अपनाकर यह विशाल ग्रन्थ रचा है। एक ग्रन्थ 'जसवन्त-पिंगल' रचा, जिसमे छन्दो के अनेक भेदोपभेद उदाहरण सहित वर्णित हैं। स्मरण रहे, गीतो के भेदो का वर्णन करने वाला गीति-ग्रन्थ तो डिंगल-भाषा मे मंछाराम सेवग कृत 'रघुनाथरूपक' व किसनाजी आढा कृत 'रघुवर-जस-प्रकास' इस समय से करीब सौ वर्ष पूर्व ही बन चुके थे, किन्तु छन्द-शास्त्र का इतना विस्तृत, सरल व सुबोध ग्रन्थ शुद्ध डिंगल मे पहले नहीं था। यह चिमनजी की ही देन थी। किन्तु दुर्भाग्यवश वे अपना यह ग्रन्थ महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय), को सुना नही सके, जिनका नाम

छन्द के उदाहरणो के साथ चलता रहा, कारण कि कवि का देहान्त ग्रन्थ-समाप्ति के कुछ ही दिन पश्चात् हो गया था।

जीवन के आखिरी दिनो मे कवि ने पहले से चली आती परम्परा के अनुकूल कई देवताओ के स्तुति-काव्य भी लिखे। श्री रामदेव बाबा पर एक ग्रन्थ 'रामदे चरित' लिखा था, किंतु यह ग्रन्थ प्राय नष्ट हो चुका है। उसका बहुत कम अंश खडित प्रति के रूप मे प्राप्त हुआ है। सिंध मे रोडीसक्खर के औलिये पीर जमियलशाह पर भी छोटा सा ग्रन्थ बनाया हुआ है। उसका काफी बडा अश प्राप्त है। 'सनीसरजो रा छन्द' नामक एक शनिश्चर का स्तुति-काव्य भी छोटे आकार मे प्राप्त हुआ है। इसके अलावा कुछ फुटकर रचनाएँ भी प्राप्त हुई है, जिनका उल्लेख ग्रन्थ के अतिम भाग 'प्रकीर्णक-काव्य' नामक शीर्षक मे किया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण मे कवि के विषय मे बाह्य एव अत साक्ष्य के आधार पर अनेक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आये। भ्रमण एव जीविकोपार्जन के साथ ग्रन्थ-रचना का ऐसा प्रगाढ सम्बन्ध बना हुआ है, कि हमने उसे पृथक् करना उचित नही समझा। फिर भी पाठको की सुविधा के लिये श्री चिमनजी कविया द्वारा प्रणीत उपलब्ध समस्त रचनाओं की एक सूची रचना-काल तथा रचना-स्थान युक्त हमने तैयार की है, जो यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि सभी कृतियो पर रचना-काल या स्थान तो नही लिखा मिलता है, तथापि अधिकांश रचनाओ के विषय मे येनकेन प्रकारेण जो कुछ भी सही जानकारी मिल पाई, वह इस प्रकार है—

रचना का नाम	रचना-काल	रचना-स्थान
१ जोधपुर री वसावली	स० १९२५-२८ वि० के बीच मे	गाँव बिराई (कवि की जन्मभूमि)
२. ऊठ रा बखांण उर्फ रावलजी वभूतसिंघजी रा छद	स० १९२९ चैत्र शुक्ला ९	गाँव हाथमा (जिला बाड़मेर)
३ सोढै लालजी रौ गीत	स० १९३१ वि०	सियार (उमरकोट-क्षेत्र)
४. घोडै रा बखाण उर्फ सोढै जूझारसिंघ रा छद	स० १९३१-३५ वि० के बीच मे	चेलार (उमरकोट)

५. सोढै दुरजणसाल री गीत	सं० १६३१-३५ वि० के बीच	काटिया (उमरकोट)
६. प्रागराव-रूपग	स० १६३२-३३ वि० के लगभग	भुज (काठियावाड)
७. रांणै उमेदसिंघ रा छ्द	स० १६३३ वि० श्रावण मे	बाव (पालनपुर)
८. सम्मा रा भूलणा	स० १६३३ वि० आश्विन शुक्ला ६	कुडलिया (उमरकोट)
६. सोढायण	स० १६३३ वि० कार्तिक शुक्ला ३	सलामकोट (थाट)
१०. सोढै जालमसिंघ रा छ्द	स० १६३३ वि०	सलामकोट
११. परतापसिंघ रा छंद	स० १६३१-३५ वि० के मध्य	अज्ञात
१२. भाखा-प्रस्तार	स० १६:५ वि० वैशाख कृष्णा ५ सोमवार	बिराई (जोधपुर)
१३. पिछमी पीर रा छ्द	स० १६३५ वि० के लगभग	उमरकोट-क्षेत्र
१४. सनीसरजी रा छ्द	अज्ञात	अज्ञात
१५. सोढै अणदसिंघ रा मरसिया	स० १६३५ वि०	केरटी (उमरकोट)
१६ हरीजस-मोख्यारथी	सं० १६४० वि० वैशाख शुक्ला १०	बिराई (जोधपुर)
१७ लिछमण-सुजस-विलास	स० १६४० वि० आपाढ शुक्ला १३, शनिवार	बिलाडा (जोधपुर)
१८ रामदे-चरित	स० १६४१-४४ वि० के मध्य	अज्ञात
१६. गुमानभारती री वेल	स० १६४०-४४ वि० के मध्य	गडा (जोधपुर)
२० हुकमभारती बावै री गीत	स० १६४० ४४ वि० के मध्य	अज्ञात
२१ जसवंत-पिंगल	स० १६४४ वि० के लगभग	विराई (जोधपुर)

४. धार्मिक विचार-धारा—

श्री चिमनजी 'दशा-पथ' के अनुयायी थे। 'दशा-पथ' १० नाम होते हैं तथा शिव-शक्ति की पूजा होती है। इस पथ का प्रचार उस युग मे बहुत ही अधिक था। राजा, महाराजाओ से लेकर साधारण ग्रामीण व्यक्ति तक उस पथ को मानते थे। आज भी जो लोग उस मान्यता मे विश्वास रखते हैं, उन्हे 'पथ' मे कहा जाता है। 'पंथ मे है' इसका अर्थ प्रायः दशा-पथ मे होने का ही होता है। हुकमभारती नामक एक स्वामो (जाति विशेष) शायद उनका गुरु था। ऐसा उनके एक डिगल-गीत से ज्ञात होता है, जो उन्होने हुकमभारती की प्रशंसा मे, 'आज हुकमेस दस नाम रौ उजागर, भारथो लिये सो भागधारी' कह कर रचा था। श्री चिमनजी दत्तात्रेयजी द्वारा चलाये हुए स्वामी (जिसे राजस्थान मे सांमी कहते हैं) धर्म के अनुयायी बन गये थे। एक बार तो उन्होने 'भेख' भो ले लिया था। 'भेख' का अर्थ भगवे वस्त्र धारण करना होता है। करीब दो-ढाई वर्ष उन्होने 'भेख' धारण किये हुए रखा। तत्पश्चात् गाँव मे भाइयो के पारस्परिक झगडे हो जाने से चिमनजी के निकट-सम्बन्धियो के विरुद्ध शेरगढ थाने मे शिकायत पेश हो चुकी थी। वहाँ इनको ओर से जवाब देने वाला अन्य कोई प्रभावशाली व्यक्ति नही था, अतः चिमनजी से अनुनय-विनय कर 'भेख' उतरवाया गया। 'भेख' की ऐसी प्रणाली है कि किसी को आगे धारण कराये बिना उतारा नही जा सकता। इस प्रथा का पालन कराते हुए लोगो ने एक नाई को भगवी चादर ओढा कर उनका व्रत निभाया। इसकी साक्षी ग्रामो में प्रचलित जातिगत उपहास-युक्त एक 'बांणी' है, जिसकी पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> 'सेरांखो तो शेरगढ पुगा, जाब करण कुण जाई।
> चवदे हाथ री चादर ओढायां, न्याल हो जासी नाई।
> रे चिमना ! भेख उतारो म्हांरा भाई।

इस प्रकार कई लोगो तथा अपने छोटे भाई के आग्रह पर उन्होने 'भेख' तो उतार दिया, किंतु उनका मन हमेशा सन्यास की तरफ ही लगा रहा। उनकी वृत्ति प्रारभ से ही चिंतन व मनन की ओर ही अधिक रही। सृष्टि का आरंभ कब और कैसे हुआ, अवतारो के विषय मे पूर्ण ज्ञान, लोक, इन्द्र, मनु आदि के विविध नाम, षट्मतो का पृथक्-पृथक् ज्ञान, अष्टाग योग एवं उसकी विविध क्रियाओ व साधनाओ आदि का चिमनजी को विस्तृत ज्ञान था, ऐसा उनके 'हरीजस-मोख्यारथी' ग्रंथ, जिसका रचनाकाल सं० १९४० वि० मिती वैशाख

शुक्ला १० है, से ज्ञात होता है। वे सभी धर्मों को सम्मान देने वाले विनम्र व्यक्ति थे, किंतु विभिन्न मत-मतान्तरो के विषय मे लिखने के उपरात वे अपनी आस्था की बात भी कह देते है। श्री चिमनजी परमज्ञानी, ईश्वर के अनत भक्त एव हृदय से योगी थे। परिस्थितियो ने उन्हे आजीवन लाचार बनाए रखा। उन्होने जीवन भर विवाह तो किया ही नही था; ऐसा था उनका विचित्र जीवन।

५. उदार एवं विनोदी प्रकृति—

श्री चिमनजी साधु वेश मे भी कुछ वर्षो तक सक्रिय सामाजिक व्यक्ति की भाँति घूमते रहे थे, ऐसा उनके विषय मे प्रचलित घटनाओ से ज्ञात होता है। बिलाडा के विद्याव्यसनी ठाकुर दीवान श्री लक्ष्मणसिंहजी को सुनाये गये दोहो मे भी ऐसा सकेत मिलता है। एक बार विराई गाँव मे रावलो की 'रामत' (एक प्रकार का सास्कृतिक अभिनय, जिसमे अनेक जातियो के स्वाँग खेले जाते है तथा काव्य एव संगीत का प्रवाह भी चलता रहता है) हुई। श्री चिमनजी भी वहाँ पर उपस्थित थे। जब भगवा वस्त्रधारी जोगी का स्वाँग आया, तो उसकी कला-प्रवणता पर रीझ कर कवि ने अपने हाथो मे पहने हुए सोने के कडे रावलो को दान मे दे दिये। श्री शिवदानोत, रामचदोत तथा भैरावत तीनो गोत्रीय धडो के सम्मुख इस रीझ के विषय मे तत्कालीन किसी कवि ने डिगल गीत की दो पक्तियाँ रच डाली थी, कि—

हर सिवदांन भैरहर चदहर, धजबन्ध देखे अह धडा।
जोगी तणै साग मे जोग्यो, कवियै 'चिमनै' दिया कडा॥

इसके अतिरिक्त इस कवि ने विनोद, व्यग्य आदि विषयक प्रहेलिकात्मक एव गूढार्थ सम्बन्धी अनेक सुन्दर मुक्तक रचे थे, जो गाँवो मे लोगो की जिह्वा पर आज भी रमण करते हैं। नारियल की टकी का बना हुआ हुक्का जो 'नारेलिया होका' कहलाता है, उसे जटाजूट जोगीश्वर के रूपक के साथ एक छप्पय मे बडे विलक्षण ढग से चित्रित किया है। वह छप्पय इन्ही दिनो एक सज्जन से प्राप्त हुआ, जो इस प्रकार है—

'जटाजूट जोगेस, तपे वन बीच अधतर।
हुवो तपस्या हीण, आयो सहर दय ऊतर।
उदियाचळ उथणाय, उभै परणाई रांणी।
सहर एक सासरो, एक वन हूता आणी।
झिनवी टोप वगतर झिलै, इच्छया रो सुत ऊपनो।
कवियांण 'चिमन' भाखै कवत, साच बात कन सप्पनो॥१॥'

'होका रूप हथाया' कहावत के अनुसार सभा के मनोरजक उपकरण हुक्के का इतना यथार्थ एव सुन्दर रूपक और इतने सरल ढंग से वयणसगाई सहित चित्रित करना सफल कवि का ही काम है। श्री चिमनजी अत्यन्त विनोदी प्रकृति के आशु कवि थे। कहते हैं कि 'लिछमण-सुजस-विलास' ग्रथ की रचना करने पर इनको बिलाडा के दीवान साहब ने हाथो मे पहनने के कचन के कडे नजर किये। उन कडो को देखकर किसी व्यक्ति ने उनसे पूछा कि क्या ये कडे शुद्ध सोने के निघोट है, अथवा अदर से थोथे ही है ? इस पर कवि ने स्वर्णकार के कला-कौशल एव गूढ कपट का प्रतीक एक दोहा कहा, कि—

मासै मे हाथी मढै, ज्यां री पड़ै न जांण।
कारीगर उण रा किया, दिया कडा दीवाण॥

अर्थात् जो स्वर्णकार मासा भर सोने मे हाथी के बराबर वस्तु को मढ देने की क्षमता रखता है, उस चतुर कारीगर के द्वारा बनाये गये इन कडो के विषय मे कुछ भी कहना बडा कठिन है। इसी प्रकार बिराई गाँव मे इनके समकालीन कुछ ऐसे निराले व्यक्ति थे, जिनके हास्यास्पद व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गीत के एक दुहाले मे उनके नाम चित्रित किये है। ऐसे व्यक्तियो मे एक तो मूला नामक सुथार था, जो इतना ठोठ व्यक्ति था, कि आटा पीसने की घरटी टाँचने जाता और हथौडे से उसका पुड़िया ही तोड डालता था। दूसरे व्यक्ति कुशलजी नामक चारण थे जो इतने निष्क्रिय, निठल्ले एव दरिद्री थे, कि उनके घर को बाड़ भी पूरी नही होती और न उनके पास दैनिक आवश्यकताओ की कोई भी वस्तु ही मिलती, उनकी इस दौलत पर भी कवि का ध्यान गया। एक व्यक्ति छतजी (छत्रदान) थे, जो इतने मक्खीचूस थे कि 'चमडी जाय पर दमडी नही' वाली कहावत को चरितार्थ करते थे। चौथे व्यक्ति वाँकजी (बाँकीदास) नामक कविया थे, जिनकी आवाज अत्यत पतली एव बारीक थी, तथा ऐसे बोलते थे मानो कोई महिला बोल रही हो। एक व्यक्ति मुकनजी (मुकुन्ददान) थे, जो मनघडन्त व भोली बाते करने मे बडे प्रसिद्ध थे। कपडे की बनी हुई नौली मे गोल ठीकरियो को घिस कर डाल देते तथा कमर पर बाधे फिरते और कहते कि रुपये लाभे हैं, अर्थात् कही पडे हुए रोकड रुपये मिल गये हैं। इस प्रकार की झूठी बातें किया करते थे। एक ही समय मे ऐसे विचित्र व्यक्तियो का एक साथ अवतार लेना मानते हुए कवि स्वय उन्ही के समान एक साधारणतम कवि बनता हुआ कहता है—

कव 'चिमनो' 'मूळो' कारीगर, दौलत 'कुसळ', 'छतो' दातार ।
'बांका' घसळ 'मुकन' री बातां, इतां लियो एकट अवतार ॥

इस प्रकार स्तुति मे निंदा वाली बात कहते हुए कवि ने उक्त व्यक्तियो को विपरीत गुणो से मडित कर अपनी विनोदी प्रकृति एवं वाक्चातुरी का अच्छा परिचय दिया है। ऐसा ही उनका एक दोहा एक कुए के विषय मे है, जो पीछे पृष्ठ ६ पर दिया गया है।

६. (अ) निर्वाण-स्थल व सम्वत्—

मुझे बिराई के वयोवृद्ध सज्जनो से ज्ञात हुआ कि श्री चिमनजी का देहान्त शेरगढ के निकट 'गडा' नामक गाँव मे हुआ था। वहाँ पर चिमनजी के महात्मा रूप को श्रद्धापूर्वक याद करने वाले आज भी कई भक्त लोग विद्यमान हैं, जो प्राय: निम्न वर्ग के है। उनमे से कई वयोवृद्ध पुरुषो को चिमनजी द्वारा रचित भजन व वाणियाँ याद हैं। मैं उनके अनेक भक्तो से मिला। भगवाना नामक एक मेघवाल ने, जो स्वय को चिमनजी का वशानुगत पथ-शिष्य बताता है, उनकी निर्वाण तिथि स० १६४४ वि० की आषाढ शुक्ला पूर्णिमा बताई है। आज भी उस दिन वहाँ उनका श्राद्ध मनाया जाता है। पक्ष या विपक्ष मे अन्य प्रमाणो के अभाव मे हमे इसी तिथि को उनकी निर्वाण-तिथि मान लेना पड़ता है।

(ब) सिद्ध-रूप में—

जीवन के आखिरी दिनो मे श्री चिमनजी का लोगो को ऐसा विश्वास हो गया था, कि वे कोई सिद्ध पुरुष हैं। 'गडा' गाँव मे जिस स्थान पर वे रहते थे, उनके 'झूपडे' के आगे एक खेजडो का वृक्ष था। वह खेजडी आज भी उस स्थान पर खड़ी है। गाँव के सभी वृद्ध एव बाल आज भी उसको 'चिमनो राम री खेजड़ी' कह कर सम्बोधित करते हैं तथा उस पर श्वेतध्वजा चिमनजी की स्मृति मे फहर रही है। जब मैं उस स्थल पर पहुँचा और कई वृद्ध लोगो ने मुझे ये सब बातें बताईं, तो मेरा हृदय गद्गद् सा हो गया। कहते हैं कि चिमनजी ने ६ महीने पूर्व ही अपना मृत्यु-दिवस बता दिया था। आखिरी दिनो मे केवल ईश्वर की वाणियाँ, भजन आदि रचा करते थे और एकान्त मे सन्यासी की तरह जीवनयापन करते थे। एक घोडी हमेशा रखते थे, जिस पर कही आना-जाना होता था। पूना मेघवाल ने मुझे बताया कि मूला नामक एक लडका एक बार ऐसा बीमार पडा, कि उसने ९ दिन तक अन्न और जल सर्वथा

त्याग दिया। ऐसी मरणासन्न दशा मे उसके पिता ने चिमनजी को ले जाकर दिखाया और वह करुण क्रदन करने लगा। उस पर चिमनजी ने उसी स्थान पर डिंगल का एक 'वैताल' छंद रच कर ईश्वर की स्तुति की, जिससे उसी समय उस रुग्ण बच्चे ने पानी माँगा और धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरने लगी। उस छद की कुछ पक्तियाँ जो पूना मेघवाल से प्राप्त हुईं, इस प्रकार है—

"वूहखापर बुरौ जाग्यौ, जमीं लीयां जाय।
दैत मारघौ सत तारचौ, सांम कीन्ही स्याय ॥१॥
इद राजा करै अरजां बळ लहै असथांन।
धणी बावन रूप धारचौ, जाचियौ जजमांन ॥२॥
भैरवौ अत दैत भडौ, सबाडां सूं वैर।
पीर वसिया पोकरण मे, सबस वसियौ सैर ॥३॥
प्रैहळाद ऊपर पिता कोप्यौ, रटण नीं दे राम।
साध कारण सिघ हूवा, कियौ नख सूं कांम ॥४॥
अविगत्त थांरा विरद अैहड़ा, सांमळौ भट साळ।
साध संतां जती सत्ती, रांम हौ रिछपाळ ॥५॥"

इस प्रकार ईश्वर की भक्त-वत्सलता की प्रशसा करते हुए अविगत परमेश्वर की आराधना की, तो उनका विश्वास सफल हो गया। इसी प्रकार एक बार ईंदा नामक मेघवाल ने चिमनजी को एक पत्र लिखने को कहा, तो उन्होने उत्तर दिया कि शाम तक आना, लिख दूगा। जब शाम को ईंदा उनके पास पहुंचा तो पत्र लिखा हुआ तैयार मिला। लिखित पत्र देख कर ईंदा को शका हुई कि न मालूम इन्होने क्या समाचार लिखे हैं और मैं क्या लिखाना चाहता था? किंतु जब चिमनजी ने वह पत्र उसे पढ कर सुनाया तो सभी सम्बन्धियो के नाम और इच्छानुसार समाचार सुन कर वह दग रह गया। उस दिन से ईंदा उनका पूर्ण भक्त बन गया। चिमनजी मे उसकी अटूट श्रद्धा हो गई। जब चिमनजी का देहान्त हुआ तो उनके स्थान पर दशा-पथ की रीति के अनुसार ईंदा ही शिष्य रूप मे पाट बैठा। जिस मार्ग से चिमनजी की अर्थी को श्मशान भूमि मे ले जाया गया था, उस पथ को भी उनके शिष्य आजीवन पास से गुजरते समय दडवत किया करते थे। आज भी चिमनजी के लिखे अक्षरों के कागज वे लोग बच्चो को ज्वर आदि हो जाने पर उन पर वारते हैं, जिससे उनका रोग-निवारण हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है। ऐसा भी कहते हैं कि चिमनजी के मुख्य अनुयायी शिष्य ईंदा ने एक बार चिमनजी को कहा कि वे उसके छोटे भाई दुरगा को

पढावें। चिमनजी ने उत्तर दिया था कि दीपावली की रात्रि को यदि वे जीवित रहे तो रात भर उस बच्चे को अपने पास रखेंगे और सुबह होते ही जितनी विद्या उनमे है, सब उस बच्चे को प्राप्त हो जायगी। साथ ही उन्होने यह भी कहा कि दीपावली तक वे शायद ही रहे और उससे पहले किसी को विद्या का भेद सिखा नही सकते। उसी वर्ष दीपावली के पूर्व आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को ही चिमनजी की आत्मा परलोक-गमन कर गई। उपर्युक्त तथ्यो मे कितना सत्य है, यह भगवान हो जाने। प्राय भक्त कवियो के बारे मे साधारण जनता चमत्कारो की भ्रामक धारणाएँ बना लेती है, जैसी कि महात्मा ईशरदासजी बारहट के विषय मे प्रचलित दत-कथाएँ आदि हैं। चिमनजी को अंतकाल तक किसी रोग ने नही आ घेरा था, किंतु तीन दिन पहले से उन्हे हिचकी आनी शुरू हो गई। जब उनकी हालत दबती नजर आई तो एक आदमी उनके भाई नवलजी को बुलाने विराई गया। नवलजी गडा मे उनके पास पहुँचे, उससे कुछ ही क्षण पूर्व चिमनजी का देहान्त हो चुका था। अन्त-समय में उन्होने अपने चारो ओर बैठे सभी लोगो से कहा था कि 'मुझे दाग न देकर समाधि देना।' इसके साथ ही अपने शिष्य ईंदा को समाधि के बाबत कई धार्मिक शपथें दिलवा दी थी। जब नवलजी ने ये समाचार सुने, तो कहा कि यदि ऐसा किया गया तो जाति के लोग उन्हे बोलने भी नही देंगे। अतः जो सकल्प ईंदा ने किया था, उसे सूर्य के सम्मुख खडे रह कर नवलजी ने ग्रहण किया कि इसके लिये कोई पाप लगे तो उसके भागी नवलजी हैं। ऐसी विधि करने के पश्चात् उनकी दाह-क्रिया की गई।

श्री चिमनजी की जो कृतियाँ मेरे हाथ लगी हैं, वे शायद उनके अनुज नवलजी गडा से उनका देहान्त होने पर ले आए थे। इस कवि ने जीवन मे कितनी कृतियाँ रची थी इसका पता लगाना कठिन है। उनके रचे हुए अनेक भजन, प्रभातियाँ, वाणियाँ आदि थी, जिन्हे कठस्थ किये हुए व्यक्ति तो आज ससार मे नही रहे, सिर्फ नमूना मात्र कही-कही मिलता है। चिमनजी को देखने का सौभाग्य प्राप्त होने वाले तीन वयोवृद्ध सज्जन मुझे मिले, जिनमे सर्वप्रथम विराई निवासी स्व० श्री गोरखदानजी कविया थे। श्री गोरखदानजी का देहान्त आज से करीब ग्यारह वर्ष पूर्व हो चुका है, किंतु उस समय उनकी आयु पूरे गाँव मे सब से अधिक थी। उन्होंने मुझे बताया था कि चिमनजी का व्यक्तित्त्व बडा ही प्रभावशाली था, तथा गौर वर्ण, बड़ी आँखे एव सुडौल शरीर था। दूसरे सज्जन भाडू ग्राम के निवासी श्री नाथुदानजी बारहट थे, जिनका स्वर्गवास करीब ९० वर्ष की

आयु मे सं० २०१८ कार्तिक वदि अमावस्या दीपावली के दूसरे दिन बुधवार को हुआ था। श्री नाथुदानजी राजस्थान के ऐसे विद्वान् थे, जिन्हे डिंगल और पिंगल के ६७ ग्रन्थ कठस्थ याद थे। उनसे मैंने चिमनजी की बातें सुनी थी और चिमनजी की कुछ कविताएँ भी उन्होने मुझे सुनाईं। श्री चिमनजी के मुख से ईश्वर-सम्बन्धी भजन व बाणियाँ श्री नाथुदानजी ने सुनी थी, वे उनकी मोहक स्वरलहरी की अत्यन्त प्रशसा करते थे। इसी प्रकार तृतीय वयोवृद्ध सज्जन बिराई निवासी श्री हीरजी रावल है, जो अभी जीवित हैं। उन्होने एक बार चिमनजी को देखा था, जब कि हीरजी ७-८ वर्ष के थे। अपने स्वर्गवास से दो वर्ष पूर्व चिमनजी बिराई आये थे, तब उनके पास एक पीले रंग की घोडी थी।

ऐसे महान् कवि का सुन्दर चेहरा हीरजी को आज भी याद है। हीरजी का कहना है, कि उन्होने ऐसे प्रभावशाली, कान्तियुक्त और ओजस्वी व्यक्ति आज तक विरले ही देखे हैं। उनकी दाढी व मूछो मे सफेद बाल आ चुके थे। श्वेतवर्ण का उनका वेश था और उनकी जबान से सुमधुर छन्दो की झकार श्रवण करने का सौभाग्य भी हीरजी को प्राप्त हुआ था। चिमनजी की जीवनी सम्बन्धी अधिकाश सामग्री मुझे इन्ही सज्जनो से प्राप्त हुई है।

श्री चिमनजी कविया के ग्रंथों की शोध—

श्री चिमनजी के काव्य का रत्न-भडार दुर्भाग्यवश इतने दिनो तक लुप्त रहा; किन्तु 'भागा पीछै बाहुडै, ताकोइ रग चढाय' वाली राजस्थानी कहावत के अनुसार यह भी हमारा सौभाग्य एव सरस्वती का अनुग्रह है, कि इस कवि की काव्य-कृतियाँ जीर्ण-शीर्ण अवस्था मे भी उपलब्ध हो गईं।

श्री नवलजी का सं० १९७२ वि० मे निस्सतान ही स्वर्गवास हो गया था। तत्पश्चात् उनके निजी-कच्चे आवास मे पडी हुई दैनिक उपयोग की साधारण वस्तुओ के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ की ओर किसी का भी ध्यान नही गया और समय बीतता ही गया। रद्दी चीजो की श्रेणी मे उनके ग्रथ भी अनाज आदि डालने के एक 'कणसारे' के तले में पडे रहे। दो वर्ष पश्चात् सं० १९७४ वि० मे हुई अतिवृष्टि के कारण वह 'कणसारा' गिर पडा और पानी से भीगे वे कागज बाहर फडफडाने लगे। उस समय मेरे पिताजी श्री गोविन्ददानजी कविया ने, जो केवल १४ वर्ष के थे, उन्हे देखा और उन गली हुई पुस्तको को उठा ले आये। यदि उस समय इन सडे-गले आकर्षणहीन कागजो की तरफ ध्यान नही दिया जाता, तो

साहित्य-जगत इस महाकवि के अमूल्य ग्रथो से सदा के लिये वचित रह जाता। श्री चिमनजी ने अपने ग्रंथो को सरकडे की कलम से बड़े-बडे अक्षरो मे लिखा था अतः भीगने पर भी पर्याप्त अश सुरक्षित था। वे ग्रथ इतने वर्षों तक तो पुरानी बहियो तथा हस्तलिखित पुस्तको के साथ लकड़ी के एक सन्दूक मे यो ही पडे रहे। उस सन्दूक के नीचे एक चुहिया ने छेद कर दिया, जो सीधी चिमनजी के काव्य का ही रसास्वादन करने लगी। इसी बीच मे जब मैं आठवी कक्षा मे आया तो डिंगल-काव्य मे वंशानुगत रुचि होने के नाते उन ग्रथो की ओर आकृष्ट हुआ। फिर ज्यो-ज्यो इस काव्य के मर्म को समझता गया, त्यो-त्यो बिखरे पन्नो को खोज करता रहा। करीब पिछले सात-आठ वर्षों से उनके एक-एक इच के टुकडे तक को बटोर कर तथा एक वस्त्र मे बाँध कर सुरक्षित कर रखा है। प्राय: उन ग्रथो की मैंने अपने हाथ से प्रतिलिपि भी कर ली है। उनके समस्त काव्य का मूल्यांकन पूर्णरूप से प्रस्तुत पुस्तक मे नही कर पाऊँगा, क्योकि यह कवि बिल्कुल अज्ञात है। तथापि इस अज्ञात महाकवि को साहित्य-प्रेमियो के समक्ष रखने का एक विनम्र प्रयास मैंने किया है। कवि की प्राप्य अपूर्ण रचनाएँ, जो सख्या मे १४-१५ हैं, सभवत: कही पूर्ण रूप मे मिल जायँ, अतः यह एक शोध का कार्य है। ऐसे कवि की कृतियो की शोध करना, उसकी प्रतिभा का विवेचन करना और उसे साहित्य-प्रेमियो के समक्ष प्रस्तुत करना भी एक प्रकार से ऋषि ऋण-परिशोध के बराबर है। इसी श्रद्धा से मैंने इस कार्य को उठाया है।

२. सोढा जाति का इतिहास—

प्राचीन युग मे मारवाड की सीमा अत्यन्त विस्तृत थी। पूरा मारवाड मुख्य नौ कोटो मे वँटा हुआ था और उन्ही से 'नवकोटी मारवाड' कहलाती थी। इन नौ कोटो मे किराड (वाडमेर के समीप), धाट (उमरकोट क्षेत्र), पारकर (उमरकोट से आगे का प्रदेश), पूगल (वीकानेर), मडोर (जोधपुर), लुद्रवा (जैसलमेर), आबू (अर्वुद), जालोर (जावालिपुर) और अजमेर थे। इस प्रकार मारवाड़ की सीमा मे जोधपुर, जैसलमेर, वीकानेर, सिरोही, जालोर, वाडमेर, अजमेर, उमरकोट तथा पारकर आदि क्षेत्र आ जाने से वह वर्तमान राजस्थान के लगभग आधे के वरावर वडा राज्य था। उक्त नौ कोटो की राजधानी परमारो

के समय मे किराड तथा परिहारो के समय मे मडोर कुछ समय के लिये अवश्य रही थी, ऐसे सकेत प्राचोन कविताओ मे मिलते है।†

किराड़ू (जिसका प्राचीन नाम किरातकूट अथवा किरातकूप भी सुना जाता है) उस युग मे स्थापत्य एव मूर्तिकला की दृष्टि से बडा भव्य नगर था। आज दिन भी वहाँ पर मन्दिरो एव मूर्तियो के खंडहर-स्वरूप जो अवशेष मिलते है, वे किसी भी सरस-हृदय दर्शक को मोहित किये बिना नही रहते। इसी किराडू मे स० १२१८ वि० के एक शिलालेख से, जो परमार सोमेश्वर के समय का है, सिंधुराज परमार का मरुदेश का राजा होना सिद्ध होता है।* उसो किराड़ू पर वहुत प्राचीन काल मे राजा बाहडराव परमार ने राज्य किया था, जो इतिहास मे धरणीवराह के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ। इस बाहडराव के छाहडराव नामक पुत्र था। बाहडराव (जिसका प्राचोन नाम वाग्भट सुनने मे आता है) के नाम से बाहडमेर (वाग्भटमेरु) शहर बसा और उसके पुत्र छाहड के नाम से छाहडार (छाहड़सर) नामक गाँव बसा, जो आज भी बाडमेर-क्षेत्र मे चौहटन के पास स्थित है, और इसी नाम से पुकारा जाता है। इस छाहड़राव के दो पुत्र हुए, सोढा और साँखला। साँखला के लिये मुहता नैणसी की ख्यात मे 'वाघ परमार' अथवा 'साखलौ वाघ' नाम भी आते हैं। सोढा शब्द संस्कृत के 'सोढ' से बना है, जिसका अर्थ होता है वोर, सहिष्णु, समर्थ आदि। दूसरे भाई वाघ (व्याघ्र) का नाम भो नाहर-स्वरूप शोर्य का प्रतोक है। स० १३८१ वि० के एक सस्कृत शिलालेख मे साखलो के लिये 'शखुकुल' शब्द लिखा है। साखले महीपाल का पुत्र रायसी बीकानेर राज्य के जागलू प्रदेश मे विक्रम की १२वी

---

†किराडू पर धरणीवराह परमार का अधिकार था, तब नौ कोट उसके, अधिकार मे रहे थे, ऐसा एक प्राचीन छप्पय से ज्ञात होता है, जिसके अंतिम दो चरण इस प्रकार हैं—

'नवकोट किराडू संजुगत, थिर पँवार-हर थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइया, कोट बांट जू-जू किया।।'

मडोर पर परिहारो के आधिपत्य के समय शेष ८ कोट मडोर के अधिकार मे रहे थे, ऐसा 'नवकोटा मडोर' अंतिम चरण वाले एक प्राचीन दोहे से प्रकट होता है।

*श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ, 'मारवाड का इतिहास', प्रथम भाग पृ० १०।

शताब्दी के आसपास गया और वहां रहने लगा।† इससे वाघ साखले का समय और भी अधिक प्राचीन सिद्ध हो जाता है। मुहता नैणसी की ख्यात के अनुसार वैरसी वाघावत का पुत्र राणा राजपाल हुआ और राजपाल के तीन पुत्र—छोहिल, महिपाल तथा तेजपाल थे। इसी महिपाल का पुत्र रायसी था,* जिसका उक्त वर्णन श्री ओझाजी ने किया है। उपर्युक्त सवत् के आधार पर रायसी से छ पीढी पूर्व बाहडराव (धरणीवराह) का समय ठहरता है। बाहड़राव के समय का ऐतिहासिक विवेचन तो आगे किया जायगा, किन्तु यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उक्त बाहडराव के पुत्र छाहड ने अपनी राजधानी कोहिलापुर (किराडू के पास ही) बसाई। कोहिला नामक एक पर्वत‡ पर आदिशक्ति हिंगुलाज का स्थान है और इसी से यह देवी 'कोहिलाराय'* कहलाई। कोहिलापुर पर करीब ५० वर्ष राज्य करने के पश्चात् छाहडराव का स्वर्गवास हो गया।●

छाहडराव के देहान्त होने पर सोढा और सांखला के विषय मे मुहता नैणसी की ख्यात मे पृ० ३३८-३९ पर जो वर्णन मिलता है, वह इस प्रकार है—छाहड़राव के समय मे उससे यह धरती छूट गई। राज्य छिन जाने से वह रायधणपुर के पास भाभमा नामक गाँव मे जाकर रहने लगा। वहाँ से इसका वडा पुत्र सोढा तो सिंध मे सूमरो के पास चला गया, जहाँ सूमरो ने उसे 'रातोकोट' दिया। छोटा पुत्र वाघ (सांखला) मारवाड मे पडिहारो (प्रतिहारो) के पास आया और वाघोरिया गाँव मे अपनी वुआ सुन्दर (जो पडिहार गैचन्द की पत्नी थी) के पास रहने लगा। वह वाघोरिया के पहाड मे अपने आदमियो सहित रहने लगा। कुछ दिनो के पश्चात् लोगो ने गैचन्द

---

†डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा—'राजपूताने का इतिहास'—बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० ७२।

*'मुहता नैणसी री ख्यात' प्रथम भाग, पृ० ३४४।

‡इस पर्वत के नाम पर प्राचीन जैन-ग्रथो मे गीत की तर्ज जानने के लिये प्रसिद्ध लोकगीत की एक पक्ति मिलती है—'कोहिलो परवत धूंधळो रे लोय।'

*'कोहिला पर्वत कन्दरा की, निवासी निखिलेश्वरी'—श्री शकरदान जेठीभाई देथा 'देथियाण'—'श्री हिंगलाज देवी नी स्तुति' पृ० ७४।

●'सोढायण' पृ० ३।

(गयचन्द) पडिहार को भड़काया कि ये परमार लोग सगठित होकर तुम्हारी भूमि पर कब्जा कर लेंगे, इनकी हरकतो से ऐसा प्रतीत होता है। वह सलाह गैचन्द को ठीक लगी और उसने अपनी फौज वाघ साखले पर भेजी। उस भिड़त मे वाघ (साखला) मारा गया। उन दिनो वाघ की स्त्री गर्भवती थी, जिसे लेकर मुहता सुगणा अजमेर पहुँचा। वहाँ पर वैरसी वाघावत का जन्म हुआ।

जब वैरसी बडा हुआ तो मुंहता सुगणा उसे अजमेर-पति के पास ले गया। कई दिनो तक वैरसी ने अजमेर के स्वामी की सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर एक दिन अजमेर-पति ने उसे मनोवांछित पुरस्कार माँगने को कहा। वैरसी ने कहा—"महाराज ! गैचन्द पड़िहार ने मेरे पिता को निरपराध मारा है, अतः मैं उसका वैर लेना चाहता हूँ, सो फौज देकर मदद कीजिये।" उसकी यह प्रार्थना स्वीकृत हो गई, तब अपनी आराध्यशक्ति जगदम्बा श्री सचियाय माता का ध्यान किया और कहा कि यदि वह अपने पितृहन्ता को मारने में सफल हो गया तो ओसियाँ जाकर देवी के सम्मुख कमल-पूजा (मस्तक-भेंट) करेगा। रात्रि के समय स्वप्न मे दर्शन देकर देवी ने कहा कि काले रग का वागा (वस्त्र विशेष), एव काली टोपी पहने हुए व रथ के बैलो पर काली झूल डाले जो व्यक्ति सामने आये उसे मार देना, वही गचन्द पडिहार होगा। स्वप्न मे दी गई आज्ञा को ध्यान मे रख कर दूसरे दिन तड़के ही अपने लश्कर सहित वैरसी आगे बढा। मारवाड के मूधियाड नामक गाँव के पास गैचन्द उसी काले वेश मे दिखाई पड़ा और वैरसी शेर की भाँति उस पर टूट पडा। दोनो ओर से घमासान भिड़न्त होने पर गैचन्द मारा गया।

अपना मनोरथ सफल हुआ देख कर वैरसी वाघावत देवी की यात्रा करने ओसियाँ की ओर चल पडा। वहाँ पहुँच कर अपने सकल्प के अनुसार ज्योही वैरसी ने अपना शिर काटना चाहा कि देवी ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड लिया। सचियाय माता ने कहा—"मैं तेरी सेवा-पूजा से प्रसन्न हुई, तुम्हे शिर बख्शीश करती हूँ। अपने शिर की जगह सोने का मस्तक बना कर चढा देना।" इतना कहते हुए देवी ने अपने हाथ का शख वैरसी को दिया और कहा कि यह शख बजाओ और साखला कहाओ।† इस प्रकार देवी का आशीर्वाद ग्रहण कर

---

†'मुहता नैणसी री ख्यात', प्रथम भाग, पृ० ३३९।

वैरसी मारवाड के रूणवाय नामक गाँव में आया और वहाँ पर रूणकोट बनवाया। इस तथ्य का सकेत प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इन शब्दो मे किया है—"साखलो को वि० स० १३८१ के लिखे एक सस्कृत शिलालेख मे 'शंखुकुल' शब्द लिखा है। उनकी एक शाखा का रूण (जोधपुर राज्य) मे निवास था, जिससे वे रूण के साखले भी कहलाने लगे।"†

वाघ (साखला) परमार का अग्रज सोढा अपने शूरवीर सिपाहियों के साथ सिंध-प्रदेश की ओर बढा और छ दिन के बाद सातवी रात्रि को सहसा रताकोट पर धावा बोल दिया। रताकोट का स्वामी रता मुगल उस मुठभेड मे मारा गया तथा वीर सोढा का झडा वहाँ पर फहराने लगा।* रताकोट उमरकोट से १४ कोस तथा खिपरे के गोठ से ६ कोस उत्तर को तरफ था। ढोरानारा नामक गांव (राणाजो की जागीर के पास) से रताकोट के खडहर आज भी दिखाई पडते है। इस प्रकार सिंध मे सोढा का अधिकार हुआ और कैलाश के दुर्ग पर उसने अपनी राजधानी बनाई तथा निरतर राज्य-विस्तार करता गया। सिंध-प्रदेश मे सोढो का राज्य कब से हुआ, इसका निश्चित वर्ष तो ज्ञात नही हो सका, किन्तु विक्र। की १२वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध अनुमानित किया जा सकता है। इसके सवत् के विषय मे आगे पृथक रूप से विवेचन किया जायगा। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त होगा, कि क्षत्रियो के गोत्र अथवा शाखाएँ प्रसिद्ध वीरो के नाम से चलती है। इस प्रथा के अनुसार वीर सोढा के वशज भी सोढा कहलाये। सोढो का मुख्य क्षेत्र वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान मे उमरकोट तथा थरपारकर के इलाके है, जो 'सोढाण' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

३. 'सोढांण-प्रदेश' और उसकी सांस्कृतिक महत्ता—

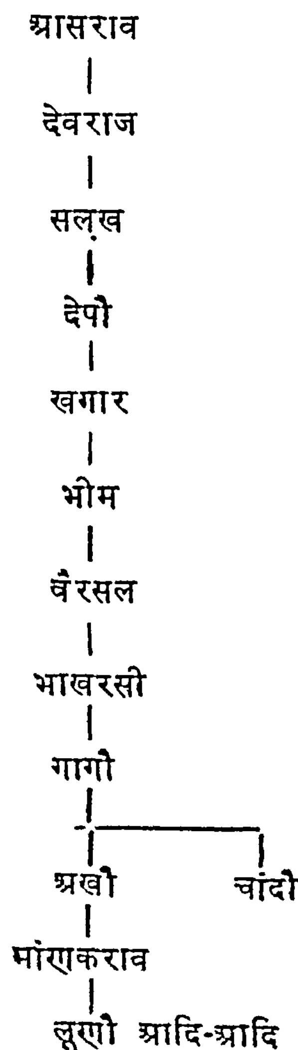
'सोढाण-प्रदेश' मे धाट और पारकर दो जिले आते हैं। यही प्रदेश सोढो का प्रमुख केन्द्र है। इस प्रदेश के सोढा प्राय: वीर एव दानी होते आये हैं। यह विशेषता उस प्रदेश की ही रही, जहाँ इतनी उदार परम्परा प्रतिष्ठित हुई थी। जिस समय वर्तमान 'सोढांण-प्रदेश' पर सोढो का राज्य था, उस समय

---

†डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, 'राजपूताने का इतिहास, बीकानेर राज्य का इतिहास', प्रथम खण्ड, पृ० ७२।

*'सोढायण', पृ० ४।

धाट एव पारकर का एक ही क्षेत्र था। छाहड के पुत्र सोढा परमार से आगे छठी पीढी मे धरावरीस (धारादर्ष) नामक राजा हुआ। यह धरावरीस (जो धारावरीस एव धरापसाव के नाम से भी प्रसिद्ध है) बडा पराक्रमी और दानी था। इसके दो पुत्र हुए—दुरजरणसाल और आसराव। आसराव के वशज पारकर के सोढे तथा दुरजणसाल के वशज धाटेचा सोढे कहलाये। आसराव के पुत्र का नाम देवराज तथा आगे के उत्तराधिकारियो के नाम मुहता नैणसी की ख्यात के अनुसार इस प्रकार है—



पारकर की उपर्युक्त पीढियो के अन्तर्गत चादन नामक एक सोढा हुआ जिसने बालव नाम के भाट को एक करोड का दान दिया था, ऐसा 'बांकीदास री ख्यात' मे सोढो की टिप्पणी से प्रतीत होता है। पारकर शहर उमरकोट से ८० कोस दूर है। शहर तो मैदान में बसा हुआ है, किन्तु पास मे एक छोटी-सी पहाड़ी पर चादन सोढे का बनवाया हुआ गढ है। उस गढ मे अनेक सुन्दर

इमारते तथा एक बावडी है। पारकर के सोढो मे जो पाटवी राणा होता, वह उस गढ मे रहा करता था।

सोढो की दूसरी शाखा उमरकोट या धाट के सोढो के नाम से प्रसिद्ध है। उमरकोट किसी युग मे भारत के प्राचीन शहरो मे से एक प्रसिद्ध शहर था। इसको उमर सूमरे ने बसाया था, ऐसा मत तो कई जगह मिलता है, किन्तु उमर सूमरे भी दो तीन हुए हैं। सर्वप्रथम उमर सूमरा कब हुआ था, इसका अनुमान आवडदेवी के वृत्तान्त से लगाया जा सकता है। विक्रम को ९वी शताब्दी मे काठियावाड के वला (वल्लभीपुर) नामक नगर मे साऊवा शाखा के चारण मादा के पुत्र मामड (मम्मट) के घर आवड (उब्बट) देवी का जन्म हुआ था। इससे छोटी ६ बहिने और थी, जिनके नाम क्रमश आछो (इच्छा), चाचा (चर्चिका), होल (हुलो), रेपली (रेप्पली), गहली (गुर्ल) और लागी (लघ्वी) या खोडियार हैं। जब ये सातो कन्याएँ युवावस्था को प्राप्त हुई तो सबसे छोटी देवो खोड़ियार को उसी वला(ही) गाँव मे छोड कर शेष छह कन्याओ को साथ मे ले मामड चारण सिध-प्रदेश के चालकना नामक गाँव मे आकर रहने लगा। इन छहो कन्याओ के रुचिर रूप की सिध भर मे चर्चा फैल गई। सिध का तत्कालीन राजा उमर (उम्र) सूमरा इन देवियो के सौन्दर्य पर मोहित हो गया और इनसे विवाह करने की ठान लो। स्व० ठा० श्री किशोरसिहजी बार्हस्पत्य के मतानुसार सूमरा परमार जाति के क्षत्रिय थे।† 'तवारीख तहफतह अलकराम' के अनुसार सूमरे अरब जाति के मुसलमान थे, मगर हिन्दू लोग उन्हे यादव बुलन्द के पुत्र सामा की औलाद भाटी राजपूत कहते है।'‡ शहर ठट्ठा (सिंध) के निवासी मीर ताहरमहमद ने सन् १६२१ ई० मे अपनी पुस्तक 'तवारीखी ताहिरी' मे पृष्ठ २५ पर लिखा है कि सूमरे हिन्दू थे। अलाउद्दीन खिलजी का सिंध पर अधिकार हो जाने पर बहुत से सूमरा मुसलमान बन गये थे, ऐसा 'अमरकोट सिध जो इतिहास' से सिद्ध होता है। कुछ भी हो सूमरे शुरू-शुरू मे हिन्दू ही थे, इस बात की पुष्टि 'गुजराती इतिहास' पृ० २४, 'यवन-राज-वंशावली' पृ० २३ [मुशी देवीप्रसादजी कृत] तथा प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा आदि सभी इतिहासकारो के द्वारा होती है।

---

†'चारण' खण्ड १, अंक ७-८, पृ० १८९।

‡श्री तेजसिह प्रधानसिह सोलकी 'अमरकोट सिंघ जो इतिहास'।

'अमरकोट सिंध जो इतिहास' मे उमरकोट शहर को ईसवी छठी शदी के पहले का माना है। यदि हम आवडदेवी के समकालोन उमर सूमरे का बसाया हुआ यह शहर मानें, तो इस देवी की जन्म-तिथि के विषय मे दो मत हमारे सामने आते हैं। प्रथम[1] मत श्री मानदानजी कविया [गाँव दीपपुरा निवासी] का है, जिनके एक दोहे के अनुसार स० ८८८ वि० मे आवडदेवी का जन्म हुआ था, यथा—

'साल अठ्यासी मे सुणी, आठौ समत अनूप।
आवड जग मे अवतरी, श्री हिंगळाज सरूप ॥१॥'

दूसरा मत एक प्राचीन दोहे से सिद्ध होता है, जिसके अनुसार स० ८३८ वि० चैत्र शुक्ला नवमी शनिवार को भगवती श्री आवडदेवी का जन्म हुआ था। वह दोहा इस प्रकार है—

'आठं अड़तीसं समत, मधु सुद नम सनिवार।
महमाया - मामड़ घरे, आवड लिय अवतार ॥१॥'†

उक्त विवेचन के आधार पर यह तो माना जा सकता है कि आवडदेवी का समय विक्रम की ९वी शताब्दी था और उस समय सिंध पर उमर सूमरे का राज्य था। उमर सूमरा के नाम को ख्यातो के लेखको ने सस्कृत का जामा पहिना कर 'हमीर' लिखा है।'‡ इस प्रकार उमरकोट को हमीरकोट भी कहते थे, जिसका अपभ्रश रूप 'हमरोट' है। इसी हमरोट नाम को लेकर कविराजा श्री बाँकीदासजी ने 'हमरोट छत्तीसी' काव्य रचा। उमरकोट क्षेत्र के मुख्य शहर मिट्ठी, छाछरौ, नगर, दीपलौ, सामारौ, साघड, दिगरी, जेमसाबाद व मीरपुरखास आदि हैं। उमरकोट से कुछ शहरों की दूरी इस प्रकार है—

उमरकोट	से	मिट्ठी	३०	कोस
,,	,,	छाछरौ	२४	,,
,,	,,	गढडौ	२७	,,
,,	,,	चेलार	४०	,,
,,	,,	रतौकोट	१४	,,
,,	,,	ठट्ठा नगर	५०	,,
,,	,,	पारकर	८०	,, आदि-आदि।

†'शक्ति-सुयश' पृ० ३, संग्र० श्रीमती गुलाबबाई कवियाणी

‡श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य—'चारण' अंक ७-८, पृ० १८९

'सोढाण-प्रदेश' के क्षत्रिय शुरू से ही अत्यन्त उदार एव पराक्रमी होते आये हैं। कुछ वीर तो इतने मनमौजी, मस्त, उदार एव अलबेले थे, कि उनकी रसिकता एव रंगीनी पर रीझ कर जनसाधारण ने प्रत्येक दूल्हे को घडी भर के लिये सोढा बन जाने का आग्रह किया। जीवन मे सर्वाधिक रग-राग का पर्व विवाह होता है। उस मांगलिक घडी के आमोद-प्रमोद मे रीझ की झड़ियो और कीर्ति की कड़ियो की चारु चर्चा प्रत्येक सरस हृदय के मन भाती थी। सोढो की इस देश-प्रसिद्ध उदारता से प्रभावित होकर पश्चिमी राजस्थान की प्राय: सभी जातियो ने 'सोढो राणौ' नामक गीत को विवाह-मडप के अन्दर गाना अगीकार किया। आज भी विवाह के सुरीले गीतो मे 'सोढो राणौ', 'खीवरौ', 'काछवौ', 'रिडमल', 'राणौ मेदरौ', तथा 'जलाल' (जलौ) आदि लोकगीत विशेष चाव से गाये जाते हैं। उक्त गीतो के सभी नायक 'सोढाण-प्रदेश' के ही निवासी थे। सोढा की इस उदारता का द्योतक एक दोहा राजस्थान मे बहुत प्रचलित है, कि—

कीरत विळियां काहळा, दत विळियां दोढाह।
परणीजै सारी प्रिथी, गाईजै सोढाह ॥१॥

इस तथ्य को जोधपुर के कविराजा श्री बाँकीदासजी ने भी एक दोहे मे बहुत सुन्दर ढग से व्यक्त किया है। सोढो की कीर्ति का लोकगीतो मे स्थायी रूप देख कर उनके सफल जन्म की बात वे इस प्रकार कहते हैं—

'राणा ऊमरकोट रा, गया जमारौ जीत।
ज्यां रा मगळ धमळ मैं, गवरीजै जस गीत ॥१॥'

प्रसिद्ध दानवीर जाम ऊनड़ भी इसी प्रदेश का निवासी था, जिसने सावल सुध नामक रोहड़िया चारण कवि को सात ही सिंधो का राज्य दान मे दे दिया था। इस बात की साक्षी का बाँकीदासजी कृत यह दोहा प्रचलित है, कि—

माई ऐहा पूत जण, जेहा ऊनडजांम।
दीधी सातू सिंध इम, जिम दीजे हिक गांम ॥१॥

इसी प्रकार सिंध-प्रदेश के यदुवशी सम्मा शासक वीका पनुआणी ने कवियों को अनेक हाथी दान मे दिये थे। इसी वश मे सप्पड छोटुआणी नामक दानवीर हुआ, जिसने सिंध मे जितने भी पगु चारण कवि थे, उनके लिये राजकीय व्यय से पालकियो का प्रबन्ध करवाया था, ऐसा 'सम्मा रा झूलणा' मे श्री चिमनजी कविया ने लिखा है। सम्मा क्षत्रियो की शाखा यदुवशी थी, किन्तु बाद मे ये

लोग मुस्लिम सस्कृति के प्रभाव मे चले गये। विक्रम को ९ वी शताब्दी मे पटियाला राज्यान्तर्गत सम्माणा एव पजाब के दक्षिण मे सम्मासट्टा नामक नगर सम्माओ की राजधानियाँ थी। इन सम्मो की सिंध मे नगर-सम्मा(सामई)राजधानी थी,जिसे आजकल नगर-ठट्टा कहते है। ऊनड़ जाम भी यही का था, जिसने ८ करोड का दान किया था। इस महान् दान की चर्चा मुहता नैणसी तथा कविराजा बाँकीदासजी ने अपनी ख्यातो मे की है, किन्तु उनमे कही तो साढे तीन करोड का सिहासन† देने की बात है तथा कही ८ करोड सहित सामई का तख्त प्रदान करने का वर्णन है‡। सत्य क्या था, यह ईश्वर ही जाने, किन्तु श्री चिमनजी ने भी आठ करोड के दान की चर्चा करते हुए 'सोढायण' मे पृष्ठ ८० पर 'सम्मा रा भूलणा' मे यह सकेत अवश्य किया है, यथा—

'राज समां खित सामही, निज थड स नग्गर।
जे कुळ ऊनड जेहडा, पिछमाण अपपर।
नग्गर-ठट्ठो नीपणा, सांसण दे सद्धर।
आठ क्रोडां दत अप्पियो, चढतै दिन पौहर'॥

हेम हेडाऊ नामक दानवीर भी इसी क्षेत्र मे हुआ था, जिसकी उदारता लाखा फूलाणी एव ऊनडजाम से कही बढ कर मानी गई है। इस हेम हेडाऊ को कुछ लोगो ने तो बनजारा माना है और कुछ ने चारण, किन्तु वास्तव मे यह यदुवशो था। कविराजा श्री बाँकीदासजी की एक हस्तलिखित ख्यात (जिसमे कही ख्यात है, कही कोई ग्रन्थ लिखा है, वह आज भी उनके वशजो के पास सुरक्षित है) मे एक जगह लिखा है, "लाखा परे सात पीढिया जाम ऊनड हुवौ, जाम ऊनड परे ११ पीढिया हेम हेडाऊ हुवौ।" इस प्रकार जाम ऊनड का समय लाखा फूलाणी से सात पीढी पूर्व का सिद्ध होता है। लाखा से सात पीढी पहले ऊनड का होना इतिहासवेत्ता पुरोहित श्री हरिनारायणजी ने भी माना है*। ऊनडजाम भी दो तीन हुए हैं। मुहता नैणसी ने अपनी ख्यात मे ऊनडजाम को लाखा फूलाणी के समकालीन माना है†† वह कौनसा ऊनडजाम था, यह एक शोध का विषय है। उक्त हेम हेडाऊ की उदारता के विषय मे एक बडा ही रोचक दोहा

---

†'बाँकीदास री ख्यात' में पृ० १२२ पर लिखा है कि जाम ऊनड ने साढे तीन करोड रुपयो का सिहासन एव सातो सिंध कवि सावल सुध को दी थी।

‡'मुहता नैणसी री ख्यात' भाग २, पृ० २३६।

* बाँकीदास-ग्रन्थावली' तीसरा भाग, भूमिका, पृ० २७।

††'मुंहता नैणसी री ख्यात' भाग २, पृ० २३६।

राजस्थान और सिंध मे प्रसिद्ध है। प्रसग इस प्रकार है कि लाखा फूलाणी के द्वारा जगल की झाडियो को पीले वस्त्रो से सुसज्जित करने के अवसर पर उसका पिता अपने पुत्र को मनाने के लिये ढूढता हुआ उधर आ निकला। वहाँ पर खडे एक इमली के पेड से लाखा के पिता फूलजी ने सगर्व प्रश्न किया, कि—

"हे हरियाळी आबली, मोती लूब रईह।
इथिये लाखौ ऊतरचो, (ज्यैनां) कितियक वार थईह ?"

अर्थात् हे हरियाली इमली! तुम्हारे पास लाखे के लश्कर को ठहरे हुए कितनीक देर हुई है, निश्चय ही उसी ने तुम्हे मोतियो से लूमझूम किया होगा। अपने पुत्र के लिये गर्वपूर्वक कहे गये शब्दो का प्रत्युत्तर देता हुआ हेम हेडाऊ के द्वारा मोतियो से शृगारित वह इमली का पेड़ इस प्रकार बोला, कि—

लाखै सिरखा लख वुवा, अनड़ सरीखा अट्ठ।
हेम हेडाऊ सारखौ, (कोइ) वुवौ नहीं इण वट्ट ॥१॥

अर्थात् लाखा जैसे तो लाखो व्यक्ति इस मार्ग से गुजर गये और ऊनड जाम जैसे भी आठ-एक व्यक्ति तो यहाँ से निकल चुके है। केवल एक हेम हेडाऊ जैसा व्यक्ति इस मार्ग से अभी तक कोई नही आया। इस प्रकार के अनुपम उदार एव दानवीर हेम हेडाऊ के लिये एक दोहा प्रसिद्ध है, कि—

लाला किया विछावणा, मोत्या बांधी पाज।
काटं मोती पोविया, हेम गरीब नवाज ॥१॥

मूली के अधिपति सोढा रतन ने एक दिन मे प्रभात से सूर्यास्त तक के बीच चारण परवत मीसण (मिश्रण) को एक करोड का दान (करोड पसाव) दिया था, ऐसा बाकीदासजी की ख्यात मे पृ० १८१ पर उल्लेख मिलता है।

'सोढाण-प्रदेश' के क्षत्रियो की अद्‌भुत उदारता का प्रभाव वहाँ के चारणो पर भी पड़ा। क्षत्रियो की सस्कृति और मर्यादा के मडन मे चारणो का सबसे अधिक प्रभाव रहा है। रात-दिन साथ रहने तथा आचार-विचार एक जैसा होने से चारण-राजपूत-सस्कृति मे चोली-दामन का सा अटूट सम्बन्ध बन गया था। यही कारण था कि सोढो के 'पौलपात' देथा चारणो को उनके याचक मोतीसरो एव रावलो ने 'देता' शब्द से अलकृत किया है। राजपूतो मे सोढा और चारणो मे देथा उदारता के क्षेत्र मे शुरू से ही विख्यात हैं। 'दूथिया हजारी बाज देथा' पक्ति का एक प्रसिद्ध डिंगल-गीत पश्चिमी राजस्थान मे बहुत प्रसिद्ध है, जिसमे देथो की विलक्षण उदारता का अद्‌भुत वर्णन है।

वास्तव मे जीवन की सफलता इसी मे है कि मरने के सैंकडो वर्ष पश्चात् भी लोग उस व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक याद करते रहे। तन्त्री-नाद मे जिसकी कीर्ति के स्वर झंकृत नही हुए, उस व्यक्ति के भौतिक ऐश्वर्य की कोई विशेष महत्ता नही। इस अनुभूति की अभिव्यक्ति मानसिंह के सम्मुख महाराणा प्रताप के मुख से 'प्रताप-चरित्र' के कवि ने इस प्रकार करवाई है—

"कोऊ नर सर्व भांति ऊँचो हू चढ्यौ तो कहा ?-जाको जस एक वार तात पं चढ्यो नहीं।"†

अर्जुन की वीरता, साधन-सपन्नता तथा महाभारत मे मिली सफलता आदि सब कुछ कर्ण से बढकर थी, तथापि प्रभात की पावन वेला सजा कर्ण को ही कहलाई, क्यो कि दानवीरता मे अर्जुन कर्ण की बराबरी नही कर पाया। इसीलिये 'वीर-विनोद' के ये शब्द इस शाश्वत सत्य की पुष्टि करते है, कि—

'वाहन अभूत ध्वज सूत धनु पूत पुनि, छात्र सुनि पात्र छवि सात्यकी सुहाये की।
भीष्म जय भौन दृढ द्रोनी द्रौन कर्ण कृप, कौन गौन कीर्ति ना विराट जीत आये की।
तात सुख व्रात कीन्हो वरमनिवात वध्र वीरता विख्यात है किरीटी नाम पाये की।
दान की नहर की तो लहर दुरूह देखो, प्रात की पहर गी ठहर रवि-जाये की ॥१॥"‡

राजस्थान मे एक दोहा प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार कोट-किले आदि अधिक वर्षो के पश्चात् खंडहर-स्वरूप बन जाते हैं, सुदृढ देवालय भी ढह पडते हैं तथा वृक्षादि सूख कर ईधन बन जाते हैं, किन्तु कीर्ति के शब्द तो युग-युग तक जन-कण्ठो मे गूजते रहते हैं, यथा—

"कोट खिसै देवळ डिगै, व्रिख इंधरण हुय जाय।
जस रा आखर जेहिया', जातां जुगा न जाय ॥१॥"

मारवाड के राव गाँगा के द्वारा कहे गये इन ऐतिहासिक शब्दो का महत्त्व भी प्रत्येक युग मे अक्षुण्ण रहेगा। विक्रमादित्य एवं भोज के बनाये हुए भवन तो आज नही रहे, किन्तु उनकी बातें रह गईं। राव गाँगा के उक्त आशय को तत्कालीन चारण कवि भूठाजी आशिया ने डिंगल-गीत मे अत्यन्त मनोरम ढग से कहा है, जिसके उदाहरण-स्वरूप निम्नाकित पक्तियाँ अवलोकनीय हैं:—

'कळी सेत व्रन पालटै पड़ै जोखम कळस, खसे खुमी हुवे मडप खोंगो।
भीतडा मांज ढह जाय धरती मळे, गीतडा न जावै कहै गांगो॥
'वाघवत' ऊचरै सुणो खटतीस वस, जुरा आगळि हुवा वदू ज्यांही।
भोज धीकम तणो सुजस सारै भुंयण, नरां तिण वार रा मंडप नांही॥"

†श्री केशरीसिंह बारहठ—'प्रताप-चरित्र' पृ० ३८।
‡स्वामी गणेशपुरी—'वीर-विनोद' पृ० ३००।

वीरता तथा उदारता दोनो सहजात प्रवृत्तियाँ है। वीर पुरुष ही उदारता को निभा सकता है। वास्तव मे शौर्य के क्षेत्र मे ही औदार्य एव शृंगार पनपते हैं। 'सोढाण-प्रदेश' मे धाट का क्षेत्र तो भारतीय सास्कृतिक मूल्यो का एक कमनीय केन्द्र रहा है। वहाँ की ऐतिहासिक बातो तथा साहित्यिक कृतियो के अध्ययन से पता चलता है कि वे लोग जिंदादिली, रंग-राग, पौरुष और प्रेम से जीने मे खूब प्रवीण थे। "यह भूमि अपनी सुदर जलवायु, उपजाऊपन, दूध के पशुओ और रूपवती नारियो के लिये विख्यात रही है।"† सुरंगे वेश की धाटेची रमणियो तथा रणबाकुरे सोढो का यह प्रदेश मीठी बोली, शृंगार-सज्जा, सगीत-प्रेम, रगोलापन, पुनीत प्रथाओ तथा विशद वातावरण के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है। सैकडो लोकगीतो मे यौवन मदमाती बालाएँ 'माणसिया मेलाए जूनी धाट रा' कहती हुई—अपने हृदय की अभिलाषा को पार्वती अथवा जननी के सम्मुख प्रकट करती है। धाट के रेतीले धोरो (टीबो) को भी लोगो ने नन्दन-वन समझ कर आमोद-प्रमोद किया। 'नागोदर' गीत का यह दोहा इस बात का साक्षी है, यथा—

'आव 'नगोदर' सूमरा, धाट तणै धोरैह।
रहो आजूणी रातडी, सैणां रै थोरैह ॥१॥'

जिन लोगो को यशोगाथा मागलिक पर्वों के अतिरिक्त नित्य प्रति प्रात:, मध्यान्ह, तीसरे प्रहर तथा रात्रि के समय लोकगीतो के रूप मे विशेष प्रसिद्ध है, उनमे 'लाखौ फूलाणी', 'वाघौ कोटड़ियो', 'रिडमल' तथा 'सोढो महंदरो' प्रमुख हैं। प्रभात के समय 'लाखौ फूलाणो', दो घड़ी दिन चढने पर धनाश्री राग मे 'वाघौ कौटडियौ', तीसरे प्रहर सामेरी राग मे रिड़मल तथा रात्रि के समय 'मेहाजल जायौ राणौ महदरौ' गीत आज भी पश्चिमी राजस्थान तथा धाट मे गाये जाते हैं। इन चारो मे से तीनो का रमण-स्थल तो धाट की धरती ही रही है। इधर पुरुषो मे यह उक्ति विशेष प्रचलित है, कि यदि गृहस्थ-जीवन का आनन्द लेना है तो 'धाटेचो धण' (धाट क्षेत्र की स्त्री) से विवाह कीजिये। सुन्दर शरीर और मीठी बोली वाली वहाँ की नारियो के लिए एक प्राचीन दोहा प्रसिद्ध है, कि—

---

†पुरोहित श्री हरिनारायण, 'बांकीदास ग्रन्थावली' तीसरा भाग, भूमिका' पृ० ६५।

"उर चौड़ी कड़ पातळी, जीकारै री बांण।
जे सुख चाहैं जीव रौ, (तौ) धण धाटेची आंण॥"

धाट के लोग सस्कृति के सुन्दरतम पक्षो को अपनाने तथा उनके साथ जीवन को आत्मसात् करने मे बहुत अधिक सफल हुए थे। राजस्थानी-सस्कृति की पुरातन प्रशस्ति में प्राय: 'जूनी धाट' की छाप अवश्य मिलती है। राजस्थान की धरती पर गाये जाने वाले प्रायः सभी सुप्रसिद्ध लोकगीतो का उद्गम-स्थल धाट-प्रदेश है। यहाँ के 'तोडडलो','करसौ', 'कुरजा','हेली', 'मूमल',,'काछबौ','राईकौ' 'बालोचण', 'नागोदर', 'जलाल', 'हजलौ', 'हेडाऊ', 'रतनराणौ', 'सौढी खीवरौ', 'रिडमल' आदि सुमधुर एवं हृदयस्पर्शी लोकगीत अनेक राग-रागनियो के माध्यम से हमारी अतीत सस्कृति के चारु चित्र को एक बार पुनः आँखो के सामने लाकर प्रस्तुत कर देते है। धाट के सोढो को माणीगर [सपत्ति का रसपूर्ण उपभोग करने वाले] एव मनमोट [उदारमना] कहते हुए कविराजा बाँकीदासजी ने उनके अतुल औदार्य तथा शिर कटने के बाद धड लड़ती रहने आदि के अद्भुत गुणो की चर्चा करते हुए कहा है—

"सोढां ऊमरकोट रां, सिर कटिया समसेर।
धाहे हणिया वैरहर, वांका मारथ वेर॥१॥
एक-एक सूं आगळा, रांणा ऊमरकोट।
प्रगट हुवा परमार वे, मांणीगर मनमोट॥२॥"

'धाट सुरगी गोरियां' की कहावत सैकडो वर्षों से चली आ रही है। धाट क्षेत्र की सुन्दर स्त्रियो तथा वहाँ के सामाजिक जीवन का वर्णन करते हुए कविराजा बाँकीदासजी ने 'हमरोट छत्तीसी' नामक काव्य-कृति मे अपनी आँखो देखा चित्रण इन शब्दो मे किया है, यथा—

"घर-घर मे बीणा घणा, घर-घर घूमै माट।
राग रग रळियावणो, धर पुड मांझल धाट॥१॥
धाट सुरगी गोरियां, आदु कहवत अेह।
पदमणियां हमरोट ह्वै, राख म संसौ रेह॥२॥
एकै पदमण वासतै, सींधल गयो रतन्न।
ऊमरकोट न आवियौ, मतो कियौ की मन्न॥३॥
लागां कुसम-सरीस वप, ज्यां रै पड़ै खरोट।
हद नाजक हिरणाखियां, है माझन हमरोट॥४॥

लोयण चचळ श्रवण लग, लाबा वैंणी डड ।
महकै सहज सुवास वप, फिर लायौ श्रीखड ॥५॥
श्रांखडियां श्रणियाळियां, काजळ रेख कियांह ।
वीमळिया भावदियां, लाज सनेह लियाह ॥६॥
श्रग श्रग मभ्र ऊफणैं, जोबन श्राठो जांम ।
त्यो हदी तसवीर रौ, कलम हुवै नह काम ॥७॥
घूंघट खोलदी नहीं, बोलदी पिक वैण ।
गज-गत जावै गोरियां, लांवै सर जळ लैण ॥८॥
नवा सुरगा श्रोढियां, चंगा झीणा चीर ।
भरही हेम वरन्नियां, दूघ वरन्नो नीर ॥९॥
नख सू ले चोटी लगे, तन छबि माह तरत ।
तुळ मिळ केहरलनिया, लांबे नीर भरत ॥१०॥
लाबै सर पांणी भरै, गोरी गात श्रनूप ।
ज्यां श्रागे पांणी भरै, रभ श्रलोकिक रूप ॥११॥

उपर्युक्त दोहो से बढकर नारी का सहज श्रौर स्वाभाविक सौन्दर्य क्या हो सकता है ? उमरकोट के 'लाबा' नामक तालाव पर जल भरती हुई पनिहारियो के चित्र वास्तव मे देखने लायक होते थे, यही कारण है कि एक नही श्रनेक कवियो ने श्रपनी कलम से उस रूप को रेखाबद्ध करने का प्रयत्न किया। एक ऐसा ही चित्र प्रस्तुत करने वाला दोहा है, जो राजस्थानी-बात को शुरू करने से पूर्व कहे जाने वाले परम्परागत दोहो मे श्राता है, यथा—

"केहर-लकी गोरिया, सोढा भवर सुजांण ।
बड झुकिया लाबै सरां, श्राई घर श्रमरांण ॥"

राजस्थान की रमणी का शृगार, चाहे वस्त्र हो श्रथवा श्राभूषण, उसका सम्पूर्ण रूप श्राज भी धाट के इलाके मे देखने को मिलता है। घाघरा, पोमचा एव झब्बा में श्रावृत्त चमकती-दमकती धाट की गौरागनाएँ शिर पर लम्बी बैनी, रत्न-जडाव की रखडी, झेला, टिड्डी पलका (तिलक या सुहाग चिह्न), श्रौगनिया, टोटियाँ या झूवर, गले मे कठी, तिमणिया, हार, बाहो मे चूड़ा, मूठिया, बगडी, गजरा, चूडी, माठी, बाहरखिया, बाजूबन्ध, हथफूल, बीटियाँ श्रादि मेहदी लगे हाथो की शोभा को श्रौर भी श्रधिक बढा देते हैं। इसी प्रकार पगो मे पहनने का जेवर भी विशेष प्रकार का होता है। इन सभी श्राभूषणो को धारण करने वाली युवतियो के प्रदीप्त श्रग, मदभरे नयन, मधुर वाणी, लाजभरी

स्नेहिल मुद्रा एव हस की सी गति से उनके स्वाभाविक रूप मे चार चाँद लग जाते हैं।

स्मरण रहे, वीरवर पाबूजी राठौड इसी उमरकोट मे सूरजमल सोढा की पुत्री फूलकवर के साथ पाणिग्रहण करते हुए, कर्त्तव्य का प्रश्न सम्मुख आते ही चवरी मे दुल्हन का पल्ला छोड गायो की रक्षार्थ रवाना हुए थे। उधर तो 'धाट सुरगी गोरियो' का समूह और इधर पाबूजी जैसा पराक्रमी व सुन्दर दूल्हा, दोनो के अपूर्व सयोग का महत्त्व आँकते हुए उस मनोरम दृश्य का चित्र बनाने की विनय की गई थी। घोड़ी पर 'जीण' कसने मे जरा सा विलम्ब करने के आग्रह-भरे ये उद्गार आज भी अमर है, कि—

"जेज हूँत कर जीण, तसबीरां लिखलां तुरत।
चळे न इसडौ बींद, उमरकोट नह आवसी॥"

किन्तु प्रेम-मूर्ति प्रतीत होने वाला वह दमकता सा दूल्हा तो क्षण भर मे सर्वथा निर्मोही बन गया और आचल छोड कर युद्ध के लिये चल पडा। डिंगल-गीत की ये पक्तियाँ राजस्थान के प्रत्येक रेतीले टीबे के इर्दगिर्द सदैव गूजती रहेगी, कि—

"नेह नव री जकी बात चित ना धरी, प्रेम गवरी तणौ नांह पायौ।
राजकवरी जकी चढी चवरी रही, श्राप भवरी तणी पीठ आयौ॥"

[श्री गिरवरदानजी साँदू]

इसी प्रकार राजस्थान, गुजरात एव मालवा के प्रसिद्ध लोक-देवता श्री रामदेव बाबा ने भी उमरकोट की सोढी नेतल से पाणिग्रहण किया था। आदिशक्ति हिंगुलाज का तीर्थ भी उसी क्षेत्र के निकट पडता है। इस प्रकार धाट अथवा उमरकोट की हिन्दू-सस्कृति का राजस्थान मे सर्वाधिक प्रभाव जैसलमेर क्षेत्र मे पडा, जिसे 'माड' प्रदेश कहा जाता है। जैसलमेर से ज्यो-ज्यो पूर्व की ओर बढते रहेगे, त्यो-त्यो राजस्थान की प्राचीन संस्कृति का नमूना कम दिखाई देगा। इसी 'सोढाण-प्रदेश' की विशेषताओ पर रीझ कर महाकवि श्री चिमनजी ने उस क्षेत्र को अपना प्रिय स्थल चुना और काफी अर्से तक वहाँ पर रहने के पश्चात् 'सम्मा रा झूलणा' एव 'सोढायण' जैसे ग्रन्थो की रचना की। 'सोढायण' ग्रन्थ का ऐतिहासिक विवेचन तो पृथक् रूप से करेंगे, किन्तु ग्रन्थ के आधार पर जो कथावस्तु मिलती है, उसे सक्षेप मे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

४. सोढायरण की कथावस्तु—

'सोढायरण' के अनुसार सोढा जाति परमारो मे से निकली हुई एक प्रसिद्ध शाखा है। परमार शुरू से ही बडे उदार एवं दानी होते आये हैं। दानवीरता के साथ युद्धवीरता का गुण भी इनमे अतुल मात्रा मे पाया जाता है। परमारो में सोढा जाति भी स्वभाव से ही अत्यन्त उदार, वीर एव गुणग्राहक है। इसी प्रसग मे कवि का कथन है कि प्राचीनकाल मे वर्तमान बाडमेर के समीप कोहिलापुर एव पाटन नाम के दो प्रसिद्ध शहर थे, जहाँ पर किराड़ [किराटकूप] नामक राजधानी थी। किराड पर परमार राजा बाहडराव राज्य करता था। बाहडराव का पुत्र चाहडराव हुआ, जिसने कोहिलापुर पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित किया। स्वय कवि के शब्दो मे—

दोहा

कोयलापुर पट्टण करै, निज्ज किराड़ नाम।
राजा बाहडराव रै, जलमे चाहडजांम ॥१॥
चाहड़ चावौ च्यार चक, जस गाहड जोधार।
कोयलापुर राजस करै, मेर (?)खां परमार ॥२॥†

इसी चाहडराव के पीछे परमारो मे छाहड नाम की एक शाखा बन गई। चाहडराव के दो पुत्र हुए—बडा तो सोढा एव छोटा साखला। इन्ही दो भाइयो के पीछे सोढा एव साखला नाम की राजपूतो (परमारो) मे दो शाखाएँ बनी, जो आज भी इन्ही नामो से विख्यात हैं। पूरे ५० वर्ष राज्य करने के पश्चात् चाहडराव का स्वर्गवास हो गया। चाहडराव का देहान्त होने पर समस्त बधुओ एव मत्रियो ने उत्तराधिकार के विषय मे यह तय किया, कि सोढा तो अत्यंत वीर है, जो कही भी जाकर अपना नया राज्य स्थापित कर लेगा, अतएव सोढा के अनुज साखला का ही राज्यतिलक किया जाय। इस प्रकार सांखले को विधिवत् राजा बना कर सोढा अपने वीर सरदारो के साथ नई जागीर स्थापित करने की तलाश मे निकल पडा। उमरकोट के इलाके मे जाकर मुसलमानो के छोटे-छोटे स्वतंत्र कोट किलो को जीतने का निश्चय कर सोढा दल-बल के साथ रवाना हो गया। छह रात्रि मार्ग मे व्यतीत कर सातवी रात को अर्द्धनिशा के समय 'रताकोट' पर धावा बोल दिया गया और उसमे सोढा की विजय हुई।

रताकोट का स्वामी रता मुगल उस आकस्मिक मुठभेड़ मे मारा गया और वही कैलाश के गढ पर प्रभुत्व स्थापित कर सोढा ने पूरे ८५ वर्ष तक राज्य किया।

†'सोढायरण' पृ० १, २

सोढा का देहावसान होने पर उसका पुत्र रायदेव [राजदेव] सिंहासनारूढ हुआ। रायदेव ने ६२ वर्ष तक राज्य किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र चाचक राणा उत्तराधिकारी हुआ, जो स्वय अपने पितामह सोढे की भाँति बडा शूरवीर और महत्वाकांक्षी था। उसके मन में सदैव उमरकोट-विजय की तृष्णा रहती थी, अतः वह दलबल के साथ भुजाओ पर आसमान को तोलता हुआ कैलाश के गढ से उमरकोट की तरफ बढा।

चाचक राणा के इस आक्रमण की सूचना उमर सूमरे को पहले ही मिल गई। उसने भी युद्ध के लिये पूरी तैयारी कर ली थी। दोनो सेनाओ में घमासान युद्ध होता रहा और अन्त मे २५ दिन के घेरे के पश्चात् ३६ योद्धा† मारे जाकर चाचकराणा को विजयश्री प्राप्त हुई। यह घटना कवि के अनुसार—

"समत्तूस वीजे वावीसं वरस्सूं। सोढे कोट आयौ वखांणं सरस्सूं॥'

अर्थात् सम्वत् दूसरे के २२ वे वर्ष की है। इसमे दूसरे का अर्थ २०० हैं, अर्थात् एक हजार दो सौ बाईस। इसका विवेचन कुछ ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर आगे किया जायगा। इसी उपर्युक्त वर्ष मे सर्वप्रथम सोढो का उमरकोट पर आधिपत्य स्थापित हुआ। उमरकोट की राज्यगद्दी पर चाचक राणा ने पूरे ६० वर्ष तक राज्य किया। बाद मे उसका पुत्र जयभ्रम राज्यसिंहासनारूढ हुआ। इसके आगे कवि ने हमीर तक कुछ शासको के केवल नामो का ही उल्लेख किया है, जैसे—

जयभ्रम
|
जसहड़
|
सोम
|
धरावरीस [धरापसाव]
|
दुर्जनसाल
|
अवतारदे
|
थिरौ
|
हमीर

---

†'सोढायण' मे 'खट तीस' शब्द लिखा है, जिसके अनुसार ६+३०=३६ होते हैं, किन्तु पच्चीस दिन के घेरे में इतने सूमरो का ही मारा जाना बहुत कम प्रतीत होता है, अतः 'खटतीस' का प्रयोग सभवतः कवि ने ६×३०=१८० के अर्थ मे किया होगा। दोनो प्रकार के प्रयोग डिंगल-काव्य में मिलते हैं।

राणा हमीर बडा शूरवीर था। उसके समय मे एक सय्यद, जिसका नाम सम्मस था, चढाई कर उमरकोट पर आ पहुँचा। सम्मस सय्यद के पास कुछ ऐसी मन्त्रविद्या थी, जिससे वह काष्ठ के घोडो का युद्ध मे ऐसा सचालन करता, मानो जीवित अश्व ही हो। उस तात्रिक सय्यद का चारो ओर आतक छाया हुआ था। उसने हिंदुओ से नौरोजे इत्यादि मागना भी शुरू कर दिया। हिंदू-मर्यादा को खतरे मे पडी देख वह दुष्ट नौरोजा लेने की नीयत से राणा हमीर के पास आ धमका।

जब सोढो को इस आक्रमण की पूर्व सूचना मिली तब उन्होने एकत्रित होकर विचार-विमर्श किया और सम्मस की दैविक करामात से टक्कर लेने के लिये 'पिथोरा' नामक प्रसिद्ध हिन्दू-देव का स्मरण किया। विधिवत् अनुष्ठान के द्वारा आर्त्त हिन्दुओ की आराधना सुन कर पिथोरा पीर स्वय प्रकट हुआ—

"आरत देख पिथोरो आयो। पावन थीया दरसण पायो।
हार जीत वे वात हमारै। साम धणी पीथल तो सारै।"†

जब पिथोरा देव पर हारजीत निर्भर कर दी गई तो देव ने प्रसन्न होकर कहा कि सय्यद रूपी असुरो का बलहरण मैं करूँगा, तुम सब बेधडक युद्ध करो—

"कयो पिथोरै ऊपर करसू। हूँ असुराण तणो बळ हरसू।
तेग समावौ मूछां तांणी। काटौ वंग फौज तुरकांणी॥"

फिर युद्ध शुरू हो गया और पिथोरा का वचन निकलते ही 'गैब' तलवारे यानी स्वत· ही सहार करने वाली अदृश्य तलवारे चल पडी और समस्त मुगलो को धराशायी कर दिया। केवल प्रह्लाद नामक एक व्यक्ति बचा, जो हमीर की शरण मे आ गया। युद्ध मे सम्मस का अन्त हुआ और हमीर की विजय हुई, यथा—

'धर पड़े 'समस' विद्दा सधीर। हुवे जैतखंभ जीतो 'हमीर'।
वर अरध सेंस हूरा वराय। मल्लेछ धूड मांही मिळाय॥"‡

इस प्रकार ५०० मुगल उस युद्ध मे मारे गये। आशकरण नामक एक सोढा, जो उस युद्ध मे सम्मिलित नही हुआ था, उसकी गद्दारी के फलस्वरूप यह सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि उसके वशजो को कभी राज्य का मत्रित्व नही सौंपा जाय। विजयी होकर राणा पुन राजधानी को लौटा। उमरकोट पर विजय के नगाड़े घुरे और लगभग ३०-४० वर्ष तक राणा हमीर ने

† 'सोढायण' पृष्ठ ११
‡ ,, ,, १४

बडो सुव्यवस्था से शासन किया। हमीर के देहान्त होने पर उसका पुत्र वीसा राज्य का उत्तराधिकारी हुआ, जिसकी आयु बहुत छोटी थी। उससे राज्य का कार्यभार सभल नही सका। ऐसी स्थिति मे दूढा नामक एक शक्तिशाली व्यक्ति ने वीसा को भगा कर उमरकोट पर अधिकार कर लिया। इस घटना के करीब १० वर्ष पश्चात् वीसा जवान हुआ और रात-दिन शत्रु से प्रतिशोध लेने की भावना मे रत रहने लगा। किन्तु दूढा जैसे सशक्त शासक को हराना कोई सरल कार्य नही था। फिर भी बार-बार आक्रमण करता रहा, और हार कर भागता रहा। लगभग पन्द्रह बार हार जाने पर कुछ इने-गिने विश्वासपात्र योद्धाओ को लेकर सोलहवी बार फिर उमरकोट पर धावा बोला। दुर्भाग्यवश इस बार भी वीसा की पराजय हुई और दूढा की सेना द्वारा पीछा किया जाने पर उमरकोट से ३ मील उत्तर पूर्व की ओर देथा चारणो के गाँव खारोडा मे भागते हुए आकर शरण ली। चारणो की 'सासण' जागीर मे कोई भी क्षत्रिय किसी प्रकार का दखल नही कर सकता था, ऐसी सैकडो वर्षो से नैतिक धारणा बनी हुई थी।

खारोड़ा गाँव चारणो का होने की वजह से वीसा को विश्वास था कि उसकी रक्षा निश्चयात्मक है, किन्तु दुष्ट प्रकृति के उस दूढा ने पीछा करते हुए खारोडा निवासी देथो को तग करना शुरू किया। देवलबाई नामक एक देवी ने आकर दूढा को समझाने की कोशिश की। दूढा फिर भी अपनी जिद्द पर अडा रहा, तो अन्त मे देवी ने अपनी लोवड़ी[†] का पल्ला बिछा कर कहा, "हे वीरा ! मेरी लोवड़ी की लज्जा तेरे हाथो है, अतः चारणो की 'सासण' (शासित) भूमि की मर्यादा को सुरक्षित रख कर इस बार वीसा को क्षमा प्रदान कर लौट जा।" किन्तु 'विनाशकाले विपरीतबुद्धि' के अनुसार अहंकारी दूढा ने देवी के उस पल्ले मे मुट्ठी भर कर रेत डाल दी। इस प्रकार के क्रूर व्यवहार से देवी की कोपाग्नि भडक उठी और उसने दूढा को यह शाप दे दिया कि उसका राज्य छिन जायगा और वह घर पहुँचते ही मृत्यु को प्राप्त होगा। कवि के शब्दो मे—

"क्रोध कियौ महमाय कडक्की। धुजै वोम धरण मोम धड़क्की।
कहियौ देवल राज न करसी। मूरख घरै पौतियां मरसी॥"[‡]

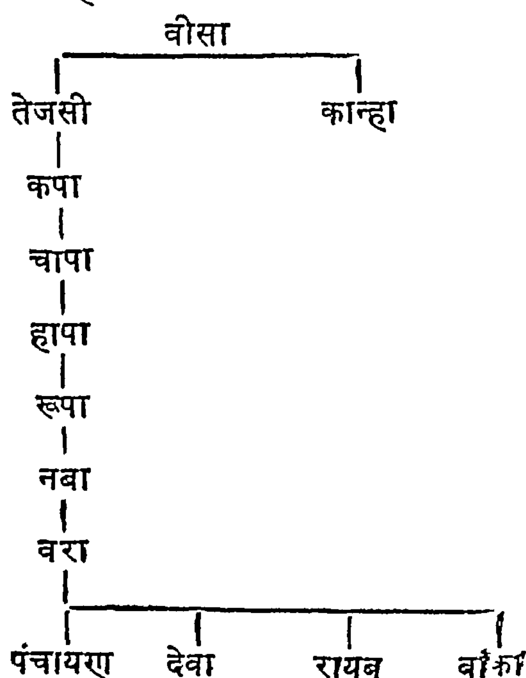
[†]ऊन का वस्त्र-विशेष जो पवित्रता का प्रतीक माना जाता है और प्राचीन युग मे पश्चिमी भारत की स्त्रियो मे इसे पहनने की अधिक प्रथा थी।

[‡] सोढायण' पृ० १७

इधर सोढा वीसा ने देवी के चरणो मे पड कर उसकी स्तुति की। आगे कवि ने लिखा है कि वीसा के द्वारा शुद्ध भाव से स्तुति की जाने पर देवल देवी ने प्रसन्न होकर उमरकोट का राज्य उसे पुरस्कार-स्वरूप भेट कर दिया, यथा—

"कर असतूत प्रणांम कर, वीसै लियो व्रदांम।
देवल रीझे देत है, उमरकोट ईनांम॥
लाग पगे वर सुद्ध ले, अमर नाम आसीस।
कायम राजस तू करे, सगत क्रपा तो सीस॥"†

इस प्रकार राज्य-प्राप्ति का वरदान पाकर वीसा ने बडे उत्साह एव शौर्य से उमरकोट पर चढाई कर दी। उस समय शूरवीर लोग वीसा से कहने लगे कि, हे वीसा! अब तो तेरी आकृति कही अधिक बलशाली दिखाई दे रही है। फिर उमरकोट मे जाकर मारकाट शुरू की तो दूढा वहाँ से राज्य-सिहासन छोडकर भाग खडा हुआ। पीछे से भाले का घाव लगने से वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् अन्य सेना का भी सहार कर दिया गया और वीसा उमरकोट के सिहासन पर पुन: आसीन हो गया। राज्य मिलने के पश्चात् वीसा ने ६८ वर्ष तक उमरकोट पर शासन किया और बाद मे देहावसान होने पर उसका पुत्र तेजसी राज्यगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ। इससे आगे शासको मे कोई क्रांतिकारी राणा नही होने से कवि ने कई पीढियो तक केवल नामो का ही उल्लेख किया है, जो क्रमश: इस प्रकार है—

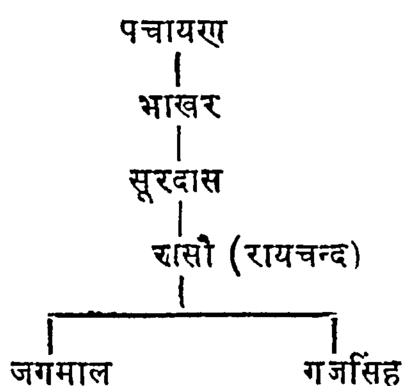


†'सोढायण' पृ० २०

इन चारों के नाम से ४ प्रमुख घडे बने, जिनका वर्णन श्री चिमनजी ने एक छप्पय मे इस प्रकार किया है—

'वैरावत' घर वीर, भूप, 'पचाण' भणीजै।
'देवौ' जुग दातार, गढां गांजणौ गिणीजै।
'रायब' मनवी रूक, सांक देणौ जग सारै।
'वाकौ' जोध वखाण, माण अरियांणां मारै।
घजबघ च्यार मोटा घडा, फमण ईढ ज्यैसू करै।
वाखांण 'चिमन' दाखै विगत, सोढौ 'पचायण' सिरै॥'†

आगे कवि ने वैरा (वैरसी) के चारो पुत्रो मे बने चार प्रमुख घडो मे से केवल पाटवी कुवर पचायण तथा उसके वशजो को ही अपने ग्रन्थ का विषय बनाया है। इससे आगे कई शासको के केवल नामों का ही उल्लेख किया गया है, जैसे—



सोढा रायचंद के पाटवी कुंवर जगमाल ने गोधानेर‡ नामक शहर पर अपनी नई राजधानी स्थापित कर सुख शान्ति से शासन करना प्रारंभ किया। उसका छोटा भाई गर्जसिह अपने शौर्य एवं पराक्रम से राज्य के सरक्षण-कार्य मे सहायक बन कर साथ रहने लगा। सारे राज्य मे प्रजा फूलो-छाई आनद की बाँसुरी बजा रही थी, ऐसे ही समय मे काबुल की ओर से सराई [बलोच] लोग जो प्रसिद्ध लुटेरे समझे जाते थे, धाट (उमरकोट क्षेत्र) मे लूट खसोट करने के लक्ष्य से आ पहुचे। लगभग ६० घोडो से सराई लुटरो ने उमरकोट इलाके के हिंदुओ की गायो को घेर लिया। यह खबर सुनते ही रासा (रायचद) का वीर पुत्र गर्जसिह उनका सामना करने के लिये जा भिड़ा। लगभग तीन घटे तक युद्ध

†'सोढायण' पृ०, २२।

‡गोधानेर को आजकल गोधियार कहते हैं, यह उमरकोट से करीब ३५-४० कोस पश्चिमोत्तर दिशा मे सलामकोट के पास स्थित है।

होता रहा और अंत मे वीर गजसिंह काम आ गया। इससे बलोचियों का उत्साह और भी अधिक बढा और अंत मे सोढो को पराजय तथा बलोच लुटेरों की जीत हो गयी। इस युद्ध का कुल १२ छंदो मे कवि ने ओजपूर्ण वर्णन किया है।

जब जगमाल सोढा को यह पता चला कि उसका प्रिय भाई लुटेरे सराइयों द्वारा काम आ गया, तो उसने शूरवीर एव चतुर सेनापति श्री ईशरदास राठौड की सलाह से कुछ चुने हुए योद्धाओ को लेकर शत्रु का पीछा करने की तैयारी की। वीर जगमाल का दृढ सकल्प एव दर्पोक्ति उसके चरित्र के अनुरूप ही थी, कि—

वधव खाय बळोचिया, जीत गया रिण जग।
वैर लियां नह वीर रो, (तो) पिछमी उदै पतंग॥

लुटरो की खबर लाने का कार्य स्वयं ईशरदास राठौड ने लिया और बाखासार गाँव (जिला बाडमेर) के समीप उनसे जा मिला। वहाँ ईशरदास ने उनसे कहा कि यदि शूरवीर होने का घमड हो तब तो पुन. लौटकर एक बार हमे ललकार कर युद्ध करो, वरन् इस प्रकार चोरो की भाँति भागने से तो तुम्हारी वीरता को लांछन ही लगेगा। कवि के शब्दो मे—

"वाकार सोढ पाछा वळो, फिरमर बांधे फौज कड।
इक वार घाट हालो उलट, (तो) जांणू खोसा जोरवर॥"

उपर्युक्त ललकार सुन कर लुटेरे सराइयो मे से जोगी, भोगी, कापडी और धीना नामक प्रमुख योद्धाओ ने युद्ध का पुनः निश्चय कर लिया। यहाँ कवि ने उन सराइयो के पौरुष का वर्णन किया है। उनकी लूटपाट का आतंक दूर-दूर तक छाया हुआ था, यथा—

"सोरठ देस हिलोहळ साधो। इळ दिखणाद माळवो धाधो।
वळ कर लूट लियो सिध बाधो। खोसां माल मुलक रो खाधो॥"†

इस प्रकार अंहकार मे चूर वे सराई लोग पुनः लौटे। इस बार के सग्राम की तैयारी के अतर्गत कवि ने अनेक प्रकार के घोड़ो की जातियो का वर्णन किया है, जिनमें मुख्यतया मक्कड़ा, मुल्तानी, अरबी, काबुली, ताजी, अवलख आदि-आदि है। ऐसे ५०० घोड़ो से चढ़कर सराई लोग पुनः घाट पर

† सोढायण' पृ० २९।

आ गये, किंतु इस बार आते समय उन्हे अपशकुन हुए अतः गोधानेर (गोधियार) न जाकर वे समीपवर्ती गाँव भोरीला को ही लूटने लगे। तब चेलार गाँव (उमरकोट) के निवासी सादूल गोत्र का शिवा नामक सोढा जो कुशलसिंह का पुत्र था, गरीब प्रजा की रक्षार्थ आततताइयों से जा भिडा। एक प्रहर तक घमासान युद्ध करता हुआ वीर क्षत्रिय शिवा उस मुठभेड मे काम आया। ठीक उसी समय ईशरदास वहाँ आ पहुँचा। उधर स्वर्गीय वीर गजसिंह के अग्रज और गोधानेर [गोधियार] के अधिपति श्री जगमाल ने सेनापति राठौड ईशरदास की सलाह से समस्त बन्धुओ एव अन्य क्षत्रियो को सदेश भेज कर शीघ्रातिशीघ्र बुलवाया। इस युद्ध मे पंचायरा, देवीदास, रायव, वाका, रणमल और रुगा सगोत्रियो के अतिरिक्त अन्य क्षत्रिय धांधल, खावडिया, भाटी, हिंगोलजा (दिपियासर निवासी), वाडमेरा (राठौड), चौहान आदि भी इकट्ठे हुए। यहाँ कवि ने सोढो की प्रायः सभी शाखाओ के नाम गिनाए है, जो इस प्रकार है:—

सुरताण, भोजराज, मानावत, सादूल, अजीत, मालदेव, गगदास, विजयरामोत, वैरसी, नबा, ऊदा, मेहराण, केलण, अखमालोत, सगरामसी, नागड, मदा, जेसा, आसकरणोत, सूरजमल, धोधा, कूरनिया, देपाल, पना, अर्जुनोत, वीरम, भारमलोत, नरसिघोत, तेजू आदि-आदि। इस प्रकार समस्त सोढो के वशज एव अन्य क्षत्रिय धाट मे इकट्ठे हुए। अफीम, मदिरा आदि की मुनहारें हुईं और नाना प्रकार से सबका स्वागत किया गया।

इसके पश्चात् वीरो ने गीता, भागवत आदि धार्मिक प्रसगों का अनुष्ठान करवा कर दान-पुण्यादि किया। तुलसी के पत्तो को शिर पर रख कर विष्णु सहस्र नाम के स्मरण सहित हर-हर महादेव का उद्घोष करते हुए वे शूरवीर उठ खडे हुए। फिर जगमाल की आज्ञा से सभी योद्धा घोडो पर सवार हुए और ईशरदास प्रधान सबका अगुवा बना। इससे आगे युद्ध-वर्णन किया गया है, जिसमे भड़ो (योद्धा) और घोड़ो की अतुल उमग के चित्रण सहित प्रमुख योद्धाओ के नाम भी गिनाये हैं।

सूर्योदय के समय सहसा ऐसी क्षत्रिय-सेना को आते देखा, तो सराइयो मे खलबली सी मच गई। बलोच जोगीखान ने कहा कि अब भागने से तो भूमि भारी हो जायेगी। इसी प्रकार धीनारखाँ और कापड़िखाँ नामक बलोचो ने भी यही मत प्रकट किया, कि भागने मे कुशलता नही है। धीनार और कापड़ी ने सभी को

कलमा, नमाज आदि पढ कर तैयार होने की सलाह दी और खाने-पीने की तैयारी का आदेश दिया। सब ने जाम चढाना शुरू किया और २३ भैसो को काट कर पुलाब आदि तैयार कर पेट भर कर खाया। यहाँ सराइयो की तैयारी का कवि ने बड़ा रोचक वर्णन किया है।

इस प्रकार जगमाल के साथ शत्रुदल के सभी प्रमुख योद्धाओ की भिडत होती है, जिसमें वीर जगमाल के प्रबल प्रहार उन सबको धराशायी कर देते हैं। सारे दिन युद्ध होता रहा और रात्रि के समय सब ने विश्राम किया। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही वीरवर जगमाल और मीर कापडीखाँ दोनो महान् योद्धा मैदान मे उतर पडे। दोनो के मुख-मण्डल पर शौर्य की आभा झलकने लगी और बड़ी दृढता एवं पौरुष के साथ वे तलवारे लेकर आमने-सामने आ पहुँचे। कापडीखाँ ने क्रोध एव अहकार मे जगमाल को कुछ दुर्वचन कह डाले, इस पर जगमाल ने ऐसी ललकार की, कि आकाश गूज उठा। उधर दाढी वाले [बलोच] ने अपनी दाढी पर सक्रोध हाथ फेरा, तो इधर मूछाला जगमाल अपनी मूछो पर ताव देने लगा। दोनो मे बराबरी की टक्कर थी, यथा—

"कायर पर्णं जगो नां क्रमियों। नह को धके कापडी नमियों।
बिहूं अवेडा खारा बोलैं। तार्णं मूछ केवाणां तोलैं॥"†

इसके पश्चात् वीर जगमाल ने अपने साथी योद्धाओ से कहा कि इन लुटेरों को किसी प्रकार मैदान मे ही रख देना है। आगे कवि ने क्षत्रिय-धर्म का चित्रण किया है। युद्ध-वर्णन यहाँ भी बड़ा सजाव है, परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे अनूठे वर्णन के सातवें छन्द से १३ वें छन्द तक के पन्ने अप्राप्य हैं। इस प्रकार वर्णन का महत्त्वपूर्ण अश नष्ट हो गया है। अन्त मे अपने अतुल शौर्य से वीर जगमाल विजयी होकर धाट इलाके की नाक रख लेता है। कवि एक दोहे मे उक्त वीरों की प्रशसा करता हुआ कहता है—

"धिन 'जग्गा' नव्वां धड़ैं, धिन 'ईसर' परधांन।
वैर 'गजे' रो वाळियो, दखैं रंग दुनियांन॥"‡

श्री जगमाल के पश्चात् उसके पुत्र जयसिंह का वर्णन किया है, जिसने सं० १८७३ वि० के भीषण दुर्भिक्ष मे चारण कवियो का प्रीतिपूर्वक पोषण किया

† 'सोढायण' पृ० ५२।
‡ ,, ,, ५६।

था। उस जयसिंह का पुत्र अखैराज हुआ, जो अपनी भव्य भक्ति के प्रभाव से आज भी पूजा जाता है। कवि के शब्दो मे—

"रिथ गादी 'जैसींग' रै, अवतरियो 'अखैराज'।
कुळ दीपग भगती करी, ऊ पूजीजै आज॥"†

अखैराज एक सत्यव्रती, शीलवान और सतोषी प्रकृति का व्यक्ति था, किन्तु उसकी इस भलमनसाहत का लोगो ने अनुचित लाभ उठाया। उसके सभी भाई उसकी जान के दुश्मन बन गये और अन्त मे भाग कर अखैराज को अपने ननिहाल लोद्राणी मे शरण लेनी पड़ी। तीन वर्ष तक वह अपने ननिहाल मे रहा। वहाँ उसके मन मे प्रतिशोध की भावना उमड पडी और उसने अपने मामाओ की सहायता से भारी फौज बना कर धाट पर चढाई कर दी। किन्तु जब साज-बाज के साथ अखैराज धाट मे आया तो उसके मन मे कुरुक्षेत्र के अर्जुन का सा मोह व्याप्त हो गया और अपने साथियो को कहा कि घोडो को वापिस फेर दो। भाइयो को मारने से बडा भारी पाप लगता है और यह भी तो मेरी ही प्रजा है, इन्हे मत लूटिये। इस प्रकार अखैराज वापिस अपने ननिहाल लोद्राणी आ गया और वहाँ पहुँच कर ईश्वर की भक्ति मे लीन हो गया। यहाँ कवि ने एक लम्बी स्तुति मे अखैराज द्वारा भगवान की भक्त-वत्सलता का वर्णन कराया है। उसकी भक्ति से प्रभावित होकर सभी भाइयो को सुमति सूझी और उन्होने जाकर अखैराज से क्षमा-याचना कर बडे सम्मान पूर्वक उसे पुनः राज्य-पाट पर आसीन किया। उसके ४ पुत्र थे, जिनके नाम क्रमश. खानुसिंह, शेरसिंह, हाथीसिंह और महासिंह थे। अखैराज के उपर्युक्त चारो पुत्रो मे महासिंह जिसे 'माहब' या 'मासीग' भी कहते थे, सब से वीर था। इसके वर्णन के केवल प्रारम्भिक ३ छन्द ही उपलब्ध हो सके, जिनमे महासिंह के द्वारा भोजराजोत, नदा आदि बराबरी के वीरो से भूमि छीन कर पर्वत तक सीमा बढ़ा लेने का वर्णन है। बीच के ६ छन्द अप्राप्य है। फिर १०वें छन्द से पन्ने प्राप्त हैं, जहाँ चिमनजी ने इसी महासिंह के पुत्र जानमसिंह सोढा का वर्णन किया है, जिसके पास कवि रहा था। उनके कुल की गौरव-गाथा की ओर सकेत करते हुए कवि ने उसे अपना आशीर्वाद भी प्रदान किया है, यथा—

† सोढायण', पृष्ठ ५६।

राजा से असतुष्ट थे, अत: देवराज भाटी से मिलकर षड्यन्त्र के द्वारा लुद्रवा सिद्ध देवराज के अधिकार मे करवा दिया। बरातियो के वेश मे १२०० योद्धाओ सहित देवराज लुद्रवे पहुँचा और वहाँ के लोद्र राजा नृपभानु की पुत्री से विवाह करने के बहाने हमला कर गढ जीत लिया था।† स्मरण रहे लुद्रवा के परमार राजा का नाम कर्नल टॉड ने नृपभानु लिखा है, किन्तु 'तवारीख जैसलमेर' मे पृ० २१ पर लिखा है कि गढ लुद्रवा के राजा ससभाण (शशिभानु) की पुत्री चपाकुवरि का विवाह भाटी देवराज के साथ हुआ था। उक्त तवारीख मे देवराज को १६ रानियो के नाम, पिता का नाम, जाति और स्थान एक सारिणी मे चित्रित किये गये हैं। किन्तु इसी वर्णन के क्रम मे अगले पृष्ठ (२२) पर लुद्रवा का राजा जसभान (यशभानु) लिखा है। मुद्रण की इस त्रुटि के कारण यह बताना कठिन है कि लुद्रवा का राजा शशिभानु था या यशभानु अथवा टॉड के अनुसार नृपभानु। श्री देवराज ने लुद्रवा को परमारो से ही जीत कर लिया था यह तो निश्चित है, किन्तु वह धरणीवराह का भाई था और भाण (भानु उसका नाम था, इसे मानने का कोई पुष्कल प्रमाण नही मिलता। यदि 'ससभाण', 'जसभाण' और 'नृपभाण' तीनो को ''हुवौ लोद्रवै 'भाण' भुव'' पक्ति से सही माने, तब भी धरणीवराह का समय स० ९१५ से पूर्व अथवा उसके आसपास ठहरता है।

'बाँकीदास री ख्यात' मे लिखा है कि (वर्तमान कोटडा के स्थान पर) पहले परमारो के द्वारा बनाया हुआ पहाड पर एक पक्का गढ था। उस कोट मे एक बन्धा हुआ कुआ था तथा दूसरा कुआ पहाड की तलहटी मे था। भाटी सिद्ध देवराज ने अपनी सेना भेज कर वह कोट गिरा दिया तथा कुए रेत से बूरा दिये थे। बाघा कोटडिया के पितामह राठौड चापा दूदावत ने पुन: पुराने कोट की नीव पर तीन परकोटे तथा ३ दरवाजे बनाये और तीनो कुए भी खुदवाये। उस गाँव का नाम कोटडा रखा।‡

राजा धरणीवराह का देवराज भाटी के समकालीन होने का एक उल्लेख कविराजा बाँकीदासजी की ख्यात मे मिलता है। ख्यात मे लिखा है कि धरणीवराह की बेटी होरड सिद्ध देवराज को ब्याही थी।* इस विवाह के

†'टॉड राजस्थान, प्रथम भाग, अनु० पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, पृ० ४८५।

‡'बाँकीदास री ख्यात' पृ० ५१।

*''धरणीवराह री बेटी नाम होरड सिध देवराज नूं परणाई'-'बाँकीदास री ख्यात' पृ० १०९।

सम्वन्ध मे कविराजा बाँकीदासजी ने अपने हाथ से लिखी एक संग्रह-नुमा पुस्तक (जिसमे कही कोई ग्रन्थ लिखा है, तो कही विविध ख्यातो की सक्षिप्त टिप्पणियाँ) मे कुछ और भी नये तथ्यो का उल्लेख किया है। उसमे एक जगह लिखा है, कि राजा धरणीवराह की रानी का नाम रेवा और पुत्री का नाम हूरड (प्रकाशित ख्यात मे होरड) था। हूरड सीकोतरी (शरीर को बदल कर गुप्त खबरे पहुँचाने वाली तथा उडने की विद्या जानने वाली तान्त्रिक स्त्री) थी। हूरड का विवाह सिद्ध देवराज भाटी के साथ हुआ था। धरणीवराह की रानी (रेवा) का पेट चीर कर गर्भ को बाहर निकाल कर मारा गया था। सिद्ध देवराज १२० वर्ष तक जीवित रहा, तथा शिकार खेलने गया जहाँ तुर्को ने उसे मार डाला था। सिद्ध देवराज ने राजधानी स्थापित की और रावल कहलाया, जब कि उसके पूर्वज राव कहलाते थे।†

वास्तविक तथ्य उपर्युक्त वर्णन से कुछ भिन्न है। श्री बाँकीदासजी ने देवराज भाटी के जिस स्वसुर का नाम धरणीवराह लिखा है, अन्य इतिहासो में उसे वराह जाति का राजा लिखा है, जो अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है। कर्नल टॉड के अनुसार भाटी विजयराव स० ८७० वि० मे अपने पिता [राव तन्नू] के राज्य-सिंहासन पर बैठा। उसके पश्चात् उसने अपने वंश के प्राचीन शत्रु वराह जाति के साथ युद्ध करने का निश्चय किया और वराह लोगो पर आक्रमण कर के उनकी सारी सम्पत्ति लूट ली। स० ८९२ वि० मे बूटा (भुट्टा) जाति की रानी के गर्भ से एक कुमार उत्पन्न हुआ, जिसका नाम देवराज रखा।‡ भटिंडा [पजाब] के वराह राजा विनयपाल (सभवतः वराह भाराजी का पुत्र होगा, क्योकि देवराज के पिता विजयराव का भी एक विवाह भटिंडे के वराह राजा भाराजी की पुत्री से हुआ था, ऐसा 'तवारीख जैसलमेर' के पृ० १८ पर उल्लेख है) ने राजा विजयराव भाटी के साथ विश्वासघात करने की ठानी। उसने विजयराव को कहलाया कि

---

†"सिध देवराज री राणी हूरड नांम जिका सीकोतरी हुती। सिध देवराज री सासू धरणीबराह री रांणी नांम रेवा जिणरै गरभ पेट चीराय बारै काढि मारियौ। सिध देवराज १२० वरस जीवियौ, सिकार रमण गयौ जठै तुरकां मारियौ। सिध देवराज राजस्थान बाधियौ, आगे राव कहीजता देवराज रावळ कहाणो।" [कविराजा बांकीदासजी]

‡टॉड कृत 'राजस्थान का इतिहास' भाग २, 'जैसलमेर का इतिहास' पृ० ४८३, अनु० प० बलदेवप्रसाद मिश्र।

"जगपती बाप वेटास जोड़। कीज्योस राज् वरसा किरोड़।
सम्रांमकोट थाहर समाज। राजद्र अवचचळ करो राज।
महारती राखियों अती मांन। दाखियो ग्रन्थ कव 'चिमनदान'॥"†

आगे कवि ने स्वय अपना पता व परिचय लिखा है, जैसे—

"सिवदान घडे कवियो सुजाण। वाचिया जेण ऐसा वखांण।
जिण पिता लुद्रदानस जान। दादो स प्रगटियो करनिदान॥"‡

ऐसे कुल १५ छन्द थे, किन्तु उक्त अन्तिम छन्द ही उपलब्ध है। ग्रन्थ की समाप्ति पर कवि ने ३ दोहे लिखे हैं, जिनमे प्रथम मे ग्रन्थ की निर्माण-तिथि, द्वितीय मे कवि का नाम-पता व प्रेरक श्री जालमसिंह सोढा का नाम, और तृतीय दोहे मे अपनी सभाव्य भूल के लिये कवि अग्रिम क्षमा-याचना करता है। वे दोहे इस प्रकार हैं—

"कह तेतीसे वरस कव, तिथ काती सुद तीज।
सम्मत उगणीसे समे, रांण समापे रीज॥१॥
गांम विराई जोधगढ, जात सु कवियो जांण।
'चिमनो' कीरत उच्चरे, रीझे 'जालम' राण॥२॥
कव 'चिमने' रूपग कयो, सोढां साख सिणगार।
हू भूलो चूको होऊं (तो) सक्कव लियो सुधार॥३॥"

इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल स्वय कवि के लेखानुसार स० १९३३ वि० मिति कार्तिक शुक्ला ३ है। ग्रन्थ की पुष्पिका मे भो कवि ने यही लिखा है—

"समत १९३३ काती सुद ३ सुभवस्तु कल्यांणवस्तु दाा चिमने रा छै श्री श्री श्री॥"

५. 'सोढायण' का ऐतिहासिक विवेचन—

'सोढायण' की कथावस्तु को इतिहास की कसौटी पर कसते समय सर्वप्रथम हमारा ध्यान राजा धरणीवराह के समय पर जाता है। 'सोढायण' का कथारभ बाहड़ (वाग्भट) राजा से होता है, जो इतिहास मे धरणीवराह के नाम से अधिक प्रसिद्ध समझा जाता है। बाहड के नाम से बाहड़मेर (वाग्भटमेरु) शहर बसा

† 'सोढायण', पृष्ठ ६४।
‡ ,, ,, ६५।

था। इसी ब्राह्ड का पुत्र छाहड था, जिसके पीछे परमारो मे छाहड नाम की शाखा बनी और 'छाहड़ार' (छाहड़सर) नामक गाँव भी इसी के नाम से बसा, जो अद्यावधि इसी नाम से प्रसिद्ध है और चौहटन (बाडमेर) के निकट स्थित है। छाहड का बडा पुत्र सोढा था, जिसके पोछे परमारो मे सोढा शाखा बनी। सोढा किस समय मे हुआ और कौन से वर्ष मे धाट मे पहुँचकर उसने अपना राज्य स्थापित किया? इसका पता लगाने के लिये सोढा के पितामह धरणीवराह का समय ज्ञात करना अत्यन्त आवश्यक होगा। धरणीवराह के समय को इतिहासकारो ने अलग-अलग सवतो के मध्य उलझा दिया है—

एक प्राचीन छप्पय के अनुसार धरणीवराह ने मारवाड के नौ कोटो (जिनसे 'नवकोटी मारवाड' कहलाती थी) को अपने ९ ही भाइयो मे बाँट दिया था। वह छप्पय इस प्रकार है—

'मंडोवर[1] सामंत, हुवौ अजमेर[2] सिद्ध सुव।
गढ पूगळ[3] गजमल्ल, हुवौ लोद्रवे[4] भांण भुव।
अल्ल पल्ल अरबद्द[5], भोज राजा जाळधर[6]।
जोगराज धर धाट[7], हुवौ हांसू पाराकर[8]।
नवकोट किराडू[9] सजुगत, थिर पवार-हर थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइयां, कोट बांट जू-जू किया ॥१॥'

उक्त छप्पय मे उल्लिखित नौ ही कोटो के सस्थापको अथवा प्रसिद्ध शासक-वशो के समय के साथ धरणीवराह का समय आँकना पडेगा। छप्पय मे वर्णित ९ कोटो मे अजमेर का नाम भी है, जो अजयदेव चौहान के समय मे बसा था और अजयदेव का समय सं० ११६५ वि० के करीब आता है।† लोद्रवे का नाम भो विचारणीय प्रश्न है। जैसलमेर की ख्यात के अनुसार स० ९१५ वि० मे भाटी देवराज ने लोद्रवा पर अपना अधिकार कर लिया था। सभवतः परमार धरणीवराह के वशजो के पास से उसने विजय किया हो।‡ इस संभावना के अनुसार धरणीवराह का समय स० ९१५ वि० के पूर्व ठहरता है। भाटी देवराज ने लुद्रवे को अपने अधिकार मे किया था, उस समय वहाँ पर लोद्रा शाखा के परमार क्षत्रिय ही राज्य करते थे, यह तो निश्चित है।* लोद्र राजपूत अपने

†प० विश्वेश्वरनाथ रेउ 'मारवाड का इतिहास', प्रथम भाग, पृ० ११।
‡श्री रामकरण आसोपा 'भारत-मार्तण्ड', मारवाड का सक्षिप्त इतिहास' पृ० ८।
*श्री जगदीशसिंह गहलोत 'राजपूताने का इतिहास' पहला भाग, पृ० ६३९।

हमारा जितना मुल्क तुमने छीना है, वह हम प्रसन्नता से छोडने को राजी हैं तथा अपनी पुत्री का विवाह तुम्हारे पुत्र देवराज के साथ कर सदा के लिये मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। इस प्रकार विजयराव बारात (टॉड के अनुसार ८०० व्यक्ति तथा 'तवारीख जैसलमेर' के अनुसार १३०० व्यक्ति) लेकर भटिंडे पहुँचा। विवाह सम्पन्न होने पर शराब पिला कर धोखे से सभी बारातियों को मौत के घाट उतार दिया गया। तत्पश्चात् वराह विनयपाल जनाने मे दुल्हन के साथ सोये हुए अपने दामाद देवराज भाटी को मारने गया, किन्तु देवराज की सास ने अपनी चतुराई से पति को समझा बुझा कर रात भर के लिये उस जघन्य कर्म से रोका और उधर युक्ति से देवराज को (एक राईका के साथ) भगा कर जीवित रखा।† इस प्रकार कर्नल टॉड, ठा० किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य, श्री जगदीशसिंह गहलोत, श्री रामनाथ रत्नू, मेहता नथमल आदि सभी इतिहासकारो ने अपने-अपने इतिहास-ग्रन्थो मे इसी तथ्य को माना है, कि देवराज का विवाह भटिंडे के वराह जाति के राजा की पुत्री के साथ हुआ था, न कि धरणीवराह की पुत्री से।

श्री बाँकीदासजी ने देवराज की सास का नाम रेवा तथा पत्नी का नाम होरड़ लिख कर, रेवा का पेट चीर कर गर्भ निकालने की जिस घटना का उल्लेख किया है, उसका दूसरा रूप इस प्रकार मिलता है—

देवराज विवाह के पश्चात् किये गये धोखे से सावधान होकर सास की मदद से किसी राईका (रब्बारी) के साथ ऊँट पर भागा और देवायच नामक एक पुरोहित की शरण मे जा पहुँचा। पीछे वाहर आई तथा पागी ने कहा कि देवराज के पद-चिह्न उस ढाणी मे आये है। पूछताछ मे अधिक कठोरता का व्यवहार करने पर पुरोहित देवायच ने जनेऊ पहनाये हुए देवराज को अपना पुत्र बतलाया और वराहो के कहने पर उसने देवराज को अपने पुत्र रतन के साथ एक थाली मे भोजन भी करवा दिया। इससे भ्रम मिट गया और वराह लोग चले गये। उस रतन पुरोहित को चारण बना कर देवराज ने खूब सम्मानित किया था और उसके वंशज रत्नू गोत्र के चारण अद्यावधि भाटियो के 'पौलपात्र' बने रहे। इनके पारस्परिक प्रगाढ़ सम्बन्ध का सूचक एक दोहा है—

"सौदा नै सीसोदिया, रोहड नै राठोड़।
दुरसावत नै देवड़ा, (ज्यूं) जादव रतनू जोड़ ॥१॥"

---

†श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य—'चारण' खण्ड १, अंक १०, पृ० २३६

वही पुरोहित देवायच उम्र भर देवराज का सहायक बना रहा। उधर वीझासणियाँ नामक महाशक्ति के नाम से सं० ८७३ मे बनाये हुए वीझणोट† गढ पर वराहो ने हमला किया, जहाँ अत्यन्त वृद्धावस्था मे राव तन्नू ने मुकाबला किया। ख्यातो के अनुसार राव तन्नू ने ८० वर्ष तक राज्य किया था तथा अधिक वृद्ध हो जाने पर अपने पुत्र विजयराव को युवराज-पद देकर स्वय हरि-कीर्तन में लीन रहते थे। उस युद्ध मे राव तन्नू मारे गये और गढ वराहो के अधिकार मे आ गया। यह घटना 'तवारीख-जैसलमेर' के अनुसार स० ८९८ वि० की है। देवराज की माता किसी प्रकार भाग कर अपने पीहर चली गई। लगभग १० वर्ष तक देवराज गुप्त रूप से वराहो के राज्य मे रहा और बाद मे अपने मामा जज्जा (जूजयराज) भुट्टा (राठौड़) के पास गया और अपनी माता से मिला। वहाँ पर जज्जा भुट्टा से देवराज ने रहने के लिये कुछ जमीन माँगी। जज्जा ने साधारण भूखड दिया, जहाँ देवराज ने किला बनवाना शुरू किया। भुट्टो को इससे सन्देह होने लगा और उन्होने मना कर दिया। इस पर देवराज को माता सातन भुट्टी अपने भाई के पास जाकर बोली, कि—

सुण जज्जा इक वीणती, वैण न पच्छा लेह।
का भुट्टां का भाटियां, झोट अडावण देह ॥१॥

भुट्टे नही माने और फौज लेकर चले आये। इस पर समझौता करने के लिये भुट्टो मे से चुने हुए १२० व्यक्ति किले मे बुलवाये गए और युक्ति से उन्हें मार डाला। इस धोखे का पता चलते ही अन्य भुट्टो ने युद्ध किया, किन्तु देवराज के पास छिपी हुई फौज थी, जिसने जज्जा को मार कर अन्य भुट्टो को भगा दिया। वहाँ पर एक गढ बनवाया जो देवरावल' या 'देवगढ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। टॉड के अनुसार इस गढ का पहले 'भटनेर' नाम रखा था और उसकी प्रतिष्ठा स० ९०९ माघ वदि ५ को करवाई थी।‡ किन्तु 'तवारीख जैसलमेर' के अनुसार राव भाटीजी ने स० ३४२ मे 'भटनेर' दुर्ग बना कर राजधानी बनाई थी।* यह तथ्य अधिक ठीक लगता है। इसके पश्चात् देवराज ने भटिंडे जाकर वराहो पर हमला कर वैर लेने की सोची। वे जो कुछ भी मन्त्रणा करते, उसकी खबर तत्काल भटिंडे वाले वराहो को मिल जाती थी। इस रहस्य का पता लगाते

---

†कही-कही तन्नोटगढ भी लिखा है, जिसे राव तन्नू जी ने बनवाया था।

‡'टॉड-राजस्थान' अनु० पं० बलदेवप्रसाद मिश्र पृ ४८५।

*'तवारीख-जैसलमेर' ले० श्री नथमल महता, पृ० १४।

समय एक बिल्ली ध्यान मे आई, जो हर समय इन लोगो के पास बैठी मिलती थी। उस बिल्ली को मारा गया, त्यो ही देवराज को रानी हूरड[†] (हरकुंवर) का प्राणान्त हो गया। वास्तव मे हूरड सीकोतरी थी, जो बिल्ली के रूप मे देवराज की बात सुन कर पिता को खबर पहुँचाती थी। इस रहस्य का पता लगने पर गर्भवती हूरड़ का पेट चीर कर बच्चे को बाहर निकाला और छैना नाम रख कर उसे दाई को सौंपा। फिर फौज लेकर देवराज भटिंडे पहुँचा तथा वराहो, पँवारो एव झालोसे वैर लेकर अपना अधिकार जमाया।[‡]

इस प्रकार पेट चीर कर गर्भ बाहर निकालने की घटना रेवा के साथ न होकर रेवा की पुत्री हूरड के साथ हुई, यह तथ्य ठीक जंचता है। देवराज ने ५२ प्रवाडे (महायुद्ध) जीते थे और १२१ वर्ष तक राज्य किया था। स १०३० वि० मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष मे शिकार खेलने गये, जहाँ छानिया जाति के बलोचो से मुकाबला हुआ और उसमे मारे गये।[*] श्री बाँकीदासजी ने देवराज भाटी की उम्र १२० वर्ष मानी है तथा श्री रामनाथ रत्नू ने 'इतिहास-राजस्थान' मे १३० वर्ष की आयु का उल्लेख किया है। श्री पूरणचन्द नाहर ने सं० १०२२ वि० मे १३० वर्ष की आयु मे देवराज भाटी की मृत्यु का वर्णन किया है।[††] टॉड के अनुसार ५२ वर्ष राज्य किया, तथा ख्यातो मे लिखा है, कि ६० वर्ष तक जीवित रहे थे। सत्य क्या है, यह ईश्वर ही जाने। दूसरी ओर देवराज का राज्य-काल शिलालेखो के आधार पर सं. ८१४ के आसपास निकलता है। परिहार राजा बाहुक के स० ८९४ चैत्र शुक्ला ५ के शिलालेख से पता चलता है, कि मडोर के राजा शिलुक परिहार ने देवराज भाटी को हराया था।[‡‡] यह मत इतिहासकार श्री जगदीशसिंह गहलोत का है और दूसरी ओर वे स्वय अपने उसी इतिहास मे

[†]'हूरड का नाम 'तवारीख-जैसलमेर' तथा जगदीशसिंह गहलोत के 'राजपूताने के इतिहास' में हरकुंवर लिखा है। संभवत हूरड इसी का अपभ्रंश रूप है। श्री किशोरसिंह वार्हस्पत्य ने देवराज के स्वसुर यानी हूरड के पिता का नाम विजयपाल वाराह लिखा है, किन्तु श्री जगदीशसिंह गहलोत ने अपने इतिहास में लिखा है कि 'वाराहपति अमरा की पुत्री हरकुवर के साथ देवराज का विवाह हुआ'। देखिये—'राजपूताने का इतिहास' प्रथम भाग पृ० ६५४।

[‡]श्री नथमल महता—'तवारीख जैसलमेर' पृ० २०।

[*] " " " " पृ० २३।

[††]'जैन-लेख-संग्रह', भूमिका पृ० ५, सम्पा० श्री पूरणचन्द नाहर।

[‡‡]श्री जगदीशसिंह गहलोत 'राजपूताने का इतिहास' पहला भाग पृ० ६५५।

पृ० ६३९ पर लिखते हैं, कि रावल देवराज भाटी ने १०वी शताब्दी मे पँवार राजपूतों की लोद्रा शाखा से लोद्रवा छीन कर अपनी राजधानी स्थापित की। इस प्रकार देवराज की जन्म-तिथि तथा आयु के विषय मे निश्चित मत के लिये विशेष शोध की आवश्यकता है।

उक्त विवेचन के आधार पर यह तो स्पष्ट हो गया कि देवराज भाटी ने लुद्रवा को परमारो की ही एक शाखा से छीन कर लिया था तथा उस समय से पूर्व मारवाड़ मे शिववाडी (कोटडा) पर भी परमारो का अधिकार रहा था। धरणीवराह के साथ देवराज का सम्बन्ध न होकर भटिंडे के वराह जाति के राजा (विनयपाल या अमरा) की पुत्री के साथ ही देवराज का विवाह हुआ था। लुद्रवे का राजा (ससभाण, जसभाण या नृपभाण) धरणीवराह का भाई भांण ही था, इसका भी कोई प्रमाण नही मिलता। अतः उक्त छप्पय में अंकित तथ्य लुद्रवा तथा अजमेर पर तो लागू नही होते।

मडोर पर परिहारो का आधिपत्य ७वी शताब्दी से ही सिद्ध होता है, किन्तु स० ६०० से लेकर ११०० वि० तक तो बडा शक्तिशाली शासन रहा।† श्री जगदीशसिंह गहलोत के उपर्युक्त मतानुसार मडोर के परिहार (प्रतिहार) राजा शिलुक ने देवराज भाटी को हराया था। यह शिलालेख स० ८९४ वि० का है। दूसरा ओर जोधपुर के परकोटे मे मिले स० ६४० वि० के एक शिलालेख से प्रकट होता है, कि मडोर के परिहार राजा बाउक ने मयूर राजा पर विजय प्राप्त की थी।‡ बाद मे नाहड़ (नागभट) राव पडिहार (द्वितीय) ने मडोर का गढ तथा पुष्कर-तीर्थ का घाट बनवाया था, ऐसा कविराजा श्री बाँकीदासजी ने लिखा है।* स० ६१८ वि० का एक शिलालेख गाँव घटियाला (जोधपुर) में मिला, उसमे भी परिहार राजाओ का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अन्य शिलालेख आदि प्रमाणो से मडोर पर सातवी शताब्दी से स० १२०० वि० तक परमारो का अधिकार होना सिद्ध होता है।††

---

†श्री रामकरण आसोपा—'भारत-मार्तण्ड' मारवाड का संक्षिप्त इतिहास, पृ०१३-१४

‡श्री रामकरण आसोपा—'भारत-मार्तण्ड' मारवाड का संक्षिप्त इतिहास, पृ०१३-१४

*उक्त विवरण कविराजा बाँकीदासजी के पुस्तकालय (जो अभी उनके वंशजों के पास है) की एक हस्तलिखित प्रति (पुस्तक न० २७) के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है।

††श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ 'मारवाड़ का इतिहास' प्रथम भाग, पृ० ८

राठौड राव धूहड (ध्रुवभट) ने पडिहारो के बहुत से गाँव दबा कर अपने खेड (मारवाड) के राज्य मे मिला दिये थे। इससे राठौडो और पडिहारो मे गांव तीगडी (पचपदरा-मारवाड) मे घोर युद्ध हुआ, जिसमे राव धूहड पडिहारो के हाथ से मारा गया। राव धूहड का स० १३६६ वि० का एक शिलालेख मिला है। राव धूहड़ के पुत्र रायपाल ने पितृ-वैर का बदला लेने के लिए मण्डोर पर आक्रमण कर पडिहारो से छीन लिया परतु कुछ ही अर्से मे पडिहारो ने मडोर पर पुनः अधिकार कर लिया था।† उक्त विवरण के आधार पर पता चलता है, कि राजा धरणीवराह के द्वारा अपने सामन्त नामक भाई को मंडोर बाँट मे देने की घटना अप्रामाणिक है और वह भी अजमेर, लुद्रवा आदि ९ कोटो के साथ। इस प्रकार छप्पय मे वर्णित अजमेर, लुद्रवा तथा मडोर पर धरणीवराह परमार या उसके भाइयो का एक ही समय मे राज्य था, ऐसा सिद्ध नही होता।

अब प्रश्न उठता है, कि जालोर को परमार धरणीवराह के द्वारा उसके भाई भोज को देने की बात कहाँ तक सही है? जालोर पर परमारो का राज्य तो खूब रहा और वहाँ के शासको की वशावली भी प्राप्त हुई। जालोर से मिले स० ११७४ वि० आषाढ शुक्ला ५ के एक शिलालेख से प्रकट होता है, कि तत्कालीन परमार शासक वीसल की रानी मेलरदेवी ने वहाँ सिंधुराजेश्वर के मन्दिर पर उक्त संवत् मे स्वर्ण-कलश चढाया था। वीसल से पहले की पीढियो के नाम भी उस लेख मे अंकित है। वाक्पतिराज परमार से जालोर के परमारो की शाखा चली, जिसकी छठी पीढी मे वीसल परमार हुआ, जिसका उपर्युक्त शिलालेख है।‡ इस हिसाब से स० ११७४ वि० से लेकर वाक्पतिराज तक के नामो मे भोज नामक कोई शासक सिद्ध नही होता और यही वह अवधि हो सकती है, जिससे छप्पय मे वर्णित नामो की समकालीनता ढूँढो जा सके।

यद्यपि भोज नाम के परमार शासक तीन हुए हैं, जिनमे प्रथम भोज का समय स० ६३१ वि०, द्वितोय का सं० ७२१ वि० तथा तृतीय का स० ११०० वि० के लगभग माना गया हैं।* उधर कविराजा बाँकीदासजी नें अपनी एक हस्तलिखित पुस्तक (जिसका विवरण पीछे पाद-टिप्पणी मे दिया जा चुका है) मे लिखा है, कि स० ७२१ वि० मे राजा भोज ने धारानगरी बसाई थी।

---

†श्री रामकरण आसोपा 'आसोप का इतिहास' पृ० ६।

‡श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा—'सिरोही का इतिहास' पृ० १४८ का फुटनोट।

*'टॉड-राजस्थान' भाग २, अनु० पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, पृ० ४७ का फुटनोट।

इस प्रकार यह द्वितीय भोज माना जा सकता है। उसी पुस्तक मे आगे लिखा है, कि स० १०७७ मे राजा भोज के पुत्र वीरनारायण ने सिवाना का दुर्ग बनवाया था। सभवत यह तृतीय भोज का पुत्र होगा। मुहता नैणसी ने सिंधुलसेन का पुत्र भोज माना है।† सिंधुलसेन को सिंधुराज मानें तो इतिहासकार रेउजी के अनुसार सिंधुराज का समय स० ६५६ वि० के आसपास ठहरता है।

सिंधुराज मारवाड़ का राजा रहा, इस बात की पुष्टि किराड़ू से मिले सं० १२१८ वि० (परमार सोमेश्वर के समय) के एक लेख से भी होती है, जिसमे लिखा है 'सिंधुराजो महाराजः समभून्मरुमडले'।‡ इस सिंधुराज के पुत्र का नाम भोज न होकर श्री ओझाजी के अनुसार उत्पलराज था। वसतगढ से मिले स० १०६६ वि० के एक शिलालेख मे उत्पलराज से वशावली शुरू होती है, जिसमे उत्पलराज, अरण्यराज, कृष्णराज (प्रथम) और धरणीवराह के नाम क्रमश अंकित हैं।* इस शाखा को आबू के परमारो की शाखा माना गया है। इस प्रकार उक्त विवेचन से भोज नामक परमार का न तो धरणीवराह का भाई होना सिद्ध होता है और न जालोर का राजा ही, अत छप्पय की उक्ति ऐतिहासिक कसौटी पर खरी नही उतरती।

धरणीवराह तथा उसके भाइयो के अधिकृत नौ कोटो का वर्णन किसी परवर्त्ती कवि ने सुनी सुनाई बातो के आधार पर उक्त छप्पय मे कर दिया होगा, ऐसा लगता है। फिर भी इतना तो मानना ही होगा, कि स० ६०० से लेकर विक्रम की १४वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मारवाड़ के कुछ भागो मे परमारों का अधिकार अवश्य ही रहा था।

परमारो की मुख्य तीन शाखाएँ—आबू की शाखा, जालोर की शाखा और किराड की शाखा मारवाड मे राज्य करती थी। आबू के परमारो का राज्य मारवाड, सिरोही, पालनपुर तथा दाँता राज्यो के कितनेक हिस्से पर था। आबू से निकले परमारो का प्रबल राज्य मालवा पर रहा, जहा मुज, भोज तथा अर्जुनवर्मा आदि प्रसिद्ध और विद्वान राजा हुए।††

---

† मुहता नैणसी री ख्यात' प्रथम भाग, पृ० ३३६।

‡ श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ 'मारवाड का इतिहास' प्रथम भाग, पृ० १०।

* श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा 'सिरोही का इतिहास' पृ० १४४।

†† ,, ,, ,, पृ० १४३।

सिंधुराज परमार का मारवाड़ का राजा होना तो सिद्ध होता ही है और उसका समय जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, स० ६५६ वि० के लगभग था। तब से लेकर दीर्घकाल तक परमार-राज्य के चिह्न यत्रतत्र मिल ही जाते हैं, यथा—

(१) स० ६१५ वि० के लगभग देवराज भाटी ने लुद्रवा को राजधानी और शिववाड़ी कोटडा आदि स्थानो को परमारो से ही जीत कर लिया था, इसका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

(२) पोकरण से स० १०७० वि० का एक शिलालेख मिला है, जिसके अनुसार उस समय वहाँ पर परमारो का अधिकार होना सिद्ध होता है।†

(३) जालौर के शिलालेख (जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है) से भी, विक्रम की १२वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक जालौर पर परमारो का अधिकार होना पाया जाता है।

(४) कविराजा बाँकीदासजी ने अपनी ख्यात मे लिखा है, कि सवत् १२१६ वि० माघ कृष्णा ११ को परमारो के पास से देवड़ा कीतू ने आबू ले लिया था।‡ इससे यह तो सिद्ध हो जाता है, कि स० १२१६ वि० तक आबू पर परमारो का राज्य रहा था।

(५) इतिहास मे ऐसा उल्लेख मिलता है, कि राठौड़ राव धूहड (ध्रुवभट) के ज्येष्ठ पुत्र रायमल ने वाडमेर (वाग्भटमेरु) के पंवारो (परमारो) को परास्त करके ५६० गाँवो के साथ वाहडमेर का प्रान्त ले लिया था।* पीछे लिखा जा चुका है, कि राव धूहड का स० १३६६ वि० का एक शिलालेख मिला है। इससे यह तो निश्चित है, कि परमारो के पास से राव रायपाल ने उपर्युक्त प्रदेश उक्त सवत् के बाद ही छीना होगा। इस प्रकार विक्रम की चौदहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मारवाड़ मे परमारो का न्यूनाधिक अधिकार होना सिद्ध होता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है, कि अनेक भ्रान्तियो के निराकरण के पश्चात धरणीवराह का सही समय सप्रमाण ज्ञात किया जाय। धरणीवराह के विषय

---

†श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ 'मारवाड का इतिहास' प्रथम भाग पृ० १०।

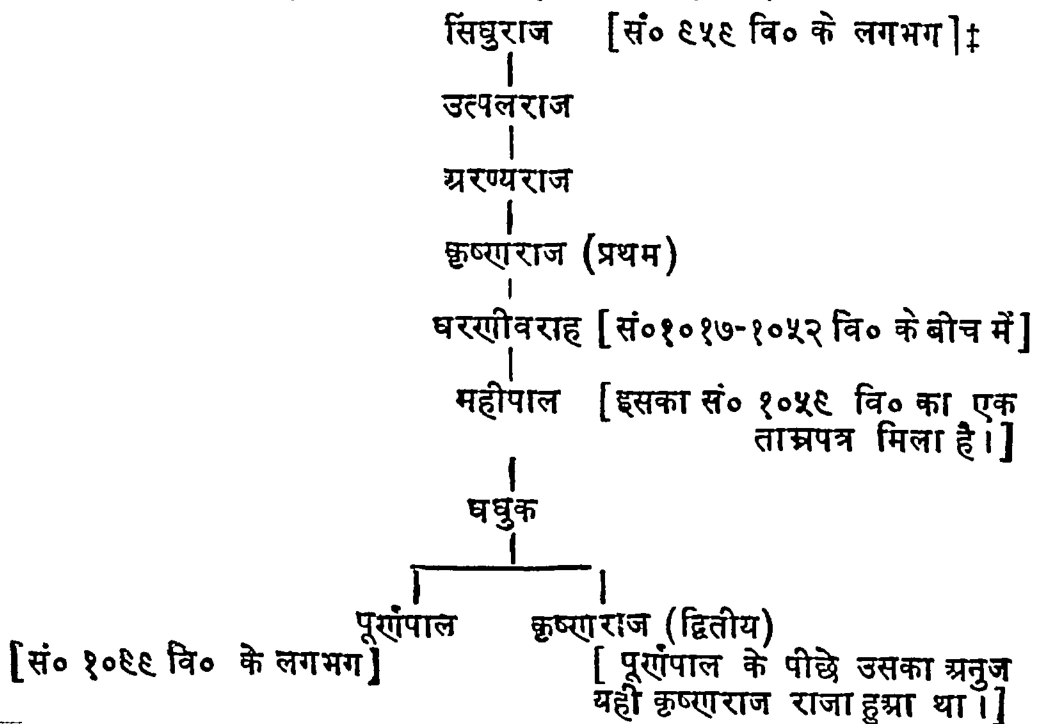
‡ बाँकीदास री ख्यात' पृ० १५४।

*पं० रामकरण आसोपा आसोप का इतिहास' पृ० ७।

में निम्नलिखित कुछ प्रामाणिक तथ्य सामने आये हैं, जिनके आधार पर हम उसके समय का अनुमान लगा सकते हैं, यथा—

(१) मारवाड़ के गाँव हथूडी (हस्तिकुण्डी) मे मिले राठौड राजा धवल के स० १०५३ वि० के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि जिस समय सोलकी मूलराज ने धरणीवराह पर चढाई की, तब उस (धरणीवराह) ने राष्ट्रकूट (राठौड) राजा धवली की शरण ली थी। सोलक मूलराज ने स० १०१७ से १०५२ वि० तक राज्य किया, अतः यह घटना इन संवतो के बीच मे किसी समय घटित होनी चाहिये।† इससे स० १०१७ से १०५२ वि० के बीच राजा धरणीवराह का जीवित रहना सिद्ध होता है।

(२) मरुमण्डल-प्रदेश के राजा सिंधुराज परमार का समय इतिहासकार श्री रेउजी ने स० ९४९ वि० के लगभग माना है। सिंधुराज परमार का पुत्र उत्पलराज हुआ। स० १०९९ वि० के वसतगढ मे मिले एक शिलालेख में उत्पलराज से वशावली शुरू होकर उसकी छठी पीढी के परमार पूर्णपाल तक के नाम अंकित हैं। इससे पूर्णपाल का समय स० १०९९ वि० के आसपास प्रतीत होता है। धरणीवराह पूर्णपाल का प्रपितामह तथा उत्पलराज का प्रपौत्र था, इसे समझने के लिये यह वशावली अति सहायक सिद्ध होती है, जैसे—



†श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—'सिरोही का इतिहास' पृ० १४५।
‡श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ—'राजा भोज' पृ० ९-१०।

उपर्युक्त वंशावली में दिये गये सवतो के बीच का अन्तर भी उचित ही जान पड़ता है। इस हिसाब से धरणीवराह का विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे होना प्रतीत होता है।

(३) श्री तेजसिंह प्रधानसिंह सोलकी के अनुसार सन् ९७४ ई० (तदनुसार स० १०३१ वि०) मे आबू के परमार राजा धरणीवराह का वडा पुत्र महीपाल उर्फ देवराज आबू का राजा बना था।† इसके अनुसार स० १०३१ वि० के आसपास तथा इससे पूर्व धरणीवराह का होना पाया जाता है।

(४) आचार्य श्यामसुन्दरदास ने भी चौलुक्य मूलराज (प्रथम), राष्ट्रकूट मम्मट के पुत्र धवल, परमार मुञ्जराज तथा धरणीवराह इन सबको समकालीन माना है।‡ इससे भी धरणीवराह का समय सं० १०१७ से १०५२ वि० के बीच मे होना प्रतीत होता है।

(५) धरणीवराह का पुत्र महीपाल हुआ, जिसका दूसरा नाम शिलालेखों मे देवराज भी मिलता है। इसका एक ताम्रपत्र स० १०५९ वि० का मिला है।* इससे यह तो सिद्ध हो जाता है कि धरणीवराह उक्त सवत् से पूर्व यानी उपर्युक्त अनुमानित वर्षों के लगभग अवश्य हुआ होगा।

(६) श्री रेउजी के अनुसार धरणीवराह की पाँचवी पीढी मे कृष्णराज (द्वितीय) हुआ, जिसके समय के भीनमाल मे दो शिलालेख मिले हैं। एक सं० १११७ वि० का है और दूसरा सं० ११२३ वि० का।†† स्मरण रहे उक्त कृष्णराज (द्वितीय) धरणीवराह का दूसरा प्रपौत्र ही था। पूर्णपाल के पश्चात् उसका अनुज कृष्णराज (द्वितीय) राजा हुआ था। इस प्रकार भी धरणीवराह (स० १०१७ से १०५२ वि० के बीच), उसके पुत्र महीपाल (सं० १०५९ वि० के आसपास), महीपाल के पौत्र पूर्णपाल (स० १०९९ वि०) तथा पूर्णपाल के अनुज कृष्णराज [(द्वितीय) स० ११२३ वि० के आसपास] का शिलालेखो मे मिला समय बिल्कुल ठीक जँचता है।

---

†श्री तेजसिंह प्रधानसिंह सोलकी—'अमरकोट सिंध जो इतिहास'।

‡श्री श्यामसुन्दरदास—'प्राचीन-लेख-मणि-माला' प्रथम खड पृ० १४।

* प० गोरीशकर हीराचन्द ओझा 'सिरोही का इतिहास' पृ० १४५।

†† श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ 'मारवाड़ का इतिहास', प्रथम भाग, पृ० ११।

(७) जालोर से मिले हुए स० ११७४ वि० आषाढ शुक्ला ५ के एक शिलालेख मे लिखा हुआ है, कि उक्त सवत् मे जालोर के परमार वीसल की रानी मेलरदेवी ने वहाँ के सिंधुराजेश्वर के मन्दिर पर स्वर्ण-कलश चढाया था। इस लेख में परमारो की वशावली नीचे लिखे अनुसार दी है—

परमार वश मे वाक्पतिराज नामक राजा हुआ। उसके पीछे क्रमशः चन्दन, देवराज, अपराजित, विज्जल, धारावर्ष और वीसल हुए। इसी वीसल की रानी के द्वारा स्वर्ण-कलश चढाने की उक्त घटना का उल्लेख हुआ है। दूसरी ओर श्री ओझाजी ने जालोर के परमार वाक्पतिराज का आबू के राजा महीपाल के समकालीन होने का अनुमान किया है† तथा श्री रेउजी ने वाक्पतिराज को धरणीवराह का वशज होने की सभावना की है।‡ फिर भी जालोर के वाक्पतिराज को धरणीवराह के पुत्र (महीपाल) के समकालीन मानना तो युक्ति-सगत ही होगा। इस हिसाब से वाक्पतिराज का समय स० १०५९ वि० के आसपास मानना पडेगा और उससे आगे छठी पीढ़ी मे वीसल हुआ, जिसकी रानी ने स० ११७४ वि० मे स्वर्ण-कलश चढाया था। वाक्पतिराज के पीछे छठी पीढी मे लगभग ११५ वर्षों का अन्तर मिलता है, अतः यह तथ्य ठीक ही जान पडता है।

(८) 'मुहता नैणसी री ख्यात' (पृ० ३५५) के अनुसार धरणीवराह का पुत्र छाहड और पौत्र सोढा व सांखला वाघ थे। साखले (वाघ) का पुत्र वैरसी था। वैरसी वाघावत का पुत्र राणा राजपाल हुआ। राजपाल के महीपाल, छोहिल और तेजपाल नाम के तीन पुत्र थे। उसी महीपाल का पुत्र रायसी हुआ।* यह रायसी विक्रम की १२वी शताब्दी के आसपास बीकानेर राज्य के जांगलू प्रदेश मे गया और वहाँ बस गया।†† इस मत के अनुसार भी १२वी शताब्दी से छह पीढी पूर्व ११ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध को धरणीवराह का समय अनुमानित करना अनुचित नही होगा।

इस प्रकार उपर्युक्त आठ प्रमाणो के आधार पर यह निश्चित रूप से माना जा सकता है, कि परमार धरणीवराह का समय विक्रम की ११वी शताब्दी

---

†श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—'सिरोही का इतिहास' पृ० १४८ का फुटनोट।

‡श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ—'राजा भोज' पृ० १५।

*'मुहता नैणसी री ख्यात' सं० बदरीप्रसाद साकरिया, पृ० ३४४।

††डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा 'राजपूताने का इतिहास—'बीकानेर राज्य का इतिहास' प्रथम खण्ड, पृ० ७२।

का पूर्वार्द्ध था। इस मान्यता के आधार पर आगे की कथावस्तु की ऐतिहासिक जाँच करने में विशेष सुविधा रहेगी। अब प्रश्न उठता है कि धरणीवराह के पुत्र का नाम शिलालेखो मे तो महीपाल उर्फ देवराज मिलता है, किन्तु मुहता नैणसी, कविराजा बाँकीदासजो एव 'सोढ़ायरण' के कर्त्ता श्री चिमनजी कविया आदि सभी ने धरणीवराह (बाहडराव) के दो पुत्रों का उल्लेख किया है—सोढा एवं सांखला (वाघ)। इनमे कौनसा मत सही है, इस बात पर विचार करते समय हमे कुछ सकेत श्री तेजसिंह प्रधानसिंह सोलकी के 'अमरकोट सिंध जो इतिहास' मे अवश्य मिलते हैं। श्री सोलकी के अनुसार धरणीवराह के दो पुत्र थे—महीपाल (देवराज) एव बाहड। बाहड के ३ पुत्र हुए—सोढा, सांखला एवं वाघ। इस मत मे मानने योग्य तथ्य यही हो सकता है, कि धरणीवराह के दो पुत्र अवश्य होगे: जिनमे प्रथम तो महीपाल (देवराज) था, किन्तु दूसरा बाहड़ न होकर छाहड़ था।

वास्तव मे छाहड को बाहड मान बैठने की भ्रांति के दो कारण हैं। इस भूल का सबसे बडा कारण है, प्राचोन पांडुलिपियो के अक्षर-ज्ञान की अपूर्णता अथवा लिखावट की अस्पष्टता। मारवाड़ी या महाजनी लिपि मे 'छ' का स्वरूप 'ब' से मिलता-जुलता ही होता है। इसी कारण से श्री बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा सम्पादित 'मुहता नैणसी री ख्यात' के प्रथम भाग मे छाहड़ को कही 'छाहड़' और कही बाहड लिख दिया गया है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ३५५ पर धरणीवराह का पुत्र छाहड़ तथा छाहड के दो पुत्र सोढा व साखला माने है। इसके विपरीत पृष्ठ ३३७ पर धरणीवराह के पुत्र छाहड़ की जगह सर्वत्र बाहड़ छपा हुआ है, जो ठीक नही है। बाहड़ (वाग्भट) तो धरणीवराह का ही दूसरा नाम था।

बाहड़ के नाम से बाहडमेर शहर बसा था, अतः यह नाम छाहड़ से भी अधिक प्रसिद्ध होने से पाठकगण कभी-कभी भूल से 'छ' को 'ब' समझ बैठते हैं। सोढा और साखला (वाघ) को तो मुहता नैणसी एवं कविराजा बाँकीदासजी दोनो ख्यातकारो ने धरणीवराह के पुत्र ही माने हैं। इधर 'सोढायरण' मे भी सोढा एव साखला को बाड्हराव (धरणीवराह) के पुत्र ही माना है। धरणीवराह के दो पुत्रो मे सम्भवतः महीपाल (देवराज) पाटवी हो और आबू का राजा होने से सोढा एव सांखलो की ख्यातो मे उसका विवरण आवश्यक न समझ कर ख्यातकारो ने

उल्लेख नही किया हो। सोढा एवं साखलो को ख्यात के साथ किराड् के परमार राजाओ का सम्बन्ध होने से आबू की शाखा का विवरण नही दिया गया, यही अनुमान ठीक लगता है। इस अनुमान के आधार पर हमे यही मानना पडेगा, कि धरणीवराह के द्वितीय पुत्र का नाम छाहड़ था और छाहड के सोढा एव वाघ दो पुत्र हुए। वाघ को 'साखला' अथवा 'शखुकुल' उपाधि के साथ प्रसिद्धि मिलने के कारणो का उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर हम पहले सकेत कर चुके हैं। इस प्रकार श्री सोलंकी का उपर्युक्त मत अधिकाशतः भ्रामक ही है, किन्तु उसमे इतना तथ्य विश्वसनीय लगता है, कि धरणीवराह के दो पुत्र थे, जिनमे द्वितीय पुत्र बाहड़ न होकर छाहड परमार था। वाघ और साखला को पृथक-पृथक मानने की श्री सोलकी की उपर्युक्त धारणा भी भ्रामक है। मुहता नैणसी एव कविराजा बाँकीदासजी दोनो प्रसिद्ध ख्यातकारो तथा परवर्ती इतिहासकारो ने साखला वाघ को एक नाम हो माना है और वास्तव मे यही ठीक है। 'सोढायण' मे वाघ न लिख कर उसका प्रचलित एव प्रसिद्ध नाम सांखला ही लिखा, जिसके पीछे परमारो मे सांखला शाखा बनी।

धरणीवराह का दूसरा नाम बाहड़ था तथा उसके बड़े पुत्र महीपाल का दूसरा नाम देवराज था। बाहड अथवा धरणीवराह के पौत्र वाघ का ही दूसरा नाम सांखला था, इस तथ्य पर विचार करते समय प्राचीन इतिहास मे अनेक ऐसे उदाहरण हमारे सामने आते हैं, जिनको अनेक नामो से प्रसिद्धि मिली। उदाहरणार्थ परमार-वश मे ही लीजिये—राजा हर्षदेव को सीयक द्वितीय माना गया है। सीयक प्रथम हर्षदेव का प्रपितामह था। इसी हर्षदेव का नाम सीयक द्वितीय तथा सिंहदत्त भट्ट भी मिलता है। हर्ष के पुत्र कुंज (कुमारनारायण, नवसाहसांक, सिंधुराज) तथा दूसरे पुत्र मुज (उत्पलराज, अमोघवर्ष, श्रीवल्लभ, पृथ्वीवल्लभ, के तीन-तीन चार-चार नाम मिलते है।†

सोढा परमारो का सर्व प्रथम धाट-क्षेत्र पर कब आधिपत्य हुआ, इसके लिये हम धरणीवराह के समय के अनुसार अनुमान लगा सकते हैं। धरणीवराह का समय अनेक पुष्ट प्रमाणो के आधार पर ११वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है, उसके अनुसार सोढा का सिंध मे आगमान विक्रम की ११वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध मान सकते हैं। स० १०३१ वि० मे धरणीवराह के पुत्र महीपाल

---

†डॉ० सत्येन्द्र,—'लोक साहित्य विज्ञान' पृ० ३७०।

(देवराज) को आबू का राज्य-सिंहासन मिलने की घटना का ऊपर विवरण दिया जा चुका है। इसी उपर्युक्त वर्ष मे धरणीवराह का देहान्त मान लिया जाय और उसके पश्चात् 'सोढायण' के अनुसार छाहड का ५० वर्ष तक कोहिलापुर पर राज्य माना जाय, तो स्वभावतः सोढा का सिंध-प्रदेश मे आगमन स० १०८१ वि० के लगभग अनुमानित किया जा सकता है। महोपाल (देवराज) के उपर्युक्त राज्यारोहण के वर्ष (स० १०३१) से पूर्व भी धरणीवराह का देहान्त माना जा सकता है। वह सघर्ष एव युद्ध-प्रधान युग था, अत. किसी राजा की मृत्यु होने पर आवश्यक नही कि उसी वर्ष उसके पुत्र को सिंहासन मिल जाता। पाँच-सात वर्ष का अन्तर भी रह सकता था, ऐसे अनेक प्रमाण इतिहास मे यत्र-तत्र मिल ही जाते हैं।

'सोढायण' के अनसार सोढा ने धाट मे कैलाश के दुर्ग पर पूरे ८५ वर्ष तक राज्य किया था। इतिहास मे प्राचीन राजाओ के लिये इतने लम्बे अर्से तक राज्य करने के काफी उदाहरण मिलते हैं। माड-प्रदेश (जैसलमेर) के युदुवशी शासक राव तन्नूजी भाटी ने ८० वर्ष तक राज्य किया था और बाद मे भी युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे, ऐसा इतिहासकारो ने उल्लेख किया है।[1] सिद्ध देवराज भाटी की आयु १२० तथा १३० वर्ष की मानने वाले इतिहासकारो का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस प्रकार सोढा के ८५ वर्ष के शासन-काल की दीर्घ अवधि को भी हम काल्पनिक या अप्रामाणिक नही कह सकते।

सोढा के पश्चात् 'सोढायण' के अनुसार राणा रायदेव (राजदे) उत्तराधिकारी हुआ। मुहंता नैणसी ने अपनी ख्यात मे सोढा का उत्तराधिकारी रायदेव (राजदे) को न मान कर चाचगदे को माना है, जो 'सोढायण' के अनुसार सोढा का पुत्र न होकर पौत्र था। श्री तेजसिंह प्रधानसिंह सोलकी ने भी अन्य प्रमाणो के अभाव मे नैणसी के मत को मान लिया है। श्री सोलकी से बहुत पहले 'सोढायण' ग्रन्थ लिखा जा चुका था, इसकी तो उन्हे जानकारी थी नही अतः उन्होंने नैणसी के मत का सहारा लिया। मुहता नैणसी की ख्यात मे एक ही तथ्य के लिये परस्पर विरोधी मत भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये पवारों की उत्पत्ति का वर्णन करते समय धरणीवराह को 'किराड़ू-धणी'

---

[1] श्री जगदीशसिंह गहलोत—'राजपूताने का इतिहास' पहला भाग, पृ० ६५४।

(किराड़ू का अधिपति) मानते हुए धोमऋषि का} पुत्र तथा डाभऋषि का पौत्र माना है।† दूसरी ओर उसी ख्यात मे साखलो की शाखा का वर्णन करते हुए 'पीढियो री विगत' मे सोढा एव वाघ (साखला) के पितामह धरणीवराह के पिता का नाम बध तथा दादे का बघाइत लिख दिया है।‡ फिर आगे सोढा के लिये लिखा है कि वह सिध मे सूमरो के पास गया, जहाँ सूमरो ने उसे 'रातोकोट' दिया। बाद मे जाम तमाइची ने सोढा हमीर को उमरकोट दिया। ये दोनो बाते पूर्णतया भ्रामक एव अविश्वसनीय प्रतीत होती है।

सस्कृत मे 'वीरभोग्या वसुन्धरा:' की उक्ति प्रसिद्ध है और डिंगल मे भी भूमि के विविध रूप बतलाते हुए उसे वीर पुरुष की सुखदायिनी वाम हो माना है, यथा—

'अकन कवारी नवनवी, नित्त सुहागण नांम।
कळह अमां धी कायरां, वीर भडां सुख वांम॥१॥

वास्तव मे वीर पुरुष हो इस भूमि के भरतार होते है। महाकवि श्री सूर्यमल्ल मिश्रण की यह उक्ति अक्षरश: सत्य है कि, 'रसा कंवारी रावता, वीर तिको ही वोद'। प्राचीन युग तो पूर्णतया शक्ति का युग था और उस समय राज्य दिये नही बल्कि लिये जाते थे। किसी का कृपा का भाजन बन कर भूमि-दान को ग्रहण करना वीर पुरुष के लिये कदापि शोभनीय अथवा सभव नही हो सकता था। फिर सोढा जैसा प्रतापी वीर क्यो किसी की याचना करता और याचन करने पर रताकोट जैसा महत्त्वपूर्ण गढ़ कौन दे सकता था? दूसरी बात मुहता नैणसी ने जाम तमाइची के द्वारा सोढा हमीर को ऊमरकोट देने का उल्लेख किया, सो भी सर्वथा भ्रामक प्रतीत होता है। स्मरण रहे, राणा हमीर का समय 'सोढायण' तथा स्वय नैणसी के अनुसार भी सोढा के बाद ११वी पीढी मे आता है। इतनी पीढियो तक उमरकोट पर सोढो का अधिकार ही नही रहा, यह बिल्कुल गलत धारणा है। रायदेव (राजदे), चाचगराण तथा जयभ्रम जैसे वीर सोढो की गाथाओ से शायद वे अनभिज्ञ रहे थे। नैणसी ने अपनी ख्यात में अनेक स्थानो पर जो भ्रामक तथ्य प्रस्तुत किये हैं, उनका कारण यह था कि भारत के विशाल प्रदेश की ऐतिहासिक सामग्री इकट्ठी करते समय जहाँ जो कुछ

---

†'मुहता नैणसी री ख्यात' प्रथम भाग पृ० ३३६।
‡ ,, ,, ,, ,, ,, ३३७।

सुनने को मिला, उसे लिख लिया। सुनी-सुनाई बातो में भ्रान्तियो का होना स्वाभाविक है। उन्होने स्वय स्वीकार किया है, कि ख्यात की अधिकांश बाते तत्कालीन प्रसिद्ध चारण विद्वानो से सुन कर ही लिखी थी। उदाहरणार्थ ख्यात के प्रथम भाग मे ही नैणसी की निम्नाकित पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:—

(१) "वात १ चारण आसियै गिरधर कही स० १७१९ रा भादवा सुदी ६ नै—चीतोड़ पर माडव री पातसाह बहादर आयौ तिण समै री।" [पृ० ४६]

(२) "वात वीठू भाभण री कही"। [पृ० ५५]

(३) "वात धधवाड़ियै खोवराज लिख मेलो स० १७१४ रा वैसाख माहे—पठाण हाजीखांन राणै उदैसिंघ वेढ हुई हरमाडै तिणी री।" [पृ० ६०]

(४) "सीसोदिया चूडावता री साख सं० १७२२ पो वद ५ नै खिडियै खीवराज लिखाई।" [पृ० ६६]

(५) वात भूलै रुद्रदास भाण रै, सांइया भूला रै पीतै री कही स० १७१९ रा चैत माहै, जैतारण माहै।" [पृ ८६] आदि-आदि

उपर्युक्त उद्धरणो से इस बात को विशेष पुष्टि हो जाती है कि नैणसी ने अपनी वृहत् ख्यात लिखते समय अधिकाशतः सुनी-सुनाई बातो को ही आधार माना है। पहले विद्वान लोग इतिहास की घटनाओ को प्रायः जबानी ही याद रखते थे और नाम, तिथि आदि के विषय मे तत्सम्बन्धी काव्य ही प्रमाण माना जाता था। ऐसी हालत मे किसी एक छोटे क्षेत्र पर इतिहास की छानबीन मे तो फिर भी अधिक श्रम करने पर प्रामाणिक तथ्य सामने आ सकते थे, किन्तु बहुत बड़े क्षेत्र के लिये यह सभव नहीं था। श्री चिमनजी कविया ने तो इतिहास-ग्रन्थ केवल 'सोढायण' ही रचा और वह भी 'सोढांण-प्रदेश' में और सोढो की प्रेरणा से। इसलिये यह मानना युक्तिसंगत ही होगा, कि उन्होने ठीक स्थानो से प्रामाणिक सामग्री ही संकलित की थी।

पीछे धरणीवराह के अन्तिम समय का अनुमान लगा कर ५० वर्ष छाहड की राज्यावधि जोड़ने पर सोढा का सिंध-प्रदेश मे सर्वप्रथम सं० १०८१ वि० के लगभग प्रविष्ट होना प्रतीत होता है। उधर श्री तेजसिंह प्रधानसिंह सोलकी भी 'अमरकोट सिंध जो इतिहास' मे लिखते हैं, कि वाहड़ का बडा पुत्र सोढा सन् ११२५ ई० मे सिंध के सूमरे हाकिम के पास गया जहाँ उसने महरबानी करके सोढा को रतोकोट दिया। उक्त मत मे सोढा को वाहड का पुत्र मानना तथा

सूमरे हाकिम के द्वारा महरबानी कर के सोढा को रताकोट प्रदान करना आदि तथ्य तो नितान्त भ्रामक हैं, साथ ही वर्ष का उल्लेख भी अप्रामाणिक लगता है। 'सोढायण' तथा प्राचीन ख्यातो मे उक्त घटना के वर्ष का कही उल्लेख नही मिलता है, किन्तु श्री सोलकी एक ओर तो धरणीवराह के पुत्र महीपाल (देवराज) का राज्यतिलक सन् ६७४ मे मानते हैं, फिर धरणीवराह के पौत्र सोढा का सिंध मे प्रवेश सन् ११२५ ई० को यानी १५१ वर्ष पश्चात्, यह कैसे सभव माना जाय ? स० १०८१ वि० तथा उसके आसपास सिंध मे सोढा के प्रवेश करने के अनुमान का सकारण उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है।

सिंध-प्रदेश मे सोढा के अधिकार जमाने के उपर्युक्त अनुमानित वर्ष के आधार पर तथा ८५ वर्ष राज्यावधि ('सोढायण' के अनुसार) मानने पर स० ११६६ वि० के आसपास सोढा का देहान्त माना जा सकता है। यही वर्ष सोढा के उत्तराधिकारी रायदेव (राजदेव) के राज्यारोहण का मानना पडेगा। श्री तेजसिह प्रधानसिह सोलकी ने अपने इतिहास मे स० १२८२ वि० मे राणा राजदेव (रायदेव) के द्वारा सर्वप्रथम उमरकोट पर अधिकार करने की घटना का उल्लेख किया है, जो ठीक नही जान पडता। इस विषय मे 'सोढायण' का मत अधिक प्रामाणिक लगता है, जिसके अनुसार स० १२२२ वि० मे उमरकोट पर सर्वप्रथम सोढो का अधिकार हुआ था। 'सोढायण' के अनुसार चाचगराणा ने उमरकोट को विजय किया था, तथा श्री सोलकी के अनुसार राजदेव (रायदेव) को विजयश्री प्राप्त हुई थी। यहाँ पर पीढियो के क्रम मे मतैक्य नही है, किन्तु सोढा से दूसरी पीढी यानी उसके पौत्र के समय उमरकोट सोढो के अधिकार मे आ गया था, यह बहुसम्मत मान्यता है।

यदि उमरकोट पर सोढा के पौत्र द्वारा स० १२२२ वि० में अधिकार किये जाने की घटना को सत्य मान लें, तो उससे पहले दो पीढी तक राज्य करने की अवधि (सोढायण के अनुसार) का अकन कर सोढा का सर्वप्रथम धाट में आना भी अनुमानित किया जा सकता है। इससे पूर्व हमे यह देखना है, कि सं० १२२२ वि० की तिथि को कवि ने किस ढंग से इंगित किया है। 'सोढायण' मे चाचगराणा व उमर-सूमरे के युद्ध का वर्णन करते हुए कवि की मान्यता है, कि २५ दिन तक युद्ध चलने के पश्चात् चाचग राणा का

उमरकोट पर अधिकार हुआ था। सवत् एव वर्ष का सकेत कवि ने इन शब्दो मे किया है—

"समत्तूस बीजे वावीसै वरस्सूं। सोढै कोट आयौ बखाणै सरस्सूं।†

जैसा कवि की जीवनी से ज्ञात होता है, कि वे एक साधारण साक्षर ही थे। काव्य के क्षेत्र मे तो जन्मजात प्रतिभा के कारण वे इतने चमक उठे हैं, किन्तु उन्हे सही तौर से अक लिखना भी नही आता था। उनके ग्रन्थ 'हरीजस-मोख्यारथी' के अन्त मे एक दोहा लिखा हुआ है, कि—

दुहा कवत छद दाखिया दिल सुध चिमनीदान।
सरव सितंतर च्यारसौ, इतो ग्रथ उनमांन ॥१॥

प्रस्तुत दोहे के अनुसार उक्त ग्रन्थ में कुल छन्द-सख्या ४७७ है। साथ ही उसी ग्रन्थ के एक पत्र पर चौबोसो विश्रामो के नाम सहित छन्दो की जोड़ लगाने हेतु एक सारिणी बनाई गई है और नीचे कुल छन्द-संख्या अको मे ४०७७ लिखी है। इसके अतिरिक्त सही जोड लगाने पर कुल छन्द ४७७ के स्थान पर ५७० होते हैं। कितने आश्चर्य की बात है, कि ऐसी अलकृत काव्य-रचना करने वाला कवि इतना कम पढा लिखा भी हो सकता है, जो 'चार सौ सतत्तर' की सख्या को 'चार हजार सतत्तर' लिख डाले और छंदो की जोड भी सही नही लगा सके। इसी प्रकार कवि के रीति-ग्रन्थ 'जसवत-पिंगल' के छदो की सख्या लिखते समय भी सौ के आगे १०१ को १००१ के क्रम से लिख दिया है। इन उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्टत: ज्ञात हो जाता है, कि यह कवि काव्य रचना के क्षेत्र मे विलक्षण और महान् होते हुए भी अत्यन्त कम पढा लिखा व्यक्ति था। काव्य-शास्त्र को शिक्षा तो मौखिक भी सीखी जा सकती है। राजस्थान मे ऐसे अनेक चारण कवि हो गये हैं, जिन्हे सही तौर से पत्र लिखना भी नही आता था, तथापि वे उच्च कोटि की काव्य-रचना करते थे। आज भी नमूने के रूप मे ऐसे कवि अवश्य मिल जाते हैं, जो विना कागज-कलम के खेत मे हल चलाते हुए भी पचासो छद रच कर जवानी याद रख लेते हैं। उन्हे शुद्ध लिखना नही आता किन्तु सृजन एव उच्चारण बिल्कुल सही करते है। ऐसे उदाहरण जन्मजात प्रतिभा की बदौलत ही मिलते हैं और 'सोढायण' के कवि श्री चिमनजी कविया इसी परपरा के एक श्रेष्ठ कवि थे। कवि के अक्षर-ज्ञान विषयक उक्त विवेचन के आधार पर यह मानना सर्वथा

†'सोढायण' पृ० ८०।

समीचीन होगा कि संवत् 'बीजै बावोसै' का अर्थ सवत् एक हजार दो सौ बाईस ही है। 'बीजा' शब्द राजस्थानी मे द्वितीय अथवा दो के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। इस प्रकार सं० १२२२ वि० को हम वह तिथि मान सकते है, जब उमरकोट सर्व प्रथम सोढो के अधिकार मे आया था।

जब उमरकोट पर सोढा के पौत्र द्वारा स० १२२२ वि० मे विजय मानते हैं, तो उससे पूर्व ८५ वर्ष सोढा की राज्यावधि तथा ६२ वर्ष सोढा के उत्तराधिकारी रायदेव (राजदेव) का शासन-काल, यानी कुल १४७ वर्ष पूर्व स० १०७५ वि० के लगभग सोढा का सिंध मे प्रवेश प्रतीत होता है। ऊपर के वर्णन मे सं० १०८१ वि० के लगभग सोढा का सिंध मे प्रवेश करना अनुमानित किया था, उससे अधिक प्रामाणिक तिथि यह सवत् (१०७५ वि०) है, जिसका आधार 'सोढायण' की कथा-वस्तु है। इस आधार के अनुसार उमरकोट-विजय तक काल-क्रम इस प्रकार माना जा सकता है—

१. सोढा	: स० १०७५ वि०मे सिंध प्रदेश मे प्रवेश एवं 'रताकोट' की विजय, फिर ८५ वर्ष तक कैलाश-गढ़ पर राज्य किया अर्थात् स० ११६० वि० मे सोढा का देहान्त तथा उसका उत्तराधिकारी रायदेव (राजदेव) सिहासनारूढ हुआ।
२. रायदेव (राजदेव)	: सं० ११६० वि० के लगभग पाट बैठा और ६२ वर्ष तक राज्य किया, अर्थात् १२२२ वि० मे रायदेव का स्वर्गवास तथा चाचगराणा का राज्याभिषेक।
३ चाचगराणा	: स० १२२२ वि० मे राज्य-सिंहासन तथा उसी वर्ष उमर-सूमरा से युद्ध कर उमरकोट विजय कर लिया। चाचग राणा ने ६० वर्ष तक राज्य किया, फिर उसका पुत्र जयभ्रम पाट बैठा अर्थात् स० १२८२ वि० मे चाचग राणा का देहान्त व जयभ्रम का राज्यारोहण।
४. जयभ्रम	: स० १२८२ वि० मे राज्य-तिलक तथा उसी वर्ष राज्य-विस्तार किया,जिसमे देथा चारण झफ ने सहायता दी थी, अतः उसे खारोड़ा की जागीर प्रदान की थी।†

†ऐसा खारोड़ा गांव के वर्त्तमान जागीरदारो का मानना है तथा भाटो की बही से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

उपर्युक्त विवरण से अन्य कई तथ्यो की पुष्टि एवं प्रामाणिकता सिद्ध होतो है। श्री तेजसिंह प्रधानसिंह सोलकी ने 'अमरकोट सिंध जो इतिहास' मे लिखा है, कि सन् ९७४ ई० (तदनुसार स० १०३१ वि० के लगभग) धरणीवराह का बड़ा पुत्र महीपाल (देवराज) राज्य-गद्दी पर बैठा। दूसरे स्थान पर लिखते है कि धरणीवराह स० १०४० वि० मे जीवित था। इस मत में स्पष्टतः भ्रान्ति दृष्टिगोचर होती है, क्योकि यदि धरणीवराह जीवित था, तब नौ-दश वर्ष पूर्व ही उसका पुत्र कैसे राज्याधिकारी हो गया? दूसरी बात यह कि श्री सोलकी के अनुसार सन् ११२५ ई० (स० ११८२ वि०) के लगभग सोढा सिंध मे आया, जहाँ सूमरे हाकिम ने कृपा कर उसे 'रताकोट' प्रदान किया। आगे फिर लिखते हैं कि राजदेव (सोढा के पौत्र) ने स० १२८२ मे उमरकोट सूमरो के राजा से जीत लिया था। सोढा के पौत्र तक सौ वर्ष का अन्तर बतलाते हुए भी किसी खास घटना का उल्लेख नही किया है। उधर धरणीवराह को स० १०४० वि० तक जीवित मान कर उसके पुत्र महीपाल (देवराज) के स० १०३१ वि० में राजा होने की चर्चा करते हुए यह भी मानते हैं, कि देवराज के अनुज बाहड को राज्य में कुछ नही मिला अतः वह तो रायधणपुर चला गया तथा उसका पुत्र सोढा सिंध में जा पहुँचा। उपर्युक्त सकेतो से ऐसा ज्ञात होता है, कि सोढा के सिंध मे पहुँचने की घटना और महीपाल (देवराज) के आबू का राजा होने की घटना मे कोई विशेष कालान्तर नही था, जब कि श्री सोलंकी की तिथियो के अनुसार १५१ वर्ष अन्तर पड़ जाता है, जो सर्वथा भ्रामक है।

'सोढायण की मान्यता के अनुसार उमरकोट-विजय का वर्ष सं० १२२२ वि० हैं, न कि स० १२८२ वि०, साथ ही धरणीवराह एव सोढा के बीच का अन्तर भी सर्वथा उचित एव विश्वसनीय प्रतीत होता है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि श्री सोलकी ने स० १२८२ वि० वैशाख शुक्ला ७ की उमरकोट-विजय का वृत्तान्त क्यो लिखा है? बात यह थी, कि उमरकोट-विजय तो सोढायण के अनुसार स० १२२२ वि० मे ही हुई थी और उसके विजेता चाचगराणा ने पूरे साठ वर्ष तक राज्य किया था।† इस हिसाब से अपने आप सं० १२८२ वि० ही होता है। उसी वर्ष मे राणा जयभ्रम राज्याधिकारी हुआ और उसी ने भफ

---

†'कोटपभर राजम कियो, मज पग्ग वरमां माट।
'जैभ्रम' पाट विराजियो, धर भिर रासग घाट॥'

['सोढायण' पृ० ८]

चारण (देथा) को खारोड़ा को जागीर दी थी, न कि सोलकी के अनुसार राजदेव ने।

लोगो मे ऐसी किंवदन्ती चली आ रही थी, कि जब उमरकोट सोढो के अधिकार मे आया, तभी उनके 'पौलपात' देथो को खारोड़ा की जागीर दी गई थी। जबानी सुनने मे तो यह भी आया, कि खारोडा की जागीर १२ गाँवो के साथ झफ चारण को प्रदान की गई थी, किन्तु कौन से राणा ने यह जगीर दी ? इस बात का पता भाटो की बही से लगा। खारोडा के वर्त्तमान जागीरदार श्री सतीदानजी तथा आईदानजी देथा का भी यही मानना है, कि उनकी जागीर राणा जयभ्रम ने दी थी, न कि राजदेव (रायदेव) ने। इस प्रकार खारोडा जिस वर्ष मे मिला उसी वर्ष मे उमरकोट सोढो के अधिकार मे आया होगा, इस अनुमान से ही श्री सोलकी ने उक्त मत प्रकट किया है। इतिहास की मुख्य घटनाओ एवं तिथियो की जानकारी तो वैसे भी चारण कवि अधिक रखते थे और उसमे भी उन खुद से सम्बन्धित तिथियाँ तो उनके ध्यान मे रहनी आवश्यक एव स्वाभाविक है। प्रायः साधारण से चारण को भी इतना ज्ञान तो होता ही है, कि उनका गाँव ['सांसण' (शासन)] कौन से वर्ष में प्रदान किया गया ? इस प्रकार स० १२८२ वि० में झफ चारण को खारोडा की जागीर मिली थी, यहाँ तक तो श्री सोलकी का मत ठीक है, किन्तु उमरकोट भी उसी वर्ष सोढो ने जीता और राणा राजदेव ने झफ को जागीर प्रदान की थी, यह सर्वथा भ्रामक है।

सोढा के उत्तराधिकारी के विषय मे 'मुंहता नैणसी री ख्यात' तथा 'सोढायण' मे परस्पर विरोधी मत है। इसके विषय मे किसी भी एक को गलत कहना बडा कठिन है। 'सोढायण' मे जहाँ प्रत्येक शासक की राज्यावधि अंकित है वहाँ 'नैणसी रो ख्यात' इस विषय मे मौन है। एक ऐतिहासिक प्रमाण ऐसा भी मिलता है, जिसके अनुसार सोढा का उत्तराधिकारी मुहता नैणसी के अनुसार सही है।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास मे लिखा है, कि रावल केलणजी के स्वर्गवास पर स० १२७५ वि० मे भाटी चाचगदेव (प्रथम) जैसलमेर को गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही चन्ना राजपूतो से युद्ध कर दो हजार लोगो को मार कर उनकी १४०० गाये छीन लाया। चन्ने लोग जोहियो की शरण मे चले गये विजयदर्पी रावल चाचगदे ने कुछ दिनो बाद सोढा राणा अमरसी पर आक्रमण किया, जहाँ

सोढा अमरसी ने अपनी पुत्री का विवाह चाचगदे के साथ कर विपत्ति से छुटकारा पाया।† रावल चाचगदे (प्रथम) का राज्याभिषेक कर्नल टॉड ‡, श्री जगदीशसिंह गहलोत * तथा श्री पूरणचन्द नाहर †† के अनुसार तो स० १२७५ वि० है। दूसरी ओर श्री रामनाथ रत्नू ‡‡ ने भाटी चाचगदे (प्रथम) का राज्यकाल स० १२६४-१२९९ वि० माना है। मुहता नैणसी ने रावल चाचगदे (प्रथम) का राज्यकाल ३२ वर्ष एव २० दिन माना है।** श्री पूरणचन्द नाहर ने भी ३२ वर्ष की राज्यावधि मान कर उपर्युक्त मत की पुष्टि की है। इस प्रकार अधिकांश इतिहासकारो के अनुसार रावल चाचगदे (प्रथम) का सं० १२७५ वि० मे राज्यारोहण मानना ही समीचीन होगा। चाचगदे का स्वर्गवास श्री रामनाथ रत्नू के अनुसार स० १२९९ वि० मे तथा श्री पूरणचन्द नाहर के अनुसार स० १३०६ वि० मे हुआ था।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि रावल चाचगदे (प्रथम) स० १२७५ से १२९९ वि० तक तो अवश्य ही जीवित थे। इसी बीच मे उनका विवाह उमरकोट के राणा की पुत्री के साथ हुआ होगा। इस अवधि के राणा के नाम मे इतिहासकार उलझे हुए हैं। 'टॉड-राजस्थान' के हिन्दी-अनुवाद के अनुसार उमरकोट के राणा का नाम अमरसी है, और श्री रामनाथ रत्नू ने भी यही नाम लिखा है। दूसरी ओर 'टॉड-राजस्थान' के उर्दू-तर्जुमे मे राणा रोनसी नाम लिखा है। फिर जगदीशसिंहजी गहलोत ने अपने इतिहास मे लिखा है, कि रावल चाचकदेव (प्रथम) ने अमरकोट के सोढा रूपसी पर धावा बोल दिया, जिससे अपनी कन्या उसको व्याह कर रूपसी ने सुलह की।+ 'तवारीख-जैसलमेर' मे लिखा है कि सोढा राणा हमीर की पुत्री जांमकवर का विवाह रावल चाचगदेव के साथ हुआ था

---

†'टॉड राजस्थान' भाग २, पृ० ४९८, अनु० वलदेवप्रसाद मिश्र।

‡ ,, ,, ,, ,, ,, ,,

*'राजपूताने का इतिहास'— पहला भाग, पृ०६६१, ले० श्री जगदीशसिह गहलोत।

††'जैन-लेख-सग्रह' संग्रा० श्री पूरणचन्द नाहर, भूमिका पृ० ६।

‡‡'इतिहास-राजस्थान' ले० श्री रामनाथ रत्नु, पृ० २४४।

**श्री सुमेर पब्लिक-लाइब्रेरी, जोधपुर मे स्थित ,मुहता नैणसी री ख्यात' [हस्तलिखित के पत्र स० २९३/४१ पर।

+—श्री जगदीशसिह गहलोत, 'राजपूताने का इतिहास' पहला भाग, पृ० ६६१।

और चाचगदेव का राज्याधिकार स० १२६४ वि० से ही माना है।† 'सोढायण' के अनुसार स० १२२२ से १२८२ वि० तक उमरकोट पर एक ही शासक रहा था। सं० १२८२ वि० से राणा जयभ्रम राज्य-गद्दी पर बैठा, किन्तु उससे पूर्व चाचग-राणा था। इधर 'रूपसी' या 'रोनसी' को प्राचीन ख्यातो की अस्पष्ट लिखावट के कारण रायसी (रायदेव) का अपभ्रंश माने, तो भाटी चाचगदेव के राज्यारोहण (स० १२७५ वि०) से लेकर कुछ वर्ष पश्चात् तक यही राणा उमरकोट का शासक था, ऐसा मानना पडेगा। इस हिसाब से नैणसी का मत ठीक लगता है, कि सोढा का उत्तराधिकारी चाचग और चाचग का उत्तराधिकारी राजदे (रायदेव) था।

कर्नल टॉड तथा श्री रामनाथ रत्नू के इतिहास मे राणा अमरसी का नाम लिखा है, तथा 'तवारीख-जैसलमेर' मे राणा हमीर लिखा है। इसका कारण सभवतः 'अमर' को 'हमीर' लिखने की परम्परा का प्रभाव है। 'अमरकोट' को 'हमीरकोट' एव 'हमरोट' कहने की प्रथा के कारण ही अमरसी एव हमीर नामो का परिवर्तित रूप मिलता है। दूसरी बात यह भी हो सकती है, कि उमरकोट को उमर सूमरा से सोढो ने लिया था। 'सोढायण' के अनुसार भी अमर सूमरा से स० १२२२ वि० अमरकोट लिया था। स० १२०० वि० के लगभग उमर सूमरा था, इसका सकेत 'ढोलामारू रा दूहा' के प्राक्कथन के पृ० २५ पर भी मिलता है।‡

यदि ऐसा मान लिया जाय, कि अमरसी या हमीर नाम उमर सूमरे का ही है और उसकी पुत्री से भाटी चाचगदे (प्रथम) ने विवाह किया था, क्योकि सूमरे परमार क्षत्रिय ही थे।* किन्तु उक्त अवधि मे उमरकोट को उमर सूमरे से सोढो

---

†'तवारीख-जैसलमेर' पृ० ३१।

‡'ढोलामारू रा दूहा' प्राक्कथन, पृ० २५, सं०—रामसिंह, सूर्यकरण पारीक एव नरोत्तमदास स्वामी।

*सूमरे प्रारभ में हिन्दू ही थे, तथा श्री किशोरसिंहजी वार्हस्पत्य ने उन्हे परमार क्षत्रिय माना है, जिसका उल्लेख पीछे पृ० २६ पर किया जा चुका है। 'सूमरो को हिन्दू लोग यादव बुलन्द के पुत्र सामा की औलाद भाटी राजपूत मानते हैं' ऐसा विवरण 'तवारीख तहफतह अलकराम' में है, किन्तु यह गलत है। 'तवारीख जैसलमेर' के अनुसार भाटी और सामा दोनो भाई थे। भाटीजी ने स० ३४२ वि० मे भटनेरगढ बनाकर राजधानी स्थापित की थी। उनके छोटे भाई सामा सिंध-प्रदेश मे गये और सम्माहण (सम्माणा) व 'सामेई' (सम्मासट्टा) गढ बनाकर राजधानियाँ बनाईं। सम्मा की औलाद सम्मा यादव कहलाये। परिहारो को जीत कर जाम पदवी ली थी। इस प्रकार सम्मा तो यादव तथा सूमरा परमार क्षत्रिय ही थे, ऐसा मानना ठीक होगा।

ने छीन लिया था, अतः चाचगदेव का विवाह तो राणा रायसी (रायदेव) की पुत्री से ही हुआ होगा, ऐसा माना जा सकता है। उर्दू-तर्जुमे का 'रोनसी' रायसी का ही रूपान्तर होगा, जिस प्रकार भाटी देवराज को माता को भुट्टा वंश की रानी न लिख कर टॉड-राजस्थान के अनुवादको ने 'बूता' और 'बूटा' जैसे शब्दो का प्रयोग किया है। इस प्रकार हम यह मानते है, कि भाटी चाचगदेव (प्रथम) के समकालीन रूपसी, रोनसी आदि किसी नाम का शासक उमरकोट पर था, तो वह राणा रायसी (रायदेव) ही था। अगर यह सही मानें और राज्यकाल की अवधि तथा अन्य घटनाओ की प्रामाणिकता 'सोढायण' से मान लें, तो यह एक विशेष रूप से विचारणीय स्थल होगा, जिस पर गहराई मे शोध करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार हमने देखा कि सोढा के पश्चात् रायदेव एवं चाचगराणा को एक दूसरे का उत्तराधिकारी मानने की पृथक्-पृथक् धारणा 'मुहता नैणसी री ख्यात' एव 'सोढायण' मे मिलती है। इस विवाद मे अतिम निर्णय देना बड़ा कठिन है, अत इस स्थल को इतिहास के शोधार्थियो के निमित्त छोडकर हम आगे की कथावस्तु का विवेचन करेंगे।

'सोढायण' के अनुसार तो चाचगराणा का व मुहता नैणसी आदि के मतानुसार राजदेव (रायदेव) का उत्तराधिकारो राणा जयभ्रम हुआ। कुछ भी हो सोढा का प्रपौत्र राणा जयभ्रम था, इस बात मे 'सोढायण' के मत की सभी ख्यातकार पुष्टि करते हैं। इसी जयभ्रम ने खारोडा गाँव को जागीर देथा चारण झफ को प्रदान की थी, जो आज भी देथा जागीरदारो के पास मौजूद है। यह राणा वीर एव दानी अवश्य था, किन्तु 'सोढायण' मे विशेष विवरण नही दिया गया है। श्री चिमनजी का मुख्य उद्देश्य सोढो के संक्षिप्त इतिहास के साथ वीरवर जगमालजी सोढा के शौर्य का चित्रण करना था अतः चाचग राणा के पश्चात् जयभ्रम का उल्लेख करते हुए उन्होने 'धर थिर राखण धाट' कह कर राणा के वीरत्व का संकेत किया है।

जयभ्रम के पश्चात् राणा जसहड (जसधर) तथा सोम (सोमेश्वर) का नाम आता है, जिनका अन्य ख्यातो व 'अमरकोट सिंध जो इतिहास' आदि मे भी विशेष वर्णन नही है। यहाँ श्री चिमनजी ने भी 'फ़िरणाल' तथा 'विरुद उजाल' के विशेषणो से विभूषित कर उनकी सपूती का सकेत मात्र कर दिया

है। सोम (सोमेश्वर) के पश्चात् राणा धरावरीस (धारावर्ष) हुआ, जिसका नाम कही-कही धरापसाव तथा धारावरीस भी मिलता है। इस राणा के लिये अन्य ख्यातकारो ने तो उपर्युक्त नाम ही लिखे हैं, किन्तु सोढायण मे इसके नाम का उल्लेख इस प्रकार है.—

"उणीज गादी ऊपरा, आमोपन उतपन्न ।
धरावरीसण खाग धिन, रांण अमोल रतन्न ॥१॥"[1]

डिंगल भाषा मे 'वरीस' का अर्थ प्रदान करना होता है तथा दानी के लिये भी यह शब्द आता है। 'हेमवरीस' का अर्थ स्वर्ण प्रदान करने वाला तथा 'सांसणां वरीस' का अर्थ शासन (जागीर) प्रदान करने वाला होता है। दूसरी ओर इसका पर्यायवाची शब्द 'पसाव' (प्रसाद) भी है, जिससे 'लाखपसाव' (लक्ष-प्रसाद),'कोडपसाव'(कोटि-प्रसाद)आदि विशेष दानी के सूचक शब्द बनते हैं।'वरीस' एव 'पसाव' दोनो शब्दों को दानो के अर्थ मे प्रयुक्त कर मुहता नैणसी ने धरावरीस तथा कविराजा बाँकीदासजी ने धरापसाव नाम लिख दिया है। इधर 'सोढायण' मे 'धरावरीसण' शब्द है, जिसका स्पष्ट अर्थ भूमि का दान करने वाला क्षत्रिय होता है।न उदाहरणो से ऐसा लगता है, कि 'धरावरीस' या 'धरापसाव' शब्द तो नवीर के लिये कवियो द्वारा प्रदत्त एक विरुद अथवा उपाधि थी। कई विशेष व्यक्ति वास्तविक नाम की अपेक्षा उपाधि से ही अधिक प्रसिद्ध हुए हैं, जैसे मोटा राजा (जोधपुर के महाराजा उदयसिंहजी),जाडा मेहडू (चारण कवि आसकरण) राजाधिराज (जोधपुर के महाराजा बख्तसिंहजो), नाहरखान (आसोप के ठाकुर पृथ्वीसिंह) आदि-आदि। इस प्रकार धरावरीस या धरापसाव भी नाम न होकर उपाधि थी और वास्तविक नाम शायद रतन था, जैसा कि उपर्युक्त दोहे से प्रकट होता है। फिर भी इसके लिये निश्चित रूप से कहना कठिन है। यह भी हो सकता है, कि 'धरावरीस' या 'धरापसाव' ता नाम था, जिसे 'राण अमोल रतन्न' कह कर अमूल्य रत्न स्वरूप मानते हुए राणा की प्रशस्ति की गई हो। धारावर्ष नाम तो प्राचीन इतिहास मे मिलता है, अतः उसी का अपभ्रंश रूप धरावरीस बन गया होगा। अन्य प्रमाणो के अभाव मे हमे यही मानना होगा, कि राणा सोम का उत्तराधिकारी धरावरीस हुआ, जो अत्यंत दानी पुरुष था।

---

[1] 'सोढायण', पृ० ८।

इसके पश्चात् राणा दुर्जनसाल हुआ। दुर्जनसाल तथा आसराव दो भाई थे, जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। दुर्जनसाल के लिये किसी घटना का उल्लेख न तो 'सोढायण' मे मिलता है और न अन्य ख्यातो मे ही। श्री तेजसि. प्रधानसिंह सोलकी के अनुसार घरावरीस के बडे पुत्र दुर्जनसाल के समय उससे राज्य छिन गया, तथापि वह तो वही पर रहा और उसका छोटा भाई आसराव पारकर मे जाकर बस गया।

दुर्जनसाल के पश्चात् 'सोढायण' मे तो राणा अवतारदे का नाम आता है, जबकि मुहता नैणसी की ख्यात मे राणा खीवरा को दुर्जनसाल का उत्तराधिकारी माना है। श्री ते० प्र० सोलकी ने भी नैणसी की ख्यात का ही सहारा लिया है। श्री चिमनजी कविया को खीवरा के नाम का पता नही था, यह बात भी जँचती नही, क्यो कि उन्होने खीवरा की उदारता का द्योतक एक दोहा 'सोढायण' के अंतिम भाग मे लिखा है, कि—

> हस-पसाव वीकम दियो, दियो सीस जगदेव।
> पनरंसो दीना पमग, सोढ खीवरं सेव ॥१॥[†]

जब कवि खीवरा के नाम एव चरित्र मे परिचित था, तब 'सोढायण' में उसे दुर्जनसाल का उत्तराधिकारो क्यो नही माना? इसका कारण सभवतः यह होगा, कि खीवरा दुर्जनसाल का पुत्र होते हुए भी राज्य नही कर पाया हो। श्री ते० प्र० सोलकी ने लिखा है, कि दुर्जनसाल से राज्य छिन गया था। यदि राज्यहीन अवधि मे इसका समय रहा हो और राज्यसिंहासन का अवसर न मिलने से राणो की श्रेणी मे इसे नही माना गया, तब तो ठीक है। पन्द्रहसौ घोडो के दान की चर्चा 'सोढ खीवरे' के नाम से 'सोढायण' मे मिलती है, अतः निश्चित ही यह एक उदार एव प्रसिद्ध सोढा तो था, किन्तु उमरकोट का राणा नही रहा। 'सोढौ खीवरौ' लोकगीत भी प्रसिद्ध है, जिसमे उसकी उदारता, सुन्दरता एवं मनमौजीपन का वर्णन है। इन सब कारणो के आधार पर यही मानना पडेगा, कि श्री चिमनजी ने सोढा खीवरा का उल्लेख जानते हुए ठीक समझ कर ही नही किया है। या तो वह दुर्जनसाल के परिवार मे हो, किन्तु पाटवी राणा नही था, अथवा उत्तराधिकारी होते हुए भी राज्य करने का योग नही बैठा। इस प्रकार 'सोढायण' का मत अन्य ख्यातकारो से अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है।

[†] 'सोढायण', पृ० ६८।

राणा दुर्जनसाल के पश्चात् उमरकोट की राजगद्दी पर राणा अवतारदे आसीन हुआ। अवतारदे तथा उसके उत्तराधिकारी राणा थिरा का 'सोढायण' मे केवल नामोल्लेख मात्र किया गया है। 'अमरकोट सिंध जो इतिहास' के अनुसार राणा अवतारदे का विवाह मारवाड़ के राव चूडाजी [राज्यकाल स० १४५१-१४८० वि०] की पुत्री के साथ हुआ था। अवतारदे ने अपने विवाह के अवसर पर अनेक चारण कवियो को रीझ मे बहुत सा धन दिया था, जिससे उसकी प्रशस्ति मे अनेक गीत-छन्द रचे गये थे।†

अवतारदे एवं थिरा के पश्चात् राणा हमीर उमरकोट की राज्यगद्दी पर बैठा। 'सोढायण' के अनुसार यह बडा पराक्रमी राणा था और लगभग ३०-४० वर्ष तक इसने उमरकोट पर राज्य किया था। इसके समय मे सम्मस नामक एक मायावी सय्यद था, जिसने अपनी तन्त्र-विद्या से हिन्दू जनता को भयभीत कर रखा था। राणा हमीर के साथ उस सय्यद की घमासान लडाई हुई जिसमे ५०० शत्रुओ को धराशायी कर राणा विजयी हुआ था, इसका पूरा विवरण पीछे 'कथावस्तु' मे दिया जा चुका है। श्री ते० प्र० सोलकी के अनुसार राणा हमीर बडा प्रसिद्ध था और इसने हमीर सूमरा से सन् १४३९ ई० मे उमरकोट छीन कर पुनः अपने अधिकार मे कर लिया था। आगे लिखते हैं, कि राणा हमीर ने राज्य किया इसकी कोई जानकारी नही मिली। श्री सोलंकी का उपर्युक्त मत भ्रामक जान पडता है, क्योकि किसी शासक को वीर तथा प्रसिद्ध मानते हुए भी उसने राज्य किया अथवा नही, यह सशय ठीक नही लगता। इस प्रकार राणा हमीर के लिये 'सोढायण' का वर्णन अधिक व्यापक एव विशद प्रतीत होता है। दैविक-चमत्कार की बातो को भी हम काल्पनिक नही कह सकते, क्योकि प्राचीन इतिहास मे आस्तिकता एव उसके फल पर घटनाओ का बहुत बड़ा भाग निर्भर रहता था। प्रसिद्ध इतिहासकार स्व० ठा० श्री किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य ने 'करनी-चरित्र' मे भगवती श्री करनीजी के जीवन-वृत्त के साथ राजस्थान की अनेक ऐतिहासिक घटनाओ को प्रेरित एव पुष्पित होते बताया है। राजपूत-सस्कृति के साथ आराध्य देवी-देवताओ का सम्बन्ध इतना प्रगाढ एवं पुष्ट रहा है, कि उसे हम वास्तविक जीवन से परे की कोई काल्पनिक वस्तु नही कह सकते। इस बात के अनेक प्रमाण यहाँ के महाकाव्यो मे ऐतिहासिक घटनाओ के रूप मे यत्र-तत्र मिल

† श्री तेजसिंह प्रधानसिंह सोलकी, 'अमरकोट सिंध जो इतिहास', पृ० ५०।

हो जाते है। इस प्रकार 'सोढायण' मे वर्णित राणा हमीर के वृत्तान्त को हम अधिक व्यापक एव विश्वसनीय मान लें, तो कोई अनुचित बात नही।

राणा हमीर के पश्चात् राणा वीसा [वीरसेन उमरकोट का उत्तराधिकारी हुआ। श्री ते० प्र० भोलकी ने हमीर का उत्तराधिकारी राणा डोडा (दूढा) को माना है, जो ठीक नही है। हमीर के स्वर्गवास पर उसका पुत्र वीसा बाल्यावस्था मे था और इस परिस्थिति का अनुचित लाभ उठा कर दूढा ने राज्य छीन लिया था। दश वर्ष पश्चात् जब वीसा जवान हुआ तो उसने श्री देवलबाई [खारोडा की महाशक्ति, जिनका सक्षिप्त वर्णन 'सोढायण' के पृ० १७ की टिप्पणी मे किया गया है] का आशीर्वाद प्राप्त कर अन्यायी दूढा को मार कर पुनः राज्य पर अधिकार कर लिया था। इस घटना का विशेष विवरण पीछे 'कथावस्तु' मे दिया गया है। इस प्रकार अनीति एव अन्याय से हडप कर लिया गया अस्थायी राज्य उत्तराधिकारियो को सूची मे नही गिना जा सकता। पैतृक अधिकार तथा वशपरपरा के अनुकूल राज्य करने पर ही व्यक्ति अपने वश का शासक माना जाता है। उपर्युक्त कारण के आधार पर राणा हमीर के पश्चात् दूढा को उमरकोट का राणा न मान कर, वीसा को उत्तराधिकारी मानना ही न्यायसंगत होगा। यहाँ पर मुहता नैणसी ने भी 'सोढायण' के मत को माना है। राणा वीसा का समय महाशक्ति श्री देवलबाई के समकालीन होने से विक्रम की सोलहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध मान सकते है। वीसा की राज्यावधि 'सोढायण' के अनुसार ९८ वर्ष तक रही, सो यह एक विचारणीय प्रश्न है। सभवतः कवि ने ९८ वर्ष की सम्पूर्ण आयु मान कर उमरकोट पर राज्य करने की बात कही हो। सभव है, सौ वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति भी उस समय रहे हो, अतः इसे सत्य मानलें तब भी कोई अनुचित बात नही है।

वीसा (वीरसेन) के पश्चात उसका उत्तराधिकारी राणा तेजसी हुआ। 'सोढायण' मे तेजसी तथा कान्हा को भाई मान कर राणा वीसा के पुत्र कहा गया है। मुहता नैणसी तथा कविराजा बाँकीदासजी की ख्यातो के अनुसार तेजसी के पुत्र का नाम कान्हा था। राणा तेजसी के १२ पुत्रो के नाम का एक छप्पय 'सोढायण' के पृ० ३५ के फुटनोट मे दिया जा चुका है। वीसा का उत्तराधिकारी राणा तेजसी हुआ, इसमे तो सभी इतिहासकार एक मत हैं। 'सोढायण' के अनुसार राणा तेजसी का पुत्र कूपा उसका उत्तराधिकारी हुआ था,

जबकि मुंहता नैणसी ने कूपा के नाम का उल्लेख ही नही किया है। नैणसी ने तेजसी का उत्तराधिकारी राणा चापा को माना है, जो 'सोढायण' के अनुसार कूपा का पुत्र तथा तेजसी का पौत्र था। उपर्युक्त मतान्तर मे जब तक कोई तीसरा पुष्ट प्रमाण नही मिलता, हमे 'सोढायण' के मत से ही सहमत होना ठीक लगता है। राणा चांपा की योग्यता के विषय मे दोहे की यह पक्ति प्रसिद्ध है, कि—

'गोडै चांपा रै गळै, सोढां तणी सरम्म।'

राणा चापा के गागा, हापा, सूरजमल आदि पुत्रो में से पाटवी पुत्र गागा ही राज्याधिकारी हुआ था। 'सोढायण' का मुख्य उद्देश्य जगमालजी सोढा के चरित्र का विशद विवेचन होने से कवि ने राणा चापा के पाटवी पुत्र गागा का वर्णन न कर द्वितीय पुत्र हापा से ही कथा-सूत्र को जोडा है। स्मरण रहे, हापा के अग्रज राणा गागा के १० पुत्रो मे पाटवी राणा पत्ता (परशाद)था, जिसने बादशाह हुमायूँ को शरण दी थी और वहीं पर सन् १५४२ ई० मे अकबर का जन्म हुआ था।

राणा चाँपा के द्वितीय पुत्र हापा का उत्तराधिकारी रूपा हुआ। रूपा का पुत्र नबा था, जिसके पीछे सोढो मे नबा गोत्र बना। नबो का प्रमुख स्थान घाट मे 'रणमल का कुआ' नामक गाँव है। नबा का पुत्र वैरा (वैरसी) था। सोढा वैरा (वैरसी) के चार पुत्र थे—पचायण, देवसी, रार्यसिह एवं बाँका। पचायण का पुत्र भाखरसी तथा भाखरसी का पुत्र सूरदास था। सूरदास के पुत्र का नाम रार्यसिह (रासो, रायचन्द) था और यही रार्यसिह अथवा रासोजी वीर जगमाल सोढा के पिता थे।

जगमाल तथा गर्जसिह दोनो सहोदर थे। वीर जगमाल की शूरवीरता, कर्त्तव्यनिष्ठा एव क्षत्रियोचित मानभरो मरोड़ का ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक वर्णन पीछे 'कथावस्तु' मे सविस्तार किया जा चुका है। वीर जगमाल एव बलोचो के बीच गायो की रक्षार्थ हुए भीषण युद्ध का पूर्ण ऐतिहासिक व्यौरा यहाँ पर कवि ने प्रस्तुत किया है। इससे आगे का विवरण पीछे 'सोढायण की कथावस्तु' में पूर्णरूपेण दिया जा चुका है, अतः यहाँ पर लिखना पुनरावृत्ति मात्र होगी।

जगमाल सोढा सलामकोट का स्वामी था। इसका पुत्र जर्यसिह और पौत्र अखैराज था। अखैराज के चार पुत्र थे—खांनुसिह, शेरसिह, हाथीसिह और महासिह। चतुर्थ पुत्र महासिह का पुत्र सोढा जालमसिह था, जिसने श्री चिमनजी से 'सोढायण' ग्रन्थ बनवाया। इस प्रकार जगमाल से आगे चौथी पीढी मे श्री

जालमसिंह थे, जिनके पास रहकर कवि ने प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर इस ऐतिहासिक काव्य की रचना की थी। 'सोढायण' मे जगमाल की ओर से आमन्त्रित सभी गोत्रो एव धड़ो का वर्णन करते हुए कवि ने पूरी सावधानी वरती है। जितने भी धड़ो का वर्णन किया गया है, वे सब अद्यावधि उन्ही नामो से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि 'सोढायण' की कथावस्तु इतिहास की कसौटी पर खरी सिद्ध होने के साथ ही, एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काव्य-कृति है। सोढा जाति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एव प्रसिद्ध अवश्य रहा है, फिर भी आज तक ऐसी एक भी पुस्तक सामने नही आई, जो गुण एव परिमाण दोनो दृष्टियो से सोढो का प्रामाणिक व्यौरा प्रस्तुत कर सकतो हो। 'सोढायण' ग्रन्थ इस अभाव की पूर्ति करने मे बहुत सहायक सिद्ध होगा, इसमे कोई सदेह नहीं।

कविराजा बाँकीदासजी की एक हस्तलिखित ख्यात मे वीसो सोढो की प्रसिद्ध खापो के नाम मुख्य गाँवो सहित लिखे मिले हैं, जिन्हे प्रसगवश यहाँ उद्धृत करना इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण होगा, यथा—

सोढो वीसों की खांप का नाम	मुख्य स्थान
१. सुरताण	ऊमरकोट
२. भोजराज	छाछरो
३. विजैराजोत	खावड़
४. गगदास, वैरसी	खारडी
५. सादूल	धेलार
६. नरा	मिट्ठी
७. मालदे	मनहरदासजी री मऊ
८. नवा	रणमल रौ कुओ
९. राम, वलुआंण	मथूण

इसके पश्चात् 'भुजवल खालडियण' लिखा हुआ है, जिसका स्पष्ट अर्थ समझ मे नही आया, अत. उपर्युक्त क्रम मे नही दिया गया है।

सोढो की उपर्युक्त मुख्य खापो का परिचायक एक छप्पय धाट के चारणोर नामक गांव मे एक दमामी के मुह से मैंने सुना था, जो शब्द एव

उस व्यक्ति के सकेत आदि से चिमनजी द्वारा रचित ही प्रतीत होता है। इस कवि की रचनाओ को गहराई व तल्लीनता पूर्वक पढ़ने के शौक के कारण इनकी रचना का आभास सहज ही मिल जाता है। भाषा की सरलता, अलकरण की झलक, कुछ विशेष शब्दो का प्रयोग जैसे 'राण दीवांण' 'किरणाल', 'मिणधारी', 'अजवाळा' आदि तत्त्व इनके काव्य मे विशेष रूप से मिलते हैं। वह छप्पय भी इस प्रकार है, यथा—

सोढ वडा 'सुरताण' 'भोजराजांन' भणीजै।
'कांन' 'मांन' किरणाळ, दांन तो हैमर दीजै।
सैंस वंस 'सादूळ', [वळे] 'नरपाळ' वडाळा।
मिणधारी 'मालदे', आद 'नव्वा' अजवाळा।
पैंतीस साख चाडै प्रथम, बिड़ग समापै क्रीत वड।
देखिया रांण दीवाण रै, सोढं कोय न सम्मवड़॥१॥

उपर्युक्त छप्पय सोढो की प्रसिद्ध शाखाओ का परिचायक होने के साथ ही श्री चिमनजी की रचना है, इन दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण समझ कर यहाँ अकित किया गया है। 'वडाला' 'आद' जैसे शब्द भी प्राय' इस कवि के काव्य में बहुत अधिक प्रयुक्त हुए हैं। उज्ज्वल, प्रदीप्त या प्रकाश के अर्थ मे 'उजवाल' या 'उजवालौ' शब्द पश्चिमी राजस्थानी मे प्राय. मिलते हैं, जबकि चिमनजी ने अपनी कृतियो मे इसे सर्वत्र 'अजवाल' अजवालौ' 'अजवाळा' आदि रूपो में ही लिखा है। उक्त छप्पय को चिमनजी ने सभवत चेलार या सलामकोट में रच कर वहाँ के किसी याचक को सिखा दिया होगा, जिससे सीखने वाले का आर्थिक लाभ तथा श्रोताओ का वश-बखान होता रहे। उन गाँवो में श्री चिमनजी बहुत अर्से तक रहे थे, अत: सभी दृष्टियों से उपर्युक्त छप्पय को उनकी रचना मानना युक्तिसगत ही होगा। अब हम 'सोढायण' ग्रन्थ के साहित्यिक पक्ष का अवलोकन करेंगे।

६. 'सोढायण' का साहित्यिक मूल्यांकन—

'सोढायण' शब्द सोढा+अयण दो शब्दों से मिल कर बना है। 'अयण' शब्द सस्कृत के 'अयन' से बना है, जिसका अर्थ होता है चरित्र अथवा गति। वाल्मीकि कृत 'रामायण' मे राम का चरित्र विशद एव विस्तृत रूप से चित्रित किया गया है, जिसे तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' के नाम से अवधी भाषा मे रचा। 'रामायण' की तरह ग्रन्थो के नामकरण की परिपाटी डिंगल-साहित्य

मे भी काफी मिलती है। ढाढी बादर कृत 'वीरमायरण', गाडरण पसाइत कृत 'गुरण जोधायरण', इसी प्रकार एक ग्रथ 'पतायरण' भी सुनने में आया है। ऐसे ही श्री चिमनजी ने भी 'सोढायरण' ग्रन्थ की रचना की। 'सोढायरण' की समाकृति के अन्य ग्रन्थो मे उनके चरित-नायको जैसे राम, वीरमदे, जोधा, प्रताप आदि का ही मख्यतः चरित्र चित्रित किया गया है, किन्तु 'सोढायरण' मे सम्पूर्ण सोढा जाति का ऐतिहासिक विवरण है। 'सोढायरण' ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण है, साहित्यिक दृष्टि से भी उतनी ही उत्कृष्ट काव्य-कृति है।

'सोढायरण' डिंगल भाषा का ऐतिहासिक वीर-काव्य है, जिसे 'वंशभास्कर', 'सूरजप्रकाश', 'राजरूपक' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्यो की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन प्रबन्धकाव्यो का स्वरूप शास्त्र-सम्मत प्रबन्धकाव्यो से कुछ भिन्न अवश्य है। जिस प्रकार डिंगल-साहित्य का अपना निजो रीति-शास्त्र है, उसी प्रकार प्रबन्धकाव्यो का स्वरूप भी अपनी विशिष्ट विधाओ को धारण किये हुए है। राजस्थानी के प्रबन्धकाव्यो मे अनेक राजाओ अथवा वीरो की गाथाएँ होती हैं, फिर भी एक वीर प्रमुख होता है, जिसका चरित्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से चित्रित किया जाता है। विस्तार मे ये महाकाव्यो से कम नही होते और न वर्णन की दृष्टि से ही घटकर होते है। इस प्रकार की पृथक् परम्परा में रचित प्रबन्धकाव्यो के प्रसिद्ध प्रणेता महाकवि श्री नरहरिदासजी बारहट, कविराजा श्री करणीदानजी कविया, कविवर श्री वीरभाणजी रत्नू, महात्मा श्री स्वरूपदासजी, महाकवि श्री सूर्यमल्ल मिश्रण आदि-आदि हैं, जिनके ग्रन्थ क्रमशः 'अवतार-चरित्र', 'सूरजप्रकाश', 'राजरूपक', 'पाडव-यशेन्दु-चन्द्रिका' और 'वशभास्कर' हैं।

इस प्रकार के प्रबन्धकाव्य राजस्थान के चारण कवियो ने डिंगल और पिंगल दोनो भाषाओ मे रचे हैं। डिंगल-भाषा के ऐसे ग्रन्थो में प्रस्तुत ग्रन्थ 'सोढायरण' भी आता है। इन महाकाव्यो मे वंशारम्भ से लेकर मुख्य चरित-नायक तक का क्रमपूर्वक ऐतिहासिक वर्णन होता है। उन वर्णनो मे जीवन और जगत से सम्बन्धित प्राय सभी मुख्य तत्त्वो का किसी न किसी रूप मे सकेत मिलता ही है। जीवनोपयोगी एव मर्मस्पर्शी प्रत्येक स्थल की न्यूनाधिक झाँकी इनमे अवश्य मिलती है। इस प्रकार के महाकाव्यों की रचना करने वाले व्यक्ति विद्वान् होने के साथ सफलता पूर्वक जीवन यापन करने की कला मेभी विशेष प्रवीण होते थे। उनके लिये साहित्य, सगीत, कला, इतिहास,

पुराण, राजनीति, धर्म, आखेट, कृषि, शकुन, एव लोक-व्यवहार इन सभी बातो की प्राथमिक जानकारी आवश्यक होती थी, तभी वे इस प्रकार के प्रबंध-काव्यों की रचना कर सकते थे।

श्री चिमनजी से पूर्ववर्ती उपर्युक्त सभी कवियो ने अपने महाकाव्यो में वशारभ से लेकर बीच-बीच में अन्य वर्णनो को बहुत गहराई से चित्रित किया है। हमारे आलोच्य कवि ने इस में थोडा सशोधन कर ग्रथ को अपेक्षाकृत छोटा बनाया और केवल ऐतिहासिक सम्बन्ध की घटनाओ को ही लिया है। अनावश्यक तथ्यो के विस्तार मे न जाकर उन्होने अपने लक्ष्य की पूर्ति ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ रसपूर्ण उक्ति के रूप मे ही देखनी चाही और इसमे यह कवि पूर्णरूपेण सफल हुआ। यह ग्रथ अन्य ऐतिहासिक महाकाव्यो की अपेक्षा आकार मे छोटा है, तथापि विषय-क्रम मे कही अन्तर नही आ पाया है। वस्तु-सघटन बडा ही व्यवस्थित है। ग्रथ मे आद्योपान्त कही भी अस्पष्टता, क्रमहीनता या चुभने वाले किसी तत्त्व का समावेश नही हो पाया है। भाटो की बहियाँ तथा बाह्य-साक्ष्य के आधार पर कवि ने घटनाओ, तिथियो आदि का यथोचित ऐतिहासिक सत्योद्घाटन करने का पूर्ण प्रयास किया है।

आधुनिक अर्थ मे सूक्ष्मता-पूर्ण मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण इस ग्रन्थ मे प्राय: कम ही हुआ है, तथापि वीर सोढा, वीसा, अखैराज तथा जगमाल आदि के चरित्रो को पूर्णरूपेण भारतीय मर्यादा के अनुरूप चित्रित किया गया है। शत्रु को सावधान कर ललकारते हुए जूझ पडना, अपनी आन-बान व मातृभूमि पर आँच आते ही सर्वस्व न्यौछावर कर देना, गौओ की रक्षार्थ हँसते-हँसते धूलि मे मिल जाने का गौरवानुभव, युद्ध मे बराबरी वाले योद्धा से ही भिडन्त, अपने इष्टदेव का स्मरण, गीता, भागवत आदि धर्म-ग्रन्थो का श्रवण, तुलसी-दल को शिरोधार्य करना, अफीम-रस तथा मदिरा की मनुहार आदि प्रसगो के माध्यम से क्षत्रिय-धर्म एव भारतीय सस्कृति का परस्पर अति सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया गया है। सास्कृतिक पक्ष को साहित्य के सुन्दर साँचे मे ढाल देने से उसका रूप और भी अधिक मनोरम व हृदयग्राही वन गया है।

रूप या शृगार का वर्णन इस कवि के काव्य मे प्राय: नगण्य सा ही मिलता है। इस वीररस-प्रधान कृति मे तो रूप-वर्णन का एक प्रकार से अभाव ही है। प्रकृति-वर्णन की झलक सेनाओ के प्रयाण मे जगल, झाडो, तालाव आदि के माध्यम से कुछ स्थलो पर अवश्य दिखाई पडती है। इस ग्रंथ मे

विशेषकर युद्ध का वर्णन बहुत ही सुन्दर हो पाया है। चाचग राणा का उमर सूमरे से युद्ध, राणा हमीर का सम्मस सय्यद (मायावी) से युद्ध, वीर जगमाल का बलोचो से युद्ध आदि वर्णनो मे कवि ने कमाल कर दिखाया है। दोनो दलो मे बराबरी की टक्कर दिखलाते हुए कवि ने वीरो के अद्भुत साहस, पराक्रम व शौर्य का प्रशस्त प्रदर्शन कराया है।

रणक्षेत्र मे पवन-वेग से घोडो का प्रसरना, जंगो नगाड़ो की ठोर, सिंधू राग का उद्घोष, वीरो की ललकार बारूद का भड़कना, अग्नि लपटो तथा चिनगारियो का आकाश मे छा जाना, गोलो के धमाकों से धरती का धूजना, भीषण प्रहारो से तलवारो की कोरो का झड़ना, बारूद के धुआधोर से आषाढ़ की घटामयी रात का सा दृश्य बन जाना, बरसात की तरह तीरो की बौछार, घोडो को कलहल, वीरो का लत्थोबत्थ होना, रक्त के फुहारे छूटना, पृथ्वी पर खलखलाते खून के नाले बहना, होलिकोत्सव मे निर्लज्ज रमणियो की गेर की तरह योगिनियो का खप्पर भर-भर कर रक्तपान करना व मस्ती मे उछालना, वोर वैतालो का उन्मत्त होकर नाचना, शिव के डमरू का बजना, शिर का कटना, धड़ का जल-रहित मच्छो को तरह तडफना, ढालो का कटना, कवच का टूटना, घोड़ों को दौड़ से पाताल तक का कांपना, चतुर्दिक भयानक वातावरण, गिद्धादि पलचरों का टूट पडना, महादेव का आगमन, मुण्डमाला को सजाना, वीरो को छाँट-छाँट कर अप्सराओ तथा हूरो का वरण करना, झाड-झखाड़ व पत्थरों का झकझोरना और तोप, बदूक, तलवार, तीर, ढाल, कवच आदि शस्त्रास्त्रो का वर्णन इतनी सजीवता से हुआ है, कि युद्ध का चित्र आँखो के सम्मुख प्रस्तुत हो जाता है।

प्राचीन काव्य को प्रणाली एवं काव्यगत रूढियो को अपनाते हुए भी कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति व अनूठे शब्द-चयन से वर्णनो को ऐसा शृगार कराया है, कि उसमे नवीनता का आभास दिखाई पड़ता है। वीर की दर्पोक्ति का उदाहरण देखिये—

दोहा

"वधव साय वळोचिया, जीत गया रिण जंग।
वेर लियां नह वीर रो, (तो) पिछमी उदै पतंग॥"

इसी प्रकार वीर की ललकार का एक ओजस्वी उदाहरण अवलोकनीय है—

"सजे भाजियो पाट तू फेण मझा। मुझे भ्रात रो वेर भूलो मुसझा।
मूधा घोलतो जेर रातोल मोसा। पगां पापरो भाव नम्माग सोसा॥"

युद्ध मे उड़ती हुई झाकझीक का एक सागोपाग, चित्ताकर्षक एव ओजपूर्ण चित्र देखिये—

छद पद्धरी

"माळका झुण्ड जोगण समेळ। माळका सूर तोखार मेळ।
बाळका सगत खेलै हबोळ। काळका पुत्र करत किलोळ॥
ठाळका सूर सांमा स ठाय। अवछरां टाळका लै उठाय।
खळहळै भोम छ्रोणाळ खाळ। झळहळै तेज मळहळै झाळ॥
फळहळै वाज विळकुळै काळ। माहेस रळवळै रुडमाळ।
झटपटै घाव अर कटै भूळ। मर मिटै लट वायरा समूळ॥"

उपर्युक्त पक्तियो मे छन्द का अबाध गति से प्रवाह व कवि की शब्द-चयन-पटुता देखिये। युद्ध के होहल्ले और भीषण मारकाट का आँखो के सामने चित्र सा खिच जाता है। कवि का भाषा पर अद्वितीय अधिकार है। ये वर्णन किसी भी वीरकाव्य के वर्णनो की टक्कर मे आसानी से रखे जा सकते हैं। इसी प्रकार ओज से परिपूर्ण युद्ध का एक बलशाली शब्दचित्र विशेष द्रष्टव्य है, यथा—

छद भुजगप्रयात

"लगै झाळ आभै फडक्कै जजाळां। ढहै खूर सूरा कटै टोप ढालां।
धमक्कै बरच्छी छछोहा दुधारां। वहै जम्मदड्ढां जरद्दां बघारा॥"

पूर्वकथित उद्धरण के "खलहलै · रुडमाल' तक की शब्दावल मे जहाँ श्रोणित के प्रवाह की तीव्रता व खलखलाहट साकार हुई है, वहाँ उपर्युक्त उद्धरण की "लगै झाल · · ··· · बघारा" वाली पक्तियो की शब्दावली मे प्रहार की भीषणता अपने पूर्ण प्रभाव के साथ अकित हुई है। 'धमकै बरच्छी छछोहा दुधारा' पढते ही बर्छी के विकट प्रहार से छूटने वाले रक्त के फुंहारे आँखो के सामने आ जाते हैं। इन शब्दो का ओज अद्भुत है। ऐसे ओजस्वी वर्णनो से 'सोढायण' परिपूर्ण है। युद्ध मे चल रहे शस्त्रास्त्रों का रूपक की सहायता से कवि इस प्रकार वर्णत करता है—

"बदूक गोळ छूटास बाण। अणपार नाग वूठा स भांण।
ऊछळै आग दारू अपार। आसाढ मेघ रजनी अघार॥
घडकत नाळ धूंवास घोर। जाजळीमांन असुरांण जोर।
तरवार चक्र उड्डै स तुड, खोसांण कटक ह्वै खड खड॥"

वीर जगमाल के अनुज गजसिह सोढा के खेत रह जाने पर बाद मे पुनः ललकार कर बलोचो को युद्ध के लिये तैयार किया गया। सोढो और सराइयो की इस बार जबरदस्त तैयारी थी। ऐसे मौके पर युद्ध के लिये उन्मत्त वीर दोनो ओर से उतावले होकर बढ रहे थे। उस समय घोडो की नाषिका से श्वास-प्रश्वास की ध्वनि तन्त्रीनाद की भाँति सुनाई पडने लगी और उछलते कूदते वेगवान घोडे ऐसे प्रतीत होने लगे, मानो कोट किलो के ऊपर उडान करने वाले विशेष हयवर हो। घुरीखाँन और घोनार नामक बलोच मुखियो की उक्त छटा का वर्णन कवि के शब्दो मे—

"घुरीखान चड्ढे अबल्लवख घज्जूं। वहै पंथ नासा मनूं नाद वज्जूं।
जगी वाह तोखार धीनार चड्ढे। गिणौ कूदतौ डांण उड्डांण गड्ढे॥"

इसी उपर्युक्त युद्ध के लिये दोनो ओर से उमडती हुई सेनाओ के प्रयाण से झाडियाँ विध्वसित हो गईं, तरुवर कट गये, पहाड घिस गये, रास्ते मँज गये तथा सर्वत्र घोडो के पौडो के निशान गँड गये। युद्ध के नगाडो पर डका पड़ते ही मृग की भाँति छलाँगें भरते हुए उतावले घोड़े आगे बढ़े। रास्ते एव झाड-झखाड के बीच योद्धागण समा नहा रहे थे। इस प्रकार लश्कर का वेग तूफान की तरह उमड पडा। घोडो की झपट से वन-पर्वत झकझोरे जाने लगे। इस प्रकार के सजीव वर्णनो से 'सोढायण' परिपूर्ण है। निम्नलिखित भुजगप्रयात छन्दो में उक्त वर्णन साकार हो उठता है, यथा—

"जिकै हाकलै बाज जोधार जोरै। झरां झगरां डूंगरां थाट झोरै॥
हुवौ ठोर नीसांण नै फौज हालै। भिलै कूदतौ बाज म्रिगांण झालै॥
थळां विम्मरां खूर मावै न थट्टा। झोरै अन्नड़ां खेग देता झपट्टां॥"

इसी प्रकार 'वहै वाट खेगां थरक्कै वसूधा' कहते हुए धरती को धुजाने वाले घोडो की घूमर का प्राणवत चित्रण कवि ने इस ग्रन्थ मे किया है। कही पर जगमाल के भुज-प्रहार से कटे योद्धा के शिर को कोई हूर विशेष चाव से ले जाकर मुण्डमाला के लिये महादेव को भेंट करती दिखलाई गई है, यथा—

"तरवार नीछटी जुगत्तेस। खगधार साथ माथौ खिरेस।
ले गई हूर हाथां लपेट। मढ कियौ सीस जगदीस भेट॥"

कुछ विद्वानो ने डिंगल-साहित्य के युद्ध-वर्णनो पर यह लाछन लगाया है, कि उनमे अपने पक्ष की वीरता को वढ़ा-चढ़ा कर तथा दुश्मन को कायर एवं

कमजोर चित्रित करने की पक्षपात-पूर्ण प्रणाली मिलती है। "युद्ध के समय सारी वीरता, सारा शौर्य और तेज होता है अपने पक्ष मे और दुश्मन के खेमे मे होती है केवल कायरता, क्रूरता और ओछापन।"† वास्तव मे ऐसी बात नही है। डिंगल-काव्य में तो वही युद्ध श्रेष्ठ माना गया है, जिसमें बराबरी की टक्कर हो। कविराजा श्री करनीदानजी कविया ने 'विरद शिणगार' मे जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी तथा सर विलन्दखाँ दोनो को बराबर वीर माना है। कवि स्वय अहमदाबाद के उस युद्ध (स० १७८७ वि०) मे महाराजा अभयसिंहजी की ओर से शामिल था, तथापि उसने शत्रु के शौर्य का अद्भुत वर्णन किया है, यथा—

"सारका कोट अतक समांन। मारका बहादर मुसलमान।
तिण जेम लगरां बध तोड़। मदझरा कध नांखै मरोड़॥"

['विरद-शिणगार' पृ० १८-१९]

ऐसे वीर शत्रु से यदि कोई योद्धा जीत जाय तो वह निश्चय ही कीर्ति का भागी है। उस समय भी यदि उस वीर की सही प्रशस्ति नही की जाय, तो उसके साथ अन्याय होगा। प्रस्तुत ग्रन्थ 'सोढायण' में कवि ने सर्वत्र बराबरी की भिडन्त को ही अधिक महत्त्व दिया है। चाचग राणा तथा उमर सूमरे के युद्ध में यही बात थी, यथा—

"सूमरा सोढ आसुर सुरां, घुबै सेन लेयण धरा।
वळोवळ राग सिंधू वजै, बेहुंवै जोध बरोबरा॥"

इसी प्रकार वीर जगमाल तथा कापड़ीखाँन वलोच की टक्कर का दृश्य भी ऐसा ही है। दोनो की अनमो प्रवृत्ति एवं बाँकापन को प्रकट करनें वाले कवि के ये शब्द कितने प्रभावशाली हैं, कि—

कायर पणै जगौ नां क्रमियौ। नह को धके कापडी नमियौ।
बिहूँ अबेड़ा खारा बोलै। तांणै मूछ केवांणां तोलै॥

कवि ने कई स्थलो पर ध्वन्यात्मक शब्दो का भी बडा सुन्दर प्रयोग किया है, जैसे—

"कडकड़ै नाळ छूटै कराळ। झडझडै दमगां आग झाळ।
हडहड़ै वीर टोळा हसत। धडहडै तोप सूरा धसंत॥"

इस प्रकार कवि ने 'सोढायण' मे 'वयणसगाई' का पूर्ण निर्वाह करते हुए अनुप्रास (कही-कही रूपक, उपमा, स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा तथा लोकोक्ति भी)

†श्री विजयदान देथा—'साहित्य और समाज' पृ० १७०।

आदि अलकारो से युक्त बडी जानदार भाषा का प्रयोग किया है। डिंगल के प्रसिद्ध ओजस्वी छन्दो का ही इस ग्रन्थ मे प्रयोग किया गया है, जैसे दोहा, छप्पय, त्रोटक, भुजगप्रयात (जिसे भुजगी भी लिखा है), पद्धरी, बेग्रक्खरी आदि-आदि। इस ग्रन्थ को पढने से यह सुस्पष्ट ज्ञात हो जाता है, कि कवि का उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्यो को स्वाभाविक रूप से चित्रित करने का ही रहा है। पाडित्य-प्रदर्शन या 'अन्धदोष' कही पर भी नही मिलेगा। फिर भी कवि के कण्ठ मे डिंगल भाषा का सुषम शब्द-सागर होने से स्वभावतः टकसाली एव ओजस्वो शब्दो का ही चयन हुआ है। न चाहते हुए बरबस ही अलकारो की छटा यत्रतत्र प्रदर्शित होती है, किन्तु वह स्वभावतः ही समाविष्ट हुई है। कवि का भाषा पर ऐसा गजब का अधिकार था, कि साधारण से वर्णन एव छोटी सी पंक्ति मे भी अनुप्रास की झलक आ जाती थी। उदाहरण के लिये 'बेग्रक्खरी' छद की निम्नाकित पंक्तियाँ अवलोकनीय है—

(१) 'छिलतै जोम वोम रज छायो।'
(२) 'घाट पाट लेयण चितधारी।'
(३) 'चाटक नाटक भ्रत प्रौहचालो।'
(४) 'भ्रत वेनीत रीत तज आदू।' आदि-आदि।

उपर्युक्त पक्तियो की सरलता व स्वाभाविक वर्णन को देखते हुए स्पष्टतः प्रतीत होता है, कि इनमे अनुप्रास लाने की चेष्टा नही की गई है वलिक स्वत हा आ गये है। ऐसे सैकडो ही स्थल हैं, जहाँ कवि के भाषाधिकार के पीछे अनु-प्रासादि अनुचर की भाँति लगे मिलते हैं, उदाहरणार्थ—

"पूग खवर इल असुर पसरिया।
सोढ जवर समहर सभरिया॥"

इस प्रकार यह कहना सर्वथा उचित होगा कि 'सोढायण' मे कवि का उद्देश्य अलंकारो के भार से भावो को वोझिल करना न होकर केवल वर्णन की स्वाभाविकता की सौन्दर्य-वृद्धि तक ही रहा है। इस ग्रंथ मे प्रसगवश कवि ने कुछ ऐसे पद्यांश भो कह डाले हैं, जिन्हे स्वतन्त्र रूप से सूक्तियाँ कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ वीर जगमाल के मुह के क्षत्रिय-धर्म की व्याख्या—

"घर लूटै छूटै धरम, ग्रहे फटक्कां गाय।
जरा वेळा नर आळसे, ढुळ ध्रुओ न कहाय॥"

गायो की रक्षार्थ गोधूलि मे जूझ कर वीरगति पाने वाले क्षत्रिय को वरण कर के अप्सरा भी अपने आप को धन्य मानती है। इस भाव से ओतप्रोत वीर जगमाल के द्वारा कहे गये ये शब्द कितने महत्त्वपूर्ण है—

'छत्री मरै घेन रज छायां।
वरै अपछरा करै वधायां॥'

इसी प्रकार बलोचो द्वारा भोरीला गाँव को लूटने के प्रसग मे कवि के नीति-भरे शब्द—

'भोरीलो तड भेळियौ, खोसां कर अत खोत।
दुरमत अध न देखवै, मतसक आई मौत॥'

कही-कही लोक-प्रसिद्ध राजस्थानी कहावतो का भी कवि ने प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ 'भागा भाय भारी हुय जावै' अर्थात् भयस्थिति मे भागते समय दूरी बढ जाती है और पाँव बोझिल हो जाते हैं। इस कहावत का प्रयोग 'सोढायण' मे—

'जोगी कहैं सुणौ जोधारां।
भागां भांय होवसी भारां॥'

इसो प्रकार एक कहावत है, कि 'आभै माथै जोवता सो जमी माथै लाधौ' अर्थात् जिस वस्तु के लिए आकाश मे तलाश की जा रही थी, वह पृथ्वी पर ही मिल गई। दूसरे शब्दो मे, कठिन मार्ग की वस्तु सुगमता से ही प्राप्त हो गई। इस कहावत का प्रयोग कवि ने वीर जगमाल सोढा के मुंह से इस प्रकार करवाया है—

"घडछूं तनै खाग री धारा, मेळूं नर बधव रा मारा।
खग धारां 'गज्जौ' तैं खाधौ, जोतो आभ जमीं पर लाधौ॥"

इस प्रकार 'सोढायण' मे आद्योपान्त कवि ने प्रौढ, प्राञ्जल तथा ओज से परिपूर्ण डिंगल भाषा का प्रयोग किया है। ग्रन्थ मे प्राय: वीररस का प्रवाह ही दृष्टिगोचर होता है। युद्ध-वर्णन मे रौद्र रस भी साकार हो उठता है। डिंगल का रूप मुखरित करने वाले टकसाली व हृदयग्राही शब्दो एव भावो का चित्रण ही इस ऐतिहासिक वीरकाव्य मे किया गया है। विशुद्ध डिंगल के साथ कही-कही पर कवि ने उर्दू-शब्दों का प्रयोग भी किया है। बलोच-सेना का वर्णन करते हुए कवि के शब्द देखिये—

"पढ किलमांण निवाजां पडो। चाढ़ौ घेग जांम नै चडो।
उण वेळा सैमांन अणाई। मुसदी चावळ दाळ मंगाई॥

जीमँ छेम असुर दळ जाडा। पनरँ आठ मारिया पाडा।
भखे पुलाव तोवरा भरिया। सह दल जीम श्रेम सभरिया॥"

उपर्युक्त उदाहरण मे जाम, मुसदी पुलाब, तोवरा, पाडौ आदि शब्द उर्दू तथा सिंधी भापा के हैं। इसी प्रकार युद्ध के अवसर पर बलोच योद्धाओ की यारी का एक दृश्य देखिये—

"मेहदी केस रगे चख मोडै। जुसणिया जमदूतां जोड़ै।
इला इलल्ला मुखा उचारै। धुन रैहमांण फातमा धारै॥"

इस प्रकार सक्षेप मे इतना ही कहना प्रर्याप्त होगा, कि श्री चिमनजी कविया द्वारा रचित यह 'सोढायरण' ग्रन्थ डिंगल-साहित्य की एक अनुपम कृति है। कथावस्तु-सघटन, युद्ध-वर्णन, मुहावरेदार प्राञ्जल भाषा, अनुप्रासो की छटा, ओज का परिपक्व रूप एव सास्कृतिक महत्व की ऐतिहासिक भित्ति पर कमनोय कल्पना व भव्य भावो के सहारे बनाये गये ये सुन्दर चित्र साहित्य-जगत मे सदैव प्रकाशित होते रहेगे, ऐसे आशा है।

७. उपसंहार—

डिंगल-साहित्य मे मेरी बचपन से ही विशेष रुचि रही है। जब से मैं श्री चिमनजी के काव्य को समझने लगा, तब से लेकर आज तक इस कवि के प्रति मन मे उत्तरोत्तर श्रद्धा का भाव बढ रहा है। मेरे हृदय में उस दिवगत आत्मा के प्रति एक विशेष चाह, सम्मान और श्रद्धा है। मेरा बचपन आधुनिक काल के इस प्रगतिशोल युग मे बीता है, तथापि मेरा जी जानता है कि मैंने कितनी कठिनाइयो का सामना करते हुए कहाँ-कहाँ भटक कर शिक्षा प्राप्त की है। आज से लगभग सवासौ वर्ष पूर्व जब श्री चिमनजी एक वालक के रूप मे इसी बिराई गाँव मे खेलते-कूदते होगे, तव न पाठशाला थी, न शिक्षा का साधन, न माता की ममता थी, न पडौस की प्रीति, न बढ़िया घर था और न अधिक रुपया-पैसा हो। कर्जदार बाप का वह बड़ा पुत्र था, जिसका अनुज भी साधारण बुद्धि का बालक था। गाँव का वातावरण अत्यन्त सादा था। न तो कुओ पर गेहूँ की फसल होती थी और न आज की तरह पानी की मशीने व रग-विरगे फूलो की वाडियाँ ही थी। वालक के होसले को बुलन्द करने वाले मनोविज्ञान के साधनो मे से श्री चिमनजी के पास एक भी साधन नही था। जो साधारण अक्षर-ज्ञान तक शिक्षा प्राप्त कर सका, वह व्यक्ति वेदान्त, तत्वज्ञान और योग का इतना विशेपज्ञ कैसे बन पाया? जहाँ-जहाँ भी वे अधिकाशतः रहे, उन सभी स्थानो पर मैं गया और तीर्थ-यात्रा

का सा आनन्द प्राप्त हुआ। रात-दिन मैं इसी विचार मे रहता था, कि मेरे श्रद्धेय कविवर श्री चिमनजी की काव्य-कृतियो का किसी अच्छी सस्था से प्रकाशन हो जाये। आजीवन अविवाहित रहने के कारण उनके वश मे तो आज कोई नही है। ससार में स्वार्थी व्यक्ति पराई पीढियो को क्योकर याद रखेगा ? यही कारण है, कि आज उनकी जन्म-भूमि बिराई मे भी बहुत से युवा लोगो को तो यह पता तक नही है, कि श्री चिमनजो कविया इसी गाँव के निवासी थे। निष्कपट एव नेक भावना को ईश्वर फलीभूत करता ही है। यही कारण था, कि परमपूज्य पद्मश्री मुनि जिनविजयजी ने 'सोढायण' ग्रन्थ सुना और प्रकाशन के लिये तुरन्त लिखित आदेश दिलवाया। 'राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान' जैसी प्रख्यात और प्रतिष्ठित सरकारी सस्था से इस ग्रन्थ का प्रकाशित होना और भी अधिक महत्त्वपूर्ण रहा।

ग्रन्थ के आगे परिशिष्ट १ मे 'सम्मा रा भूलणा' नामक एक छोटा सा ऐतिहासिक वीर-काव्य है। सोढायण की रचना-तिथि से केवल २४ दिन पूर्व यह कृति रची गई है। इसमे सम्मा (सामेचा) जाति के यदुवशी क्षत्रियो की ऐतिहासिक प्रशस्ति वर्णित की गई है। प्रसिद्ध दानवीरो की गाथा के साथ बीच-बीच मे जहाँ युद्ध-वर्णन आये हैं, वहां पर कल्पना साकार हो उठती है। जाम गहा का काठियो से किया गया युद्ध तो विशेष रूप से हृदयग्राही बन पडा है। ओज से सराबोर इस युद्ध वर्णन की एकाध झाँकी दिखलाने का मोह संवरण नही कर सकता, अतः कवि के शब्दो मे एक चित्र देखिये—

"होय हड़व्बड़ हैवरां, ध्रमकत्त पंयाळा।
सार झकोभक सोहड़ां, छकधक्क छड़ाळा।
जोध जरक्क गरक्क जंग, अंग एम अफाळा।
रग दिये रहमांण रट, फट घाव कमाळा।
सूर घटोघट चूर सेन, भ्रख पूर पंखाळा।
नूर वधै ग्रह पूर ज्यूं, कर भूर कपाळा।
लूर त्रिखा जिम सालळै, गज खूर वंताळा।
हूर मबच्छर हूकळै, जोय सूर वडाळा।
मळकै माला के भुजां, खळकै रत खाळा।
गळकै वूथा ग्रीधणां, हळकै लोथाळा।
ढळकै ढाल वडपफरां, रळकै रुंडाळा।
झळकै झाळ कराळ ब्याळ, ढळकैस भुजाळा।
टळकै कायर टोळ मे, मुळकै चोटियाळा॥"

उपर्युक्त उद्धरण को डिंगल-साहित्य के अत्योत्कृष्ट युद्ध-वर्णनो के समकक्ष रखा जा सकता है। टकसालो शब्दो की अनुप्रासिक छटा के साथ भव्य भावों का दिग्दर्शन कराने वाली यह कृति अपने आप मे 'स्वल्पाच मात्राः बहुलो गुणश्च' की उक्ति को चरितार्थ करती है। शब्द को गढ़ने, रूपान्तर करने अथवा विपयानुकूल चयन करने की जैसो विलक्षण प्रतिभा 'सोढायरण' के कवि मे है, वैसी डिंगल के विरले ही कवियो मे मिलती है। कला-पक्ष एवं भाव-पक्ष दोनों ही दृष्टियो से 'सम्मां रा झूलणा' एक अत्यन्त मनोरम काव्य-कृति कही जा सकती है।

इन झूलणो के केवल २४ दिन पश्चात् 'सोढायरण' ग्रन्थ को सम्पूर्ण कर दिया था। सम्मा क्षत्रियो से सोढो के पास पहुँचने मे भी कुछ समय तो लगा होगा और फिर जालमसिंह सोढा के आग्रह पर ग्रथ-रचना प्रारम्भ की होगी। इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए जब हम इस बात पर विचार करते हैं, तो हमे कवि की अद्‌भुत प्रतिभा का स्पष्ट भान हो जाता है।

ग्रथ की हस्तलिखित, प्रति को देखने पर यह स्पष्टतः प्रतीत होता है, कि कविता उनके कंठ से निकलती और तत्क्षण लिपिबद्ध हो जाती। बार-बार काट-छाँट कर सुन्दर सजावट करने की प्रवृत्ति तो श्री चिमनजी मे थी ही नही। इतना ही नही, जिस पोथी मे ग्रथ लिखा है, उसी मे कही हिसाब, कही कोई यादगार आदि भी लिख देते थे। रेगिस्तान के पिछड़े इलाके मे रहने के कारण आज की भाँति तो कागज भी उपलब्ध नही होते थे। इस प्रकार की विशेष परिस्थितियो मे रची गई विभिन्न प्रकार की इन काव्य-कृतियो को परिशिष्ट २ मे सक्षिप्त विवेचन सहित देकर विद्वज्जनो को यथाशक्ति पूर्ण जानकारी देने का प्रयास किया है। रचनाओ को विषयानुसार विभक्त कर पृथक्-पृथक् खड के रूप मे परिशिष्ट में देकर कवि के कृतित्व की एक सरसरी झलक दिखलाने को चेष्टा की है।

मूल प्रति का आकार ९"×५" है और प्रत्येक पत्र मे प्रायः ७ से ९ शब्दों की ९-१० पंक्तियाँ हैं।

वैसे मूल प्रति अत्यत बिखरी हुई थी, जिसे विषय-क्रम, छद की सख्या तथा वयणसगाई के नियम आदि के द्वारा क्रमबद्ध कर सग्रहीत किया गया। अन्य प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो की भाँति इसमे भी यति, विरामचिह्न, द्वित्वाक्षर,

चँद्रबिन्दु आदि का प्रायः अभाव ही था, जिसे छंदशास्त्र के नियमानुसार लघु-दोर्घ मात्राओ को ठीक कर यथाशक्ति पाठ को शुद्ध रूप में रखने की चेष्टा की है। प्रकीर्णक काव्य की छोटी एवं सरस रचनाओ को कठस्थ करने वालो की सुविधार्थ खडित शब्दों के स्थान पर कोष्ठक [ ] बना कर छदशास्त्र के नियमानुसार उसो भाव के शब्दों को जोड़ा गया है, जिससे छन्द की लय-सरसता तथा भाव-प्रवाह मे कोई बाधा नही आये। पाठको की सुविधा के लिये परिशिष्ट ३ तथा ४ मे 'सोढायण' मे प्रयुक्त नामो एव छन्दो की क्रमपूर्वक अनुक्रमणिकाएँ भी दे दी गई है।

'सोढायण' ग्रन्थ उमरकोट के सोढों के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पक्ष से सम्बन्ध रखता है, अत' इस ग्रन्थ मे वर्णित गाँव, देवस्थान, गोत्र, व्यक्ति एव विशेष उपकरण आदि के विषय मे सयोगवश मेरी ठीक जानकारी थी और यह कार्य मेरे ही द्वारा सम्पन्न हुआ इसका मुझे सन्तोष है। उमरकोट के निकट तीन मील की दूरी पर खारोडा गांव मे मेरा ससुराल होने से मैं उस प्रदेश की कई बार यात्रा कर चुका हूँ। मैंने वहाँ के मुख्य स्थानो का विशेष दिलचस्पी से दौरा किया और सोढो के विषय मे उपर्युक्त सभो महत्त्वपूर्ण बातो को यथाशक्ति पूर्ण जानकारी प्राप्त की। गाँवो के नाम, उनकी आपस दूरी, सम्मो तथा सोढो के विषय मे सिंधी इतिहासकारो के मत आदि सब प्रकार को सामग्री उपलब्ध होने पर मैंने इस ग्रन्थ के सम्पादन को रूपरेखा तैयार की।

इस ग्रन्थ के सम्पादन मे कवि-परिचय, शब्दार्थ, टिप्पणियाँ, परिशिष्ट १, २, ३, ४ तथा भूमिका मे सोढा जाति का इतिहास, सोढाण-प्रदेश की सास्कृतिक महत्ता, 'सोढायण' की कथा-वस्तु, 'सोढायण' का ऐतिहासिक विवेचन तथा साहित्यिक मूल्याकन आदि खडो के द्वारा मैंने यथाशक्ति कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सक्षेप मे प्रकाश डालने का यत्किंचित प्रयास किया है। सम्पादन मे पूर्ण सावधानी बरती जाने के उपरान्त भी कही-कही पर मुद्रण की त्रुटियाँ रह गई हैं, आशा है विद्वज्जन क्षमा करेंगे। मेरा उद्देश्य तो केवल इस अज्ञात कवि की समस्त उपलब्ध कृतियो को सक्षिप्त विवेचन सहित विज्ञ पाठको के समक्ष लाकर प्रस्तुत करना ही रहा है। इसमे मैं जितना सफल हो सका हूँ, वह मित्रो की शुभकामना का ही फल है।

अन्त मे विद्वद्रत्न श्रद्धेय डॉ० श्री सम्पूर्णानन्दजी राजस्थान-राज्यपाल तथा परमपूज्य पद्मश्री मुनिवर जिनविजयजी महाराज, सम्मान्य सचालक, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर का मैं हार्दिक आभार प्रदर्शन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनकी प्रेरणा एव आशीर्वाद से मेरी डिंगल-साहित्य के प्रति सेवा-भावना अधिक सुदृढ हो पाई। राजस्थानी भाषा के उपेक्षित, किन्तु अनुपम व अतुल साहित्य को राजस्थान-सरकार लाखो रुपये खर्च कर प्रकाशित करवाने का जो शुभ-कार्य कर रही है, उसके लिये उसे धन्यवाद अर्पित नही करना भी आत्मा की निश्छल अभिव्यक्ति को रोकना होगा। निस्सदेह सरकार का यह व्यय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सफल कहा जा सकता है। श्रीमान् गोपालनारायणजी वहुरा, उप-संचालक राज० प्रा० वि० प्रतिष्ठान, जोधपुर तथा अजन्ता प्रिण्टर्स के सचालक श्री जगदीशचन्द्र स्वर्णकार का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनके सौहार्द-भाव से मेरा यह कार्य सुख-पूर्वक सम्पन्न हुआ।

ससारे कटुवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सुजने जने॥

हिन्दी-विभाग,
विश्वविद्यालय, जोधपुर.
वसन्तपञ्चमी, स० २०२२

—शक्तिदान कविया
सम्पादक.



स्वयं कविया चिमनजी द्वारा लिखित सोढायण के प्रथम पत्र की प्रतिकृति (—श्री शक्तिदानजी कविया की प्रति से)

स्वय कविया चिमनजी द्वारा लिखित सोढायण के अन्तिम पत्र की प्रतिकृति (—श्री शक्तिवानजी कविया की प्रति से)

॥ श्री ॥

कविया चिमनजी कृत

सोढायण

॥ श्री गुणेसाय निम ॥ अथ सोढै जगमालजी री सोढायण ग्रंथ लिखत ॥

गाथा

सुरसत मात निमो सुरसांमण ।
ऊजळ वरण ऊजळ आभूखण ।
गवरीपुत्र मुज्झ दीजे गुण ।
सुज्जस कथूं ग्रंथ सोढायण ॥१॥[१]
समहर सूरवीर वर सोढा ।
सह दातार कहीजै सोढा ।
सूरजवंस उजागर सोढा ।
सिरै वंस छत्तीसां सोढा ॥२॥[२]

दुहा

कोयलापुर पट्टण कनै, निज्ज किराड़ू नांम ।
राजा बाहड़राव रै, जलमे चाहड़जांम ॥१॥[३]

---

१. सुरसत=सरस्वती । सुरसामण=स्वर की अधीश्वरी, सुरस्वामिनी । ऊजल=उज्ज्वल । सोढायण=(स० सोढा+अयन) सोढो का चरित्र।

२. समहर=समर, युद्ध । सह=सब । उजागर=विख्यात । सिरै=श्रेष्ठ, शिरोमणि ।

३. कोयलापुर=कोहिलापुर नामक एक नगर, जिसका नामकरण कोहिला देवी के कारण हुआ था और उस देवी का वास्तविक नाम तो हिंगलाज कहा जाता है, किन्तु कोहिला पर्वत पर उसका मन्दिर होने से कोहिलाराय कहलाई, हिंगलाज देवी आदिशक्ति का अवतार मानी जाती है और उसका प्रमुख स्थान 'हिंगलाज' नाम से निर्जन प्रदेश मे एक पहाड़ पर स्थित है, जो अभी पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा मे आया हुआ है। ....

चाहड़ चावौ च्यार-चक, जस गाहड़ जोधार।
कोयलापुर राजस करै, मेर पखां परमार ॥२॥[४]

छंद त्रोटक

कोयलापुर 'चाहड़' राज करै।
सुत दोय भया जुग सोय सिरै।
भड़ सोढ वखांणूं एक भलौ।
सज वीर सधीर बियौ सांखलौ ॥१॥[५]
बिरदैत वडा वरियांम बिहूं।
किरणाळ ससी छिब भाळ कहूं।

.. पट्टण=पाटन। कोहिलापुर एव पाटन ये दोनो नगर वर्त्तमान बाडमेर के समीप पश्चिम दिशा मे स्थित थे। किराडू=बाडमेर जिले का एक अत्यन्त प्राचीन ग्राम, जो आज भी उसी नाम से बोला जाता है। बहुत प्राचीन जमाने मे मारवाड़ के ९ प्रसिद्ध कोटो मे (जिससे नौकोटी मारवाड़ कहलाती थी) किराडू प्रमुख कोट था। आज भी प्राचीन मूर्तियाँ, शिलालेख, मन्दिर आदि की दृष्टि से यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण गाँव है। किराडू को किसी युग मे किरातकूट कहा जाता था—ऐसी विद्वानो की मान्यता है। बाहडराव=किराडू का स्वामी परमार बाहडराव, जिसे धरणीवराह की उपाधि से विभूपित किया गया था और उसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। जलमे=[रूढ़ शब्द] जन्मे, सोढायण का कवि जिस प्रदेश मे पैदा हुआ था, वहाँ आज भी जन्म को 'जलम' बोला जाता है। 'न' के स्थान पर 'ल' का प्रायः उच्चारण राजस्थान के पश्चिमी भाग शेरगढ, जैसलमेर तथा आगे उमरकोट तक भी पाया जाता है। चाहडजाम=राजा वाहडराव का पुत्र चाहदडे, जिसके पीछे चाहड परमारो की शाखा बनी और उसी चाहड या छाहड परमार के नाम पर बसा एक गाँव (वर्त्तमान वाडमेर जिले मे स्थित) 'छाहडार' (छाहडासर) आज भी स्थित है और इसी नाम से वोला जाता है।

४. चावौ=विख्यात। च्यार-चक=चारो दिशाओ मे। गाहड=गाढ, प्रतिष्ठा, अर्जित करना।

५ सोढ=चाहडदे का पाटवो पुत्र सोढा, जिसके पोछे सोढा जाति वनी। वियौ=द्वितीय, दूसरा। साखलौ=सोढा का अनुज, जिसके पीछे क्षत्रियो मे सांखला गोत्र वना।

६. विरदैत=विरुदधारी। वरियाम=श्रेष्ठ। विहू=दोनो। किरणाल=सूर्य। भाळ=भाल, ललाट, निरख।

सत आध वरस्स तपे सधरं।
सुत बाहड़ पूगोय लोकसुरं ॥२॥[६]
पड़ियौ जद चाहड़राव प्रथी।
कर मेळ प्रधानां वात कथी।
गिरण भ्रात उभै गढ एक गिरं।
किरण हूंत टीलायत राव करं ॥३॥[७]
कर वात आळोभ्फ विचार कियौ।
दिल भ्रात लघू नै राज दियौ।
नखतैत सोढौ अतही अनवी।
नर हालैय खाटरण भोम नवी ॥४॥[८]
सज फौज दमंगळ यूं सजिया।
विकराळ त्रंबाळ घणूं वजिया।
कळचाळोय सोढ घरां क्रमियौ।
खट रात सु माग विचै खिमियौ ॥५॥[९]
रजनी हुय सातम कोटरतै।
मिळियौ गढ लेयरण आप मतै।

---

६. सत आध वरस्स=सौ के आधे वर्ष अर्थात् ५० वर्ष। सधर=भली प्रकार से, श्रेष्ठ रीति से, बेखटके। सुतबाहड=बाहडराव का पुत्र चाहडदे।

७. पडियौ=स्वर्गवास हो गया, राजस्थान मे राजा रईसो के देहान्त पर मरने जैसा शब्द नही बोला जाता था, प्रायः 'पड गये' या 'देवलोक हो गए' ऐसा कहने की प्रथा थी। मेल=बैठक, मिल जुलकर। गढ एक गिर=कोहिला पर्वत पर स्थित एक दुर्ग। टीलायत=टीकायत, राज्यतिलक का अधिकारी।

८ आलोभ्फ=आलोच्य। नखतैत=नक्षत्रधारी, श्रेष्ठ प्रारब्धवाला। अनवी=नही भुकने वाला, टेक निभाने वाला। खाटरण=अर्जित करने को, प्राप्त करने के लिये।

९. दमगल=युद्ध, लश्कर। त्रबाल=नगाडे। कलचालोय=योद्धा, महान् शूरवीर। क्रमियौ=प्रस्थान किया। माग=मार्ग। खिमियौ=रुका, पड़ाव डाला।

१०. सातम=सप्तमी। कोटरतै=रताकोट, जिसे रता नामक मुसलमान ने बनाया था और उमरकोट से १४ कोस की दूरी पर आज भी उसी नाम से स्थित है।

विढवा कज सोढ घणूं विसमौ।
सज घेर किलौ निस आध समौ ॥६॥[१०]
हलकार केवांण हुकम्म हुवौ।
मुगलांण रतौ निस घांण मुवौ।
भड़ भाज अरी नह को भिळियौ।
मुगलांण भगा गढ यूं मिळियौ ॥७॥[११]
किवळास तणं गढ राज कियौ।
पिचियास वरस्स गादी तपियौ।
भड़ सोढ तहां सुर लोक भिळै।
कर राजस रायकवार किलै ॥८॥[१२]
रायदेव बासट्ठ वरस्स रहै।
कुळ गादिय चाचक रांण कहै।
बुध चाचक रांण महा सबळं।
चढियौ गढ हूंत सजे चचळं ॥९॥[१३]
घण खूर दमंगळ मेळ घणौ।
तद होय नगारोय कूच तणौ।
धिखियौ अत कोट केळास धणी।
तिसना मन अम्मरकोट तणी ॥१०॥[१४]

---

१०. विढवा कज=युद्धार्थ। घणू=अत्यन्त। विसमौ=शत्रु दल के लिये विषम आकृति मे। समौ=समय।

११. हलकार=ललकारना। केवाण=कृपाण, तलवार। हुकम्म=हुक्म, आज्ञा। मुगलाण=मुसलमान। घाण=युद्ध, जख्म, घाव। मुवौ=मरा।

१२. किवलास=कैलाश का दुर्ग, जो रताकोट के समीपवर्ती इलाके मे ही था। पिचियास=पिच्यासी (८५)। वरस्स=वर्ष। भड=(स० भट) योद्धा। भिलै=विलीन हो जाना, समा जाना। राजस=राज्य। रायकवार=रायदेव, सोढा का उत्तराधिकारी। मुहता नैणसी की ख्यात मे सोढा के बाद रायदेव का जिक्र ही नही मिलता और सोढा का उत्तराधिकारी राणा चाचगदे को ही माना है।

१३. गादिय=राज्यगद्दी, तख्त। बुध=बुद्धिमान, मेधावी। चचल=चचल, घोडे।

१४. खूर=योद्धा, शूरवीर। मेल्=मिलाकर, इकट्ठा करके। धिखियौ=भयकर क्रोधित हुआ। कोट केलास धणी=कैलाश कोट का स्वामी राणा चाचगदे। तिसना=तृष्णा। अम्मरकोट=उमरकोट।

खडिया अस जोध सक्रोध खरा।
घज पौड अरोड हैकंप धरा।
तर भंगर संघर होय तठै।
जळ सायर कायर सोख जठै ॥११॥[१५]

अमराण तणै गढ राण इतै।
जद पूगिय आसुर जांण जितै।
तिण मेल घणा दळ तेड़ण नै।
भड़ आत रिमां सूं भेड़ण नै ॥१२॥[१६]

सज आयाहु सूमर जात सबै।
असुरां सुर होसिय जंग अबै।
चखचोळ सोढांपत रीस चढूं।
गजनाळ वळोवळ घेर गढूं ॥१३॥[१७]

दुहौ

दळ साबळ घेरौ दियौ, कसियौ ऊमरकोट।
चाचगरांणौ चढ्ढियौ, देण सूमरां दोट ॥१॥[१८]

कवत

सबळ फौज सालळैं, विड़ग हूकळै वळोवळ।
प्रघळ मोरचा पूर, सोर धूंवा रव सालळ।

---

१५. खडिया=चलाये, प्रस्थान किया। अस=अश्व, घोडे। जोध=योद्धा। घज=घोडे। अरोड=तेज, जबरदस्त। हैकप=कपायमान। तर=तरु, वृक्ष। भगर=घने वृक्षो का समुदाय। सघर=सहार। जल सायर कायर सोख जठै=कायर दल रूपी सायर (सागर) का जल प्रतिपक्षी दल के शौर्य रूपी आतप से सूखने लगा।

१६ अमराण=उमरकोट। आसुर=असुर, मुसलमान। जाण=खबर, सूचना। तेडण=बुलाने के लिये। रिमा—रिपु, शत्रु। भेडण=भिडने के लिये, मुकाबला करने को।

१७. सूमर=सूमरा जाति के मुसलमान, जो पहले यादव थे। चखचोल=क्रोध मे लाल नेत्र किये हुए। चढू=चढी। गजनाल=एक तोप विशेष, जो हाथियो की पीठ पर लादी जाती है। वलोवल=चारो तरफ।

१८. साबल=सबल, जबरदस्त। कसियौ=घेर दिया। दोट=चोट, धक्का।

१९. साललै=फैलती है, उमडती है, आगे बढती है। विड़ग=घोडे। हूकलै=उतावलेपन मे हीस रहे हैं। प्रघल=बहुत-से। सोर=बारूद।

होय कळह हूंकार, वडा जोधार विळग्गा।
उरड़ तोप ऊनाळ, लड़ण सावता ज लग्गा।
सूमरा सोढ आसुर सुरां, धुवै सेन लेयण धरा।
वळोवळ राग सिंधू वजै, वेहुंवै जोध बरोबरा ॥१॥[१९]

छंद भुजंगी

सजै फौज सोढा अरां थाट सांमा।
इतै सूमरा जोध जंगी अमांमा।
बिहूं सेन जोरा बिहूं नाळ बाज।
लसं नांज फौजां बिहूं व्रद्द लाजै ॥१॥[२०]
दळां सूमरै अम्र आयंस दीधौ।
कसे भार लज्जा अहंकार कीधौ।
इतै रांण 'चाचक्क' सेना अकारी।
भटां गड्ड भेळौ करी जग भारी ॥२॥[२१]
बिहूं सेन हल्ला दुनी हाकबाकं।
धसै सूर सूरां वजै डाकधाकं।
दगै तोप किल्लै लगै आग दूठै।
वहै धार खग्गां सरां मेघ वूठै ॥३॥[२२]

---

१९. विलग्गा=विलग्न हो गए, विशेष रूप से लग गए। उरड़=तीव्र गति से आगे बढने का भाव। ऊनाल=उष्ण, गर्म। सावता=समस्त। धुवै=रोप मे आतुर। वेहुवै=दोनो तरफ। बरोबरा=समकक्ष, बरावरी के।

२० अरां=शत्रुओ। थाट=सेना, दल। सामा=सामने। जगी=जबरदस्त। अमामा=श्रेष्ठ, उत्तम। नाल=बन्दूक। लसै=पीछे हटना। नांज=कदापि नही। व्रद्द=विरुद।

२१. अम्र=अमर (उमर सूमरा, जिसने उमरकोट बसाया था)। राजस्थान के पश्चिमी भाग से लेकर उमरकोट तक 'उ' के स्थान पर 'अ' का उच्चारण करने की अधिक प्रथा है, आज भी उमरकोट को प्राय. अमरकोट ही कहते है। आयस=आयुस्, आज्ञा। चाचक्क=राणा चाचगदे। अकारी=प्रचण्ड, उत्साहित की। भटा=(स० भट) बहादुरो। गड्ड=दुर्ग, गढ। भेलौ=विध्वस कर दो।

२२ हाकबाकं=हक्के बक्के, भौंचक्के रह गए। सूर=शूरवीर। धसै=घुस पैठ करना, बलात् घुसना। डाकधाक=भीषण रव, तहलका मच जाना। दगै=तोप या बन्दूक का दागना, गोली की चोट लगाना। दूठै=भीषण। किल्लै=किले पर। वूठै=बरसात करते हैं।

लगै झाळ आभै कड़क्कै जंजाळों ।
ढहै खूर सूरां कटै टोप ढालां ।
ध्रमकं बरच्छी छछोहा दुधारां ।
वहै जम्मदड्डां जरद्दां बघारां ॥४॥[२३]
पियै रत्त चडी भलै पत्र पारणां ।
चरै सूर रभा ठहक्कं विवांणां ।
मिळै वीर टोळा खिलै रासमंडै ।
हुवै हाक हल्ला मुसल्ला विहडै ॥५॥[२४]
घुबै घाव लोही वहै खाळ घरनी ।
वसू रंग कीधौ अती चोळ वरनी ।
भखै गूद पंखी भगै भूख भारी ।
घपै मुंड लेले सभू माळ धारी ॥६॥[२५]
मिळे झूळ रंभा सुभट्टां मनाया ।
चढे गैण सूरां वरे मन्न चाया ।
चखां रूप देखे लगी रग चाळै ।
वळी हूर पाछी असूरां वमाळै ॥७॥[२६]

---

२३. झाल = ज्वाला । आभै = अन्तरिक्ष में । कडक्कै = जोर की ध्वनि करते हैं । जजाला = एक प्रकार की बन्दूक । खूर = योद्धा । ध्रमकै = तेज गति से प्रहार करना । छछोहा = उतावले, तेज । दुधारा = वह खड्ग, जिसके दोनो ओर की धारें पैनी होती है । जम्मदड्डा = यमदाढ, कटारी । जरद्दा = कवच, बख्तर । बघारा = बडे-बडे छेद ।

२४. रत्त = रक्त । पत्र = पत्तल, कमण्डल । पारणा = हाथो मे । ठहक्कै = तत्परता से प्रयाण करना । विवांणा = विमान । वीर = वीर वैताल, भैरव । टोला = बडे-वडे झुण्ड । खिल्लै = प्रसन्न होते हैं, नृत्य करते हैं । मुसल्ला = मुसलमान । विहडै = विध्वस करते हैं, खड-खंड करना ।

२५ धुबै = उष्णतापूर्वक प्रवाह । खाल = नाला, रक्त या पानी का रेला । वसू = वसुधा, पृथ्वी । चोलवरनी = रक्तवर्ण । गूद = मास की बोटी । घपै = तृप्त हो रहे है ।

२६ झूल = समुदाय । रभा = अप्सरा । गैण = गगन, आकाश । मन्नचाया = मनचाहे । चखा = चक्षुओ से । रग चालै = रगरलो, मदमस्त मुद्रा । वली = मुड़ गई । असूरा = असुरो, मुसलमानो ।

पड़ 'अभ्र' खैंतं भिसत्तंस पूगौं।
इळा सोढ लीनी दुनी जस्स ऊगौं।
समत्तूस बीजै बावीसै वरस्सूं।
सोढंकोट आयौ वखाणै सरस्सूं ॥८॥[२७]

दुहा

सोढ खपाया सूमरां, तरवारां खट तीस।
'अमर' सूमरौ ऊथपै, 'चाचग' दिनां पचीस ॥१॥[२८]
कोटअमर राजस कियौ, सज पख वरसां साठ।
'जैभ्रम' पाट विराजियौ, धर थिर राखण धाट ॥२॥[२९]
जैभ्रम रै 'जस्सड़' जिकौ, कवर भयौ किरणाळ।
'सोमकवर' ताके सुतन, उपनौ विरद उजाळ ॥३॥[३०]
उणीज गादी ऊपरा, आभोपन उतपन्न।
'धरा वरीसण' खागधिन, रांण अमोल रतन्न ॥४॥[३१]

---

२७. भिसत्तास = (फा० भिश्त), स्वर्ग। सोढ = सोढा राणा चाचगदे। समत्तूस बीजै बावीसै वरस्सूं = सवत् दूसरे और बावीसे वर्ष मे, जिसका अभिप्राय सम्भवत एक हजार दो सौ बावीस अर्थात् स० १२२२ वि० से होगा। बखाणौ = यशोगान करते हैं। सरस्सू = उत्तम, श्रेष्ठ।

२८ खपाया = मार डाले, काम तमाम कर दिया। तरवारा = तलवारो से। खटतीस = छत्तीस। अमर सूमरौ = उमरकोट का स्थापक उमर सूमरा। ऊथपै = फिर से उथल देना, राज्यगद्दी से हटा देना।

२९. कोटग्रमर = उमरकोट। राजस = राज्य। सज पख = साज सज्जा एव लवाजमे के साथ, भली प्रकार से। जैभ्रम = जयभ्रम सोढा, जो राणा चाचगदे का उत्तराधिकारी था, यह जयभ्रम बडा उदार एव काव्य-प्रेमी था, चारण कवियो का बडा सम्मान करता था—ऐसा उमरकोट इलाके के वयोवृद्ध विद्वानो के मुँह से मैंने सुना है। पाट = राज्य-सिंहासन। थिर = स्थिर। घाट = उमरकोट का इलाका।

३० जस्सड = जसहड, सोढा राणा जयभ्रम का पाटवी कुंवर एव उत्तराधिकारी। सोमकवर = सोमेश्वर, राणा जसहड का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उपनौ = उत्पन्न हुआ। विरद उजाल = वंश-परपरागत विरुद को समुज्ज्वल करने वाला।

३१ आभोपन = अनुपम, श्रेष्ठ। धरावरीसण = सोढा सोम का उत्तराधिकारी धरावरीस हुआ, जिसके वास्तविक नाम की ओर किसी ख्यातकार ने सकेत ...

'दुरजरणसल' 'अवतारदे', धिन 'थिर' पाळ सधीर।
उरणहिज गादी ऊपरा, हूवौ रांण 'हमीर' ॥५॥[३२]
अमरकोट थह ऊपरा, रिव जिम प्रतपै रांण।
अत अनीत 'सम्मस' असुर, आयौ कर आरांण ॥६॥[३३]

... नही किया, 'धरावरीस' तो उसकी उपाधि थी, जिसे कुछ लोग 'धरापसाव' भी कहते थे। उपलब्ध प्राचीन ख्यातो मे भी, मुहता नैणसी ने 'धरावरीस' लिखा है तथा कविराजा बाकीदासजी ने अपनी ख्यात मे 'धरापसाव' लिखा है। ''धरावरीसण' खाग धिन, राण अमोल रतन्न' कवि की इस पक्ति से एक अर्थ तो अमूल्य रत्न की उपमा से विभूषित करना होता है, किन्तु दूसरा ऐसा भी आशय निकलता है कि सभवत धरावरीस या धरापसाव का वास्तविक नाम रतन राणा था। स्मरण रहे, गीतो मे गाया जाने वाला रतन राणा तो बहुत बाद मे यानी अग्रेजो के जमाने मे ही हुआ है और उस रतन राणा के पौत्र ठा० भैरसिहजी सोढा को तो मैंने भी देखा है। उक्त धरावरीस सोढा के दुर्जनसाल एव आसराव नामक दो पुत्र हुए, जिनमे दुर्जनसाल के वशज धाट (उमरकोट) के एव आसराव के वशज पारकर के सोढे हैं।

३२. दुरजणसल=सोढा दुर्जनसाल, जो धरावरीस का पुत्र था और उमरकोट का स्वामी बना था। अवतारदे=दुर्जनसाल का उत्तराधिकारी, किन्तु मुहता नैणसी की ख्यात मे दुर्जनसाल के पश्चात् राणा खीवरा का जिक्र आता है, पर ग्रन्थकर्त्ता ने यहाँ उसका नाम नही लिया, जब कि खीवरा सोढा से कवि अनभिज्ञ नही है, ग्रथ के अतिम भाग मे दानवीर सोढो के नाम गिनाते समय खीवरे का वर्णन एक दोहे मे किया गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि खीवरा दुर्जनसाल का उत्तराधिकारी न होकर अवतारदे के समकालीन एक प्रसिद्ध दानवीर ही था। थिर=राणा थिरा, जो अवतारदे का उत्तराधिकारी बना। हमीर=राणा थिरा का पुत्र हमीर बडा पराक्रमी था उसी के समय सय्यद सम्मस धाट के इलाके पर चढाई कर के आया था और हिन्दुओ से नौरोजे मागने लगा था। उसके आतक से चारो ओर हाहाकार मच गया। सम्मस स्वय जबरदस्त तात्रिक एव मायावी था, अतः उसको परास्त करने के लिये 'पिथोरा' देव की कृपा से राणा हमीर ही सफल हो सका। हमीर एव सम्मस के बीच भयकर युद्ध हुआ और अत मे राणा हमीर की विजय हुई। हमीर हिन्दू धर्म एव मान मर्यादा के ऊपर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहने वाला विख्यात शासक था। उसने ३०-४० वर्ष तक वेखटके उमरकोट पर राज्य किया था।

३३. थह= तख्त, सिंह का निवास-स्थान। रिव=रवि, सूर्य। जिम=जैसे, समान। प्रतपै=तप रहा है, राज्य कर रहा है। आराण=चढ़ाई, युद्ध।

छंद वेअखरी

आसुर 'समस' जोरवर आयौ।
छिलतै जोम वोम रज छायौ।
अत अनीत सय्यद अहकारी।
धाट पाट लेयण चितधारी ॥१॥[३४]
केहर जेम मुरड़तौ कंधौ।
अळपबुधी माया छक अंधौ।
चढिया सिंध हूंत चख चोळे।
हुबिया दध सातूं हीलोळे ॥२॥[३५]
चाटक नाटक अत प्रोहचाळौ।
आसुर समस करामत ऽवाळौ।
हैवर काठ तणा दळ हालै।
चंचळ काठ गैब सूं चालै ॥३॥[३६]
अत वेनीत रीत तज आदू।
वेपत आयौ करण विवादू।
मुड्ढ बुधी नवरोजा मांगै।
लापर नीत मजादा लागै ॥४॥[३७]
ऐसै छक आयौ असुरारी।
धाट हमीर रांण छत्रधारी।

---

३४. जोम=जोश। वोम=व्योम, आकाश। पाट=तख्त, राज्यसिंहासन।

३५. केहर=सिंह। मुरडतौ=मरोडता हुआ। अलपवुधी=अल्प बुद्धि। हुबिया = प्रचण्ड क्रोध मे प्रयाण किया। दध=उदधि, समुद्र। हीलोळै = कपायमान करते हुए, हिलोरित करते हुए।

३६ चाटक=जल्दवाज, चतुर। नाटक=छल, प्रपच। प्रोहचालौ=पहुँचवाला, शक्तिशाली, समर्थ। हैवर=घोडे। हालै=चलते है। गैव=अदृश्य शक्ति के वल से, स्वत।

३७. आदू=परपरागत। वेपत=धोखावाज, अविश्वसनीय। नवरोजा= नौरोज—मुसलमान शासक हिन्दू राजाओ की स्त्रियो को मनोरंजनार्थ नौ रोज तक वलात अपने महलो मे रखना चाहते थे। लापर=आवारा, वेइज्जत।

३८. छक=सजधज, सैन्यवल। असुरारी=मुसलमान, सय्यद सम्मस।

पूग खबर इळ असुर पसरिया।
सोढ जबर समहर संभरिया ॥५॥[३८]
तद रांणै सब सोढ तेड़ाया।
आवौ वैग असुर धर आया।
आत सबै मिळिया छक भारी।
वप आळोभ्फे वात विचारी ॥६॥[३९]
चचळ रांण 'थिरावत' चढियौ।
'पीथल' पीर तणौ जस पढियौ।
आरत देख 'पिथोरौ' आयौ।
पावन थीया दरसण पायौ ॥७॥[४०]
सब सोढां एह वात सुणाई।
आयौ समस वडौ इनियाई।
हार जीत बे वात हमारै।
सांमधणी पीथल तो सारै ॥८॥[४१]
कयौ पिथोरै ऊपर करसूं।
हूं असुरांण तणौ बळ हरसूं।
तेग संभावौ मूंछां तांणी।
काटौ वैग फौज तुरकांणी ॥९॥[४२]
मदत हुई पीथल फुरमाया।
एतै सोढ मेर भुज आया।

---

३८. पूग = पहुँच कर। समहर = समर, युद्ध। सभरिया = तैयार हो गए।

३९. तेडाया = बुलाये, आमन्त्रित किए। वैग = शीघ्र ही। वप = वपु, शरीर। आलोभ्फे = आलोच्य करके।

४०. थिरावत = थिरा का पुत्र राणा हमीर। पीथल = पिथोरा नामक पीर, जो आज भी उमरकोट के इलाके मे हिन्दुओ का आराध्य देव माना जाता है। आरत = आर्तनाद। पिथोरौ = एक हिन्दू देवता, जिसका स्थान वर्त्तमान पश्चिमी पाकिस्तान मे स्थित है। थीया = हुए।

४१. इनियाई = अन्यायी। बे = द्वि, दो। सारै = सहारे, वश में।

४२. ऊपर करसू = मदद करूँगा, रक्षा करूँगा। हूं = मैं। तणौ = का। तेग = तलवार। मूछा ताणी = मूछो पर ताव देते हुए।

मुगल हिंदु दळ भारथ माथै।
समचै वाग उपाड़ी साथै ॥१०॥[४३]

छंद पद्धरी

ऊपाड़ वाग सोढा अभंग।
जोधार सहीदां करण जंग।
हिंदवांण तुरक भाराथ होय।
वगास वैंग असुरां विलोय ॥१॥[४४]
फैलियौ पमग दळ चहूं फेर।
घमसांण आसुरां लीध घेर।
वज विखम राग सिंधू विसाळ।
झळहळै सोर असमांन झाळ ॥२॥[४५]
हळवळै सूर हुसियार होय।
ललकार मार असुरांण लोय।
कर डकर भीच भिड़िया करूर।
त्रवाळ ठोर करणाळ तूर ॥३॥[४६]
जजाळ कड़क गोळा सजोर।
इळ धड़क त्रास पड़ चहूं ओर।

---

४३. भारथ=सग्राम। समचै=समय पर। वाग=घोड़ो को लगामे। उपाडी=उठाई।

४४. ऊपाड=उठाते हुए, उठा कर। अभग=योद्धा, शूरवीर। जोधार=क्षत्रिय योद्धा। महीदा=सय्यद मुमलमान। विलोय=विलोडित करके।

४५ पमग=घोडे। घमसाण=युद्ध। विखम=विपम, भयकर। झलहलै=प्रज्वलित होकर। सोर=बारुद। असमान=आकाश।

४६ हलवलै=हलचल मचाते हुए। हुसियार=होशियार। लोय=परास्त करते हुए, विध्वंसित करते हुए। डकर=हाक, जबरदस्त ललकार। भीच=योद्धा। करूर=उग्र रूप मे। त्रवाल=नगाडे। करणाल=करनाल, बन्दूक। तूर=तुरही, एक प्रकार का बाजा।

४७ जजाल=एक प्रकार की बडी पतीलेदार बदूक। कडक=जोर की ध्वनि। इल=इला, पृथ्वी। धडक=कपायमान।

वीजळा वळोवळ झड़त वाढ।
कंठीर जूट किरमाळ काढ ॥४॥[४७]
मिळ सोर घोर अंधार मेग।
तर पथर झोर विकराळ तेग।
छंछाळ तीर छूटै छछोह।
लोहाळ भीच ऊंताळ लोह ॥५॥[४८]
रोध्राळ छूट वसुधाळ रेल।
झुडाळ पीत हैं पत्र झेल।
हलकार सार वाजैस हाक।
डडाळ वीर वाजैस डाक ॥६॥[४९]
ऊताळ ग्रीध त्रापै असंख।
पळ मांस खाय घापैस पंख।
उण वखत सोढ हुय चीत एक।
दूठाळ फौज असुरांण देख ॥७॥[५०]
मिळ चयौ पिथोरा आळमोत।
तरवार गैब री वुई तोत।
कट गया उसर वंच्यौ न कोय।
जद रयौ सरण प्रेळाद जोय ॥८॥[५१]

---

४७. वीजला = तलवारें। वाढ = तीक्ष्ण कोर। कठीर = शेर, योद्धा। जूट = जुटकर। किरमाल = तलवार। काढ = निकाल कर।

४८. मेग = मेघ, बादल। पथर = पत्थर। झोर = झकझोर कर। छञ्चाल = फुहारा, झोका। छछोह = शीघ्रता से, द्रुत गति से लोहाल = लोहधारी। लोह = शस्त्र।

४९. रोध्राल = रुधिर। वसुघाल = पृथ्वी पर। रेल = फैलकर। झुडाल = योगिनियाँ, युद्ध की देवियाँ। पत्र = खप्पर। सार = तलवार। डडाल = क्षेत्रपाल। डाक = शिव का एक बाजा, जो युद्ध के समय बजता है।

५०. त्रापै = टूट पडते है। असख = असख्य। पख = मासाहारी पक्षी। चीत = स्मरण कर के। दूठाल = क्रोधी एव समर्थ।

५१. चयौ = क हा। आलमोत = प्रतिपक्षी योद्धा मारे जायँ। तरवार = तलवार। गैब = स्वतः। तोत = तत्र विद्या से। उसर = विधर्मी, मुसलमान। वच्यौ = बचा। प्रैलाद = प्रह्लाद, एक व्यक्ति विशेष।

ऊबरे सरण 'प्रैळाद' आय।
खगधार सैद बीजा खपाय।
धर पड़े 'समस' विद्दा सधीर।
ह्वै जैतखंभ जीतौ 'हमीर' ॥६॥ [५२]

वर अरधसैंस हूरां वराय।
मल्लेंछ धूड मांहो मिळाय।
पौ फतै पाय 'पीथल' प्रताप।
सइदांण मार मेटे संताप ॥१०॥ [५३]

जीतोस रांण 'हम्मीर' जंग।
राखियौ हिंदवां धरम रग।
सब निमे पीर हूंता स्रदार।
ध्रग 'आसकरण' विश्भौस धार ॥११॥ [५४]

स्रापल्ल जात ऐ धार सोय।
करही प्रधांन रांणौ न कोय।
पीथल्ल पोर सूं जोड़ पांण।
राजस्सथांन आयौस रांण ॥१२॥ [५५]

दुहा

अमरकोट अप आवियौ, निज घुरिया नीसांण।
वरस तीस चाळीस विध, ऽयूं तपियौ अमरांण ॥१॥ [५६]

---

५२ ऊबरे = वच गया। सैद = सय्यद। जैतखभ = विजय-स्तभ। हमीर = राणा हमीर।

५३ वर = त। अरधसैंस अर्द्धसहस्र, पाँच सौ। हूरा = अप्सराएँ विशेष, जो मुसलमान योद्धाओ को युद्ध मे वीरगति पाने पर वरण करती हैं। मल्लेछ = म्लेच्छ, मुसलमान। धूड = धूलि। पौ = पहु (स० प्रभु), राजा। सइदाण = सय्यद।

५४. रग = शोभा। हूत = से, सामने। स्रदार = सरदार। ध्रग = धिक्कार। आसकरण = एक सोढा था, जो उस युद्ध मे शामिल नही होने से गद्दार घोषित किया गया और इसकी आल औलाद को कोई भी राणा प्रधान नही बनायेगा, ऐसी प्रतिज्ञा की गई थी।

५५. स्रापल्ल = शापित। राजस्सथांन = राजस्थान, राजधानी। नीसांण = नगाडे। तपियौ = राज्य किया।

५६ घुरिया = गर्जित हुए, नगाडे या वादलो के शब्द को राजस्थान मे घुरना कहते हैं—उदाहरणार्थ 'ग्रह ग्रह घुरै त्रमागला' आदि। वरस = वर्ष। तपियौ = राज्य किया। अमराण = उमरकोट।

पच्छै भूप पधारियौ, धाटपती सुरधांम।
रहियौ कंवर राजवी, निरमळ 'वीसौ' नांम ॥२॥[५७]

छंद वेअखरी

पड़ियौ रांण हमीर धरा पर।
कुळ नायक 'वीसौ' लुघ कवर।
नैनम पड़ी राज सुध नांही।
सो भव जोग इसी गत सांई ॥१॥[५८]
जमरूपी 'दूढौ' जोरावर।
राज लियौ माडे राजेसुर।
'वीसै' हूंत काढियौ विक्खै।
प्रथवी किम भोगै बळ पक्खै ॥२॥[५९]
वरस दसां 'वीसौ' वजवजियौ।
कर घमसांण वसावै कजियौ।
रातां फिरै घोवै खाय रीतै।
जुध 'दूढै' सूं कबुवन जीतै ॥३॥[६०]

---

७. पच्छै = उसके पश्चात्। निरमल = पवित्र, निर्मल। वीसौ = राणा हमीर का उत्तराधिकारी राणा वीसा।

५८ कुलनायक = वंश का स्वामी। लुघ कवर लघु कुमार, बालक राजकुमार। नैनम = बाल्यावस्था, नाबालिगी। भव जोग = होनहार। गत = गति। साईं = स्वामी, ईश्वर।

५९. दूढौ = उमरकोट इलाके का एक अन्यायी क्षत्रिय जिसने राणा हमीर के पुत्र वीसा को नाबालिगी मे देख कर, अनुचित लाभ उठाने की नीयत से उमरकोट पर बलात् अधिकार कर लिया था। माडे = बलपूर्वक, जबरदस्ती से। राजेसुर = राजेश्वर, राजा। विक्खै = दु.ख मे, विपत्ति मे। किम = कैसे। बलपक्खै बलपूर्वक।

६०. वजवजियौ = भर जवान हो गया। घमसांण = सेना, युद्ध, लश्कर। कजियौ = कलह, वैर। घोवै खाय = चक्कर मारना, बुरी नीयत से किसी के इर्दगिर्द मडराते रहना। राजस्थानी मे 'घोई' का अर्थ मुड कर लौटना अथवा किसी छद्म-भाव से आसपास चक्कर काटना होता है। पुन मुड कर आने को घोई खाना कहते हैं। 'घोवै' शब्द घोई का बहुवचन है, पश्चिमी राजस्थान मे प्राय. ऐसा उच्चारण ही किया जाता है, यथा—रोटी का ..

'विसौ' हारियौ पनरै वेळा।
भड़ तोखार तोछ है भेळा।
'वीसौ' राण सोळमी वारी।
आयौ क्रोध करे अवतारी ॥४॥[६१]
अमरकोट दळ मेळे आयौ।
पड़पण तोछौ मन पछतायौ।
लारे 'दूढ' मारवा लागौ।
भै पड़ गयौ खारोड़ै भागौ ॥५॥[६२]
आयौ दळ 'दूढ़ौ' इनियाई।
लावौ चोर न रहै लुकाई।
सरणौ जोय चारणां सासण।
वीरे लायक नही विधूसण ॥६॥[६३]
पातां संगठ मत दै प्रौढा।
दया विचार राजवी 'दूढा'।

... बहुवचन रोटियाँ न होकर रोटैं, कंडी से कडैं, पेटी से पेटैं आदि-आदि। रातै = खाली, रिक्त। जुध = युद्ध। दूढै = दूढा नामक क्षत्रिय, जिसने राणा हमीर के पुत्र वीसा से नाबालिगी बाल्यावस्था मे (जबरदस्ती से) राज्य छीन लिया था। कबुवन = कभी नही।

६१. विसौ = राणा हमीर का पुत्र वीसा। पनरै वेला = पन्द्रह बार। तोखार = तुषार, घोडे। तोछ = तुच्छ, कम। भेला = साथ मे। अवतारी = प्रतिभाशाली, चमत्कारी।

६२. मेल = मिला कर, सामना करते हुए। पड़पण = सामग्री, सामर्थ्य। तोछा = तुच्छ। भै पड गयौ = भयातुर होकर गया। खारोडै = खारोडा नामक देथा गोत्र के चारणो का एक गाँव, जो उमरकोट से ३ मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है। देथा चारणो का मथासरा (उद्भव-स्थल) होने के साथ ही देवलबाई नामक शक्ति का प्रसिद्ध स्थान भी इस गाँव मे है, जहाँ आश्विन शुक्ला अष्टमी को बडा भारी मेला लगता है।

६३. इनियाई = अन्यायी। लुकाई = छिपाये हुए। सरणौ = शरण, आश्रय। सासण = शासन, जागीर। वीरे = वीर। विधूसण = विध्वस करने को।

६४. पाता = चारणो को। सगठ = सकट, दु:ख। प्रौढा = प्रौढ़, दाना, वड़ा आदमी। राजवी = राजवशी।

वीरा लोवड़ि लाज वडाई ।
बोली 'बूट वेहचर' बाई ॥७॥[६४]
निल्लज धूड़ पलै मां नांखी ।
धरियौ क्रोध सगत मन धांखी ।
'दूढावत' नै 'वीका' दांणव ।
भेळा होय नहीं बीयै भव ॥८॥[६५]
क्रोध कियौ महमाय कड़क्की ।
धुजै बोम घण भोम धड़क्की ।
कहियौ 'देवल' राज न करसी ।
मूरख घरे पौतियां मरसी ॥९॥[६६]

दुहौ

'दूढै' हूंता स्राप दे, रूठ हुई सुरराय ।
कर जोड़े असतूत कर, पड़ियौ 'वीसौ' पाय ॥१॥[६७]

---

६४ लोवडि = लौवडो, ऊन को बनी लूगडी विशेष । बूट बेहचर = चारण कुल मे उत्पन्न शक्ति की अवतार बूट वेहचरा आज भी प्रसिद्ध आराध्य देवी के रूप मे पूजी जाती है ।

६५. निल्लज = निर्लज्ज । नाखी = डाल दी । सगत = शक्ति, देवी । धाखी = क्रोधित हुई, विकराल रूप मे हुई । दूढावत = दूढा के वशज । वीका = बीका नामक क्षत्रिय के वशज । वीयै भव = दूसरे जन्म मे ।

६६. महमाय = महाशक्ति । कडक्की = क्रोधित होकर बोली । धुजै = कपायमान होने लगे । बोम = व्योम, आकाश । घण = घनी, अत्यत । भोम = भूमि, पृथ्वी । धडक्की = दहल उठी । देवल = देवलबाई नामक चारणी शक्ति का अवतार मानी जाती है और इसका जन्म पन्द्रहवी शताब्दी मे जैसलमेर जिले के माडवा नामक गाँव मे चारण भल्ला के घर मे हुआ था । उमरकोट के पास खारोडा गाँव मे उनका ससुराल था, जहाँ वह रहा करती थी और आज भी वहाँ पर उनका देवल बना हुआ है, जिसकी पूजा उनके वशज (देथा चारण) सुबह-शाम बड़ी श्रद्धा से किया करते हैं । इस देवलबाई की स्तुति मे रचा हुआ पर्याप्त मात्रा में डिंगल काव्य उपलब्ध होता है । मूरख = मूर्ख । पौतिया = पहुँचते ही, पहुँचने पर ।

६७ दूढै = दूढा नामक एक दुष्ट एव अन्यायी शासक, जिसने वीसा राणा को खदेड़ कर उमरकोट पर कुछ दिन तक अपना आधिपत्य बना रखा था । हूता = से, को । स्राप = शाप, अभिशाप । रूठ = रुष्ट, नाराज । सुरराय = सुरराज्ञी, शक्ति । असतूत = स्तुति । पाय = चरणो मे ।

छद भुजगी

निमो देवला मात 'चांमंड' नांमी।
कळा सोळही धारियां रुद्रकांमी।
तुंही 'आवड़ा' 'खूबडा' आद आई।
प्रथी ताहरा पार संभू न पाई ॥१॥[६८]
तुंही 'नागवी' 'राजवी' देव 'सैणी'।
देवी 'चाळका' बाळका रिद्ध दैणी।
तेंही साह री नाव दरियाव तारी।
देवी भांजिया भीम रा लोह भारी ॥२॥[६९]

---

६८. निमो = नमः नमस्कार, प्रणाम । देवला = देवलबाई नामक शक्ति। चामड = चामुण्डा। नामी = विख्यात । सोल = सोलह । रुद्रकामी = शिवा, पार्वती। आवडा = आवड (उब्बट) देवी चारण जाति मे बडी प्रसिद्ध देवी है, जिसका जन्म ९ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे सिंध प्रान्त मे चारण मामड (मम्मठ) माधावत के घर हुआ था। ये सात बहने थी और अत्यन्त सुन्दर होने के कारण तत्कालीन शासक हमीर सूमरे (मुसलमान) ने इनसे बलात् विवाह करना चाहा, तब इनके पिता और अन्य चारण चुपके से निकल भागे और राजस्थान मे आकर बस गये। तब से आज तक बाद की चारण कुलोत्पन्न शक्तियो ने अपना स्वरूप इतना सुन्दर नही रखा। खूबडा = खूबडा देवी भी चारण जाति मे शक्ति का अवतार मानी जाती है और यह भी विक्रम की ९वी शताब्दी मे हुई थी। आद आई = आदिशक्ति, हिगुलाज देवी। ताहरा = तुम्हारे। सभू = शभु, महादेव।

६९ नागवी = नागबाई एक चारण कुलोत्पन्न प्रसिद्ध शक्ति का अवतार मानी जाती है, जिसके पिता का नाम जोगानद था और गिरनार के राजा माडलिक (१५ वी शताब्दी मे) के समकालीन थी। राजवी = राजबाई नामक देवी का अवतार सोलहवी शताब्दी मे हुआ था। इनके पिता का नाम उदयराज था और सम्राट अकबर के जमाने मे क्षत्रियो को नौरोजे से मुक्त कराने का श्रेय इन्ही को है। पृथ्वीराज राठौड को सहायता-वचन दिया हुआ था, जिसकी आराधना का प्राचीन गीत भी प्राप्त हो गया है, इस प्रकार इस शक्ति का राजपूती शान को उज्ज्वल रखने मे बहुत बडा हाथ था। इसके चमत्कार के बाद अकबर ने नौरोजे लेने बद कर दिये थे। सैणी = सयणी चारणो की एक ओर तो प्रेम-कथा प्रसिद्ध है, दूसरी ओर चारणो मे काछेली शक्ति के रूप मे यह अत्यन्त पूज्य समझी जाती है। इनके पिता का नाम वेदराज था और गोरडियाली (पाञ्चाल देश) मे इसका .

देवी लाय तै भीम नै राज लाधौ।
तैंही खप्परां घात हरभम्म खाधौ।
आई जादमं पीड़ गम्मी अपूठी।
तुंही सेवगां सेवियां लाख तूठी ॥३॥[७०]
सबै चारणी मात नवलाख सारी।
धरा दीजिये दांन में सेव धारी।
दखै रांण 'वीसौ' इसी आरदासा।
अबै मात पूरी 'चिमन्नेस' आसा ॥४॥[७१]

.. जन्म हुआ था। जोधपुर जिले के जुढिया नामक गाँव मे सेणीजी का प्रमुख स्थान है, जहाँ इनका विधिवत पूजन होता है। चालका = चालक नेचो नामक देवी आवडदेवी का ही अवतार मानी जाती है। चालका नामक राक्षस को मारने के वाद चालकनेच कहलाई। इस देवी की स्तुति में बहुत ही सुन्दर डिंगल काव्य उपलब्ध है। रिद्ध दैणी = ऋद्धि देने वालो। साह री नाव दरियाव तारी = जगड् शाह नामक एक व्यापारी जब माल से भरे हुए जहाज के अन्दर छिद्र हो जाने से समुद्र मे डूबने लगा, तो भगवती श्री करनीजी को याद किया। देवी ने तत्क्षण जहाज को बचा कर शाह की जान बचाई थी, इसका विशेष विवरण 'करनी चरित्र' मे ठा० किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य ने दिया है तथा उन्ही के द्वारा रचित स्तुति मे इस तथ्य की ओर इस प्रकार सकेत है :

"भ्रम भ्रम फसी जगसाह तरी। कर वाम पसार उवेल करी।"

भाँजिया = तोड डाले।

७० घात = डाल कर। हरभम्म = एक राक्षस विशेष, जिसका महाशक्ति दुर्गा ने सहार किया था। खाधौ = खाया था। आई जादम पीड गम्मी अपूठी = जैसलमेर के राजा की पीठ मे अदीठ (अदृष्ट) रोग हो गया था, जिसका इलाज कोई भी वैद्य नही कर पाया था। जब भगवती करनीजी की अनुकृपा हुई, तो केवल हाथ के स्पर्श मात्र से वह बिल्कुल ठीक हो गया; ऐसा वर्णन अनेक स्तुति-काव्यो मे मिलता है। सेवगा = सेवक। सेविया = सेवा करने पर। तूठी = तुष्टायमान हुई।

७१. नवलाख = शक्ति के कुल ६ लाख अवतार माने गए हैं, जो 'नवलाख लोहडियाल' कहलाती हैं। सेवधारी = सेवक। दखै = कहता है। आरदासा = (फा० अर्जदाश्त) विनय, स्तुति। चिमन्नेस = चिमनजी कविया (सोढायण के कर्त्ता)।

दुहा

कर असतूत प्रणांम कर, 'वीसै' लियौ व्रदांम।
'देवल' रीझे देत है, अमरकोट ईनांम ॥१॥[७२]
कहियौ देवी मैहर कर, 'वीसा' सांभळ वात।
वळ थारा अरदातरा, मुढ 'दूढौ' तिण मात ॥२॥[७३]
लाग पगे वर सुद्ध ले, अमर राज आसीस।
कायम राजस तूं करे, सगत क्रपा तो सीस ॥३॥[७४]

छंद भुजंगी

अबै ऊठियौ जोध हम्मीर ऽवाळौ।
वदै सूरमा सोढ दोसै वडाळौ।
तुरां हाकिया वैग केवांण तांणी।
पड़ै सत्रवां मार मांगै न पांणी ॥१॥[७५]
भगौ 'दूढवौ' रांण सेना भगाई।
वळे कोट पैठौ तरां चोट वाई।
लगौ सेल पूठै ग्रही वाग लळियौ।
वैरी पाड़ 'वीसौ' अती वैग वळियौ ॥२॥[७६]

---

७२. व्रदाम = वरदान। रीझे = प्रसन्न होकर। ईनाम = इनाम, पुरस्कार।

७३. मैहर = महरबानी, कृपा। साभल = श्रवण करना, सुनना। थारा = तुम्हारा। अरदातरा = अरियो (शत्रुओ) के लिये दात सदृश। मुढ दूढौ तिण मात = मूर्ख दूढा प्रतिपक्षी वीसा के दल रूपी दातो के सम्मुख तृण मात्र के सदृश है।

७४. वर = वरदान। सुद्ध = शुद्ध, शुभ। आसीस = आशोर्वाद। तो सीस = तेरे शिर पर।

७५ जोध = योद्धा। हम्मीरवालौ = राणा हमीर का पुत्र वीसा। वदै = कहते हैं। दीसै = दिखाई देता है। वडालौ = वडा, भीमकाय। तुरा = घोडो को। वैग = शीघ्र ही। केवाण = कृपाण, तलवार। ताणी = खीची।

७६. दूढवो = दूढा नामक अन्यायी शासक। वले = मुडकर, लौटने पर। तरा = तव। वाई = चलाई। पूठै = पीठ मे। ग्रही वाग = लगाम पकड़ते हुए। ललियौ = झुक गया, फिर गया। पाड = गिरा कर। अती = अत्यन्त। वलियौ = वापिस लौट गया।

छुटी रांण वीणी तुरां घूम छायौ।
भगौ तेथ 'दूढ़ौ' वेगम्मौ भ्रमायौ।
भरे घाव मिस्टां करे चूक भारी।
मुवौ रांण 'दूढौ' पछै सेन मारी ॥३॥[७७]
करे जैंत 'वीसै' लियौ अम्रकोट।
महाजोध रांणौ हुवौ मन्न मोटं।
वदै 'चिम्मनेस' धिनो धिन्न 'वीसा'।
सबै भोम लीधी तपे छत्र सीसा ॥४॥[७८]

दुहा

'वीसौ' अट्ठांणूं वरस, ऊ तपियौ अमरांण।
पाट पती व्रन पाळगर, रहियौ 'तेजल' रांण ॥१॥[७
'तेज' 'कांन' 'वीसै' तणा, कहियै राजकंवार।
वरदाई सोढा वडा, तिण हंदौ विसतार ॥२॥[८०]
'तेजल' रै जलमे सुतन, 'कूंपौ' राजकवार।
'कूंपै' रै 'चांपौ' कंवर, जोरावर जोधार ॥३॥[८१]

---

७७. छुटी रांण वीणी तुरा घूम छायौ = राणा ने अपनी कलाई छोडी अर्थात् घोडे की लगाम ढीली की, तुरन्त ही रणागण मे घोडो की धूम मच गई। वेगम्मौ = हक्का-बक्का-सा। भ्रमायौ = दिक् भ्रमित। मिस्टां = (?)

७८. जैंत = जीत, विजय। अम्र = उमरकोट। मन्नमोट = मोटमना, दानवीर। छत्र सीसा = शिर पर छत्र धारण करना।

७९ अट्ठाणूं = अठ्यानवे (९८)। पाटपती = राज्याधिकारी। व्रन = चारण आदि ६ वर्ण माने गये है। पालगर = पालन-पोषण करने वाला। तेजल = वीसा का उत्तराधिकारी राणा तेजसी।

८० कान = राणा तेजसी का छोटा भाई कान्हा, परन्तु मुहता नैणसी की ख्यात मे कान्हा को तेजसी के १२ पुत्रो मे से एक पुत्र माना है।

८१. कूपौ = राणा तेजसी का पुत्र, किन्तु इसका नैणसी की ख्यात मे नाम ही नही मिलता है और तेजसी का उत्तराधिकारी चापा को माना है, जो इस ग्रथ के अनुसार तेजसी का पुत्र नही, बल्कि पौत्र था। चापौ = कूपा का पुत्र चांपा।

'हापौ' तिण गादी हुवौ, जा सुत 'रूपौ' जांण।
नर जलमे ता सुत 'नबौ', 'वैरौ' ताय वखांण ॥४॥[८२]

कवत

वैरावत वर वीर, भूप 'पंचांण' भणीजै।
'देवौ' जगदातार, गढां गाजणौ गिणीजै।
'रायब' अनवी रूक, सांक दंणौ जग सारै।
'वांकौ' जोध वखांण, मांण अरियांणां मारै।
धजबध च्यार मोटा धड़ा, कमण ईढ ज्यै सूं करै।
वाखांण 'चिमन' दाखे विगत, सोढौ 'पंचायण सिरै ॥१॥[८३]

'पाचै' रौ पाटवी, वडम 'भाखर' विगताळौ।
'सूरदास' ता सुतन, कळाधारी किरणाळौ।
'सूरदास' सुत्तन्न, भूप 'रासौ' वडभागी।
'जगौ' ताय सुत जोध, रांण 'गज्जन' अनुरागी।

---

८२. हापौ = राणा चापा के गागा, हापा एव सूरजमल आदि पुत्रो मे पाटवी तो गागा ही था, जिसके १० पुत्र थे, किन्तु प्रस्तुत ग्रथ मे हापा एव उसके वशजो का ही मुख्यतः वर्णन है। रूपौ = राणा हापा का उत्तराधिकारो। नबौ = राणा रूपा का उत्तराधिकारी, जो वडा ही प्रसिद्ध था, उमरकोट इलाके मे आज भी नबा के वशज 'नबा' कहलाते हैं। वैरौ = राणा वैरसी, जो नबा का पाटवी पुत्र था, और इसके चार पुत्र थे, जिनके नाम क्रमश. पचायण, देवसी, रायसिह एव वाका थे।

८३ गढा गाजणौ = गढो को ढाहने वाला, महान् योद्धा। रायब = रायसिंह, वैरसी का तृतीय पुत्र। रूक = तलवार। साक = शका, त्रास, भय। वाकौ = वैरसी का चतुर्थ पुत्र वाका। अरियाणा = शत्रुओ को। धजबध = प्रभुत्त्वशाली, ध्वज फहराने वाले। धडा = किसी गोत्र मे प्रसिद्ध व्यक्ति के पीछे उसके नाम से पुकारा जाने वाला परिवार-समूह। कमण = कौन। ईढ = प्रतिस्पर्धा, बराबरी। वाखांण = कीर्ति।

८४. पाचै रौ = पचायण का। पाटवी = सबसे वडा पुत्र, जो राज्य का अधिकारी होता है। वडम = वडा। भाखर = पचायण सोढे का बडा पुत्र। विगतालौ = प्रसिद्ध। सूरदास = सोढा भाखरसी का पुत्र तथा पचायण का पौत्र। सुतन = पुत्र। किरणालौ = कातियुक्त, प्रभावशाली। सुत्तन्न = सुत, पुत्र। रासौ = रायचद अथवा रायसिह, जो सोढा सूरदास का पुत्र तथा भाखरसी का पौत्र था। इसी रायचद का पुत्र वीर जगमाल हुआ। जगौ = सोढा जगमालजी, जिनका नाम इस ग्रथ के प्रारभ मे लिखा है—'अथ ...

'गजसींग' धीग मालम गढां, पढां कवी जस प्रग्घळा।
'जगमाल' क्रीत जांणै जगत, आठ विरद्दां ऊजळा ॥२॥[८४]

दुहा

'जगौ' महाभड़ जोरवर, संकौ दैण त्रसींग।
चाव वडै 'रायचंद' रा, सूरा पण 'गजसींग' ॥१॥[८५]
कंवर 'जगौ' राजस करै, नरियद गोधानेर।
'गजन' भ्रात मौटै गजै, जंग करण अर जेर ॥२॥[८६]
प्रज फूलां छाई प्रथी, निरमळ सुक्ख निराट।
इतै सराई आविया, धन लोडण इळ धाट ॥३॥[८७]
सराई [ह] घोड़ां सठां, लीध सुरभ्भै लोड़।
तौ वाहर 'रायचद' तण, मिळै 'गजौ' कुळ मौड़ ॥४॥[८८

छंद चौपई

सज दळ लूंबै धाट सराई। आया रांण तळै इनियाई।
सूरज ऊगै वगत सवेरी। घण घोड़ां चड़ गायां घेरी ॥१॥[८९]

... सोढे जगमालजी री सोढायण ग्रथ लिखतै' अर्थात् उनके चरित्र-निरूपण को प्रधान लक्ष्य मान कर सोढो का पिछला इतिहास वर्णित किया गया है। गज्जन = गर्जसिह सोढा, जो उक्त जगमालजी का अनुज था और वह भी बड़ा वीर पुरुष था। धीग = बहादुर, योद्धा। प्रग्घला = खूब। क्रीत = कीर्ति। आठ विरद्दा ऊजला = क्षत्रियो को दिये जाने वाले कीर्तिप्रद आठ ही विरुदों मे उज्ज्वल तथा शोभनीय।

८५. जोरवर = जबरदस्त। त्रसीग = महान् योद्धा। चाव = प्रसन्नता, उत्साह। सूरापण = शौर्य।

८६ नरियद = नरेन्द्र, राजा। गोधानेर = गोधियार नामक गाँव, जो आज भी इसी नाम से पुकारा जाता है। यह गाँव उमरकोट से करीब ३५ कोस पश्चिम की तरफ स्थित है। गजन = गर्जसिह, वीर जगमाल का अनुज। मोटै गजै = बडे पैमाने पर। अर जेर = शत्रुओ को परास्त करने वाला।

८७. प्रज = प्रजा। निराट = परिपूर्ण, बेखटके, स्वस्थ। सराई = बलोच जाति के मुसलमान, जो लूटमार किया करते थे। धन = गौधन। लोड़ण = घेर कर जबरदस्ती से ले जाना।

८८. सठा = साठ। सुरभ्भै = सुरभियो, गायो। लोड = घेर ली। वाहर = छीनी हुई अथवा चोरी गई सम्पत्ति को वापिस लाने के लिये पीछा करना।

८९. लूंबै = घेरा डालना, छा जाना। तलै = तलहटी मे। वगत = वक्त, समय। सवेरी = सवेरा, प्रभात। चड = चढकर।

के ग्वाळा फरियादां करै। सांम 'गजा' बैठां किम सरै।
बोले खार वचन इक बाई। लजियाहीणी कळै लगाई ॥२॥[६०]
सो ग्रहकार वचन सांभळियौ। ज्यूं 'गजसींग' चड़े ग्रळवळियौ।
हूकळ कळळ बोदळी हैवर। कमरां भीड़ चड़े तद कंवर ॥३॥[६१]
पूगौ वाहर रीस ग्रपारां। भागां केम, लजै व्रद भारां।
सज वाहर धाड़ेत सराई। चौड़ मिळ समसेर चलाई ॥४॥[६२]
वेलौ सुणौ 'गजौ' इम बोलै। तांण मूछ केवाण स तोलै।
छत्री मरै धेन रज छायां। वरै ग्रबछरा करै वधायां ॥५॥[६३]
कायर हुय भागै भड़ केता। जाय पड़ै परळागत जेता।
सूर हुवौ खग पूर संभावौ। इण ग्रवसांण ग्रमरपुर ग्रावौ ॥६॥[६४]
'रासावत' दाखै रजपूतां। रैसी लाज हमैं रिण रूतां।
ग्रौ ग्रवसांण दियौ ग्रवतारी। भिड़िया जोध कटक सूं भारी ॥७॥[६५]

---

६०. फरियादा = फरियाद, ग्रार्तनाद। साम = , रक्षक। किम सरै = कैसे निभेगी, कैसे पार पडेगो। खार = खारे, कटु। बाई = धिया, बाला। लजियाहीणी = लज्जाहीन। कलै = कलह।

६१. ग्रलवलियौ = रण के लिये ग्रत्यत ग्रातुर, चचल, स्फूर्तिमान। हूकल = हुकार। कलल = कलहल। बोदली = घोडो की एक जाति विशेष। हैवर = हयवर, घोडे। भीड = कस कर।

६२ केम = कैसे। व्रदभारा = विरुद का भार। धाड़ेत = धाडवी, डकैत। समसेर = शमशीर, तलवार।

६३. वेली = मित्र, साथी। ताण मूछ = मूछो पर ताव देकर। छत्री मरै धेन रज छाया, वरै ग्रवसरा करै वधाया = यदि गोधन की रक्षार्थ ग्रौर उन गायो के खुरो से उडी रज मे कोई क्षत्रिय ग्राततताइयो से युद्ध करता हुग्रा मारा जाता है, तो उसे सीधा स्वर्ग प्राप्त होता है तथा ससार मे उसका ग्रमर यशोगान होता है, ऐसी मान्यता है। ग्रवछरा = ग्रप्सरा। वधायां = (स० वर्द्धापन) वधावा।

६४. केता = कितने ही। परलागत = प्रलयगति मे। ग्रवसाण = ग्रवसर। ग्रमरपुर = स्वर्ग।

६५ रासावत = रासा (रायचंद) का पुत्र ग्रर्थात् गर्जसिह। दाखै = कहता है। रिण रूता = रणभूमि मे जूझने पर। ग्रवतारी ईश्वर, इष्टदेव। जोध = योद्धा। कटक = सेना।

छंद पद्धरी

अवसांण दीध गर्जसिंघ अेम।
जोधार होय हुसियार जेम।
कर ग्रही सार संका न काय।
पूतार सोहड़ां अमल पाय ॥१॥ [९६]

वाकार सूर वैगास वेग।
तोखार भेळ जूंझार तेग।
असवार साठ वागां उपाड़।
रजपूत लड़ै चौगांन राड़ ॥२॥ [९७]

ऊपाड़ वाग खोसा अधीर।
सांमहा सोढ जूटा सधीर।
बंदूक बोळ छूटास बांण।
अणपार नाग वूठास आंण ॥३॥ [९८]

ऊछळे आग दारू अपार।
आसाढ मेग रजनी अधार।
घड़कंत नाळ धूंवास धोर।
जाजळीमांन असुरांण जोर ॥४॥ [९९]

हुंकार धार मूछांस हाथ।
भंकार सबद ऐसौ भाराथ।
तरवार चक्र उडुंस तुंड।
खोसांण कटक ह्वै खड-खड़ ॥५॥ [१००]

---

९६. अवसाण = मौका, अवसर। अेम = इस प्रकार। सार = तलवार। पूतार = जोश दिलाते हुए। सोहडा = सुभटो को, शूरवीरो को। अमल = अफीम रस।

९७. वाकार = प्रोत्साहित कर, जोश दिलाते हुए। तेग = तलवार। चौगान = मैदान। राड = युद्ध।

९८. खोसा = लूट-खसोट करने वाले, डाकू। सामहा = सामने। बोल = गोलियाँ। वूठा स = बरसे, वृष्टि हुई।

९९ ऊछले = उछल रहे है। दारू = बारूद। मेग = मेघ, बादल। घड़कत = जोर की ध्वनि कर रही है। नाल = बंदूक। जाजलीमांन = जाज्वल्यमान।

१०० भकार = गम्भीर उद्घोष। भाराथ = युद्ध मे। उडुंस = उड़ रहे हैं। तुड = कटे हुए शिर। खोसाण = लुटेरे, डकैत।

ऊछळै रगत धारा स अेम।
जांणंक नीर पाहाड़ जेम।
जोगणं छोण घापैस जोर।
ठहकिया डाक त्रंबाक ठोर ॥६॥[१०१]
ताळ पत्र पूरै स वीर।
नोलाज नार होळीक नीर।
ऊतरै ग्रीध टोळा स आय।
जंजाळ बीक भख लेर जाय ॥७॥[१०२]
वारंग हाथ धारै व्रमाळ।
भरथार चीतवै भाळभाळ।
धुरजटा छटा गणजूथ धाय।
आखाड़ बीच ऊभौस आय ॥८॥[१०३]
सरवड़ै मुंड ले ले सचाळ।
माहेस करत है रुंडमाळ।
तड़फड़ै लोथ केतोक ताळ।
खळहळै खून अवनी स खाळ ॥९॥[१०४]
इण तरै जंग हुय जांम एक।
उण समै सूर पड़िया अनेक।

---

१०१. रगत = रक्त। जाणक = मानो। पाहाड = पहाड, पर्वत। जोगणं = योगिनियाँ, युद्ध की देवियाँ। छोण = श्रोणित, रक्त। ठहकिया = जोर से बजने लगे। डाक = महादेव का युद्ध का बाजा। त्रबाक = त्रबक, नगाडे।

१०२. वैताल = वीर वैताल, जो एक प्रकार की भूत गति मे माने जाते हैं। नीलाज = निर्लज्ज। होलीक नीर = होली के अवसर पर पिचकारियो आदि से पानी की गेर रमना। बीक = (?)।

१०३. वारग = अप्सरा। व्रमाल = वरमाला। भरथार = भरतार, पति। भाल भाल = देख-देख कर। धुरजटा = धूर्जटी, महादेव। जूथ = यूथ, समूह। आखाड = युद्ध।

१०४. सरवडै = दौडते है। सचाल = शीघ्रता से। माहेस = महेश, शिव। ताल = देर, समय। खलहलै = खल-खल करती हुई। खाल = नाले।

१०५ जाम = याम, प्रहर। पडिया = काम आए, मारे गये।

दूठाळ दोयणां मार देत।
खगधार पड़ै 'गजसींग खेत ॥१०[१०५]
भड़ विप्र हेक पड़ियौ भाराथ।
समसेर दोय धांधल्ल साथ।
लेखौ न कोय दाखूं अलेख।
इण तरै सूर पड़िया अनेक ॥११॥[१०६]
परबतौ भीच रिणखेत पोढ।
सुरथांन गयौ गजसिंघ सोढ।
तुरकांण जीत वळिया स ताय।
जीतिया सराई घरां जाय ॥१२॥[१०७]

दुहा

पड़ियौ 'गज्जन' अेण पर, हुई सोढ दळ हार।
सराई [ह] अत जोर सू, जीत वळे जोधार ॥१॥[१०८]
सोढ 'गजन' पौहतौ सुरग, जका सुणी 'जगमाल'।
उण वेळा ऊसस्सियौ, सराइयां कुळ साल ॥२॥[१०९]

---

१०५. दूठाल=दुष्ट, विकट। दोयणा=दुर्जन, शत्रु। खेत=रणक्षेत्र।

१०६ विप्र हेक=एक ब्राह्मण भी उस युद्ध मे काम आया था। धांधल्ल=धाधलजी राठौड के वशज धाधल कहलाते हैं। स्मरण रहे, मूल प्रति मे यह शब्द 'धोधल' लिखा हुआ है, जिसका अर्थ होता है धोधा सोढा के वशज, किंतु उपर्युक्त युद्ध मे प्राय सभी सोढे ही थे, केवल एक ब्राह्मण तथा दो धांधल (राठौड) थे—ऐसा ही सकेत मालूम पडता है। इस प्रकार धोधल को 'धाधल' मानना ही समीचीन जान पडता है। दाखू=कहूँ।

१०७. परबतौ भीच=परबतसिंह नामक बहादुर सोढा अथवा पर्वत के सदृश बहादुर वीर गजसिंह, यहाँ दोनो ही अर्थ लागू हो सकते हैं। पोढ=शयन करना, सो जाना। सुरथान=सुर-स्थान, स्वर्ग। तुरकांण=तुरक, मुसलमान। वलियास=लौट गये। ताय=तहाँ।

१०८. गज्जन, गजन=गजसिंह। अेण पर=इस पर।

१०९. पौहतौ=पहुँचा। ऊसस्सियौ=क्रोध एव शौर्य मे उमड़ पडा। साल=चुभन, खटक।

तेड़ायौ परधांन तद, दळ सल 'ईसरदास'।
खोसां झगड़ो खाटियौ, बांधे कड़ वांणास ॥३॥[११०]
बंधव खाय बळोचिया, जीत गया रिण जंग।
वैर लियां नह वीर रौ, पिछमी उदै पतग ॥४॥[१११]

कवत

जोस धिखे 'जगमाल', तांम परधांन तेड़ाया।
'ईसर' जिसा अवीह, उदै दित होतां आया।
परधानां पूछियौ, अेह अवसांण उपावौ।
जोवौ हेरू जाय, लाख विध खब्बर लावौ।
तिणवार भूप 'रासा सुतन', खत्री धरम पंथ खेलियौ।
जोरवर जोध 'ईसर' जिकौ, मोहर हेरू मेलियौ ॥१॥[११२]
वाखासर अणबीह, गयौ 'ईसर' गाढांगुर।
बाळोचां बोलाय, एम दाखियौ अवस्सर।
सराइयां सामठा, फेर हालौ इकफेरा।
जो खोसां सहजीत, अबै हालौ आघेरा।
वाकार सोढ पाछा वळौ, किरमर बांधे फौज कर।
इकवार धाट हालौ उलट, जांणू खोसा जोरवर ॥२॥[११३]

---

११०. ईसरदास=सोढा जगमालजी की सेना का प्रधान। दल सल=सेना एवं शस्त्र युक्त. अधिक सेना वाला। खोसा=लुटेरो ने। खाटियो=निश्चित किया। कड=कटि, कमर। वाणास=तलवार।

१११. बलोचिया=बलोच जाति के मुसलमान, जो सराई भी कहलाते है। वीर=बधव, भाई। पतग=सूर्य।

११२. धिखे=क्रोध मे आगबबूला होकर। ताम=तब। अवीह=निर्भय। दित=आदित्य, सूय। अह=ऐसा। हेरू=पीछा करने वाले। खब्बर=खबर, सूचना। रासा सुतन=रामा (रायचद) का पुत्र जगमाल। पथ=पथ, मार्ग। मोहर=आगे। मेलियो=भेजा।

११३. वाखासर=मारवाड मे साँचोर परगने का एक गाँव, जो बहुत प्राचीन एव प्रसिद्ध है। गाढागुर=वीराधिवीर। वालोचा=बलोचो को। दाखियो=कहा। अवस्सर=अवसर, अवश्य ही। सामठा=समस्त। इकफेरा=एक बार। जो-यदि। सहजीत=सर्व विजयी। आघेरा=आगे, थोड़ी दूर। वाकार=ललकार कर। किरमर=तलवार। उलट=पीछे मुड़ कर। जोरवर=शूरवीर।

दुहा

सांभळ वचन सराइयां, बोल लगा खग बांण।
'जोगी' 'भोगी' जोरवर, मुंड छेबै असमांण ॥१॥[११४]
पौरस भरियौ 'कापड़ी', धिख धरियौ रिणधीर।
जोरावर 'धीनै' जिसा, कोपै महा कंठीर ॥२॥[११५]

गाथा

सह ऊठे कर क्रोध सराई।
बेली परगै वेग बुलाई।
तत्खिण मां भ्रत जात तेड़ाई।
लसकर मेळै करण लड़ाई ॥१॥[११६]
सोरठ देस हिलोहळ सांधौ।
इळ दिखणाद माळवौ आधौ।
बळ कर लूट लियौ सिंध बाधौ।
खोसां माल मुलक रौ खाधौ ॥२॥[११७]
नर किण हूंता निमिया नांईं।
करै हिंदवां सक न कांईं।
सो गत गरभ न राखै सांई।
मरसी केम धाट रै मांईं ॥३॥[११८]

---

११४. खगबाण = तलवार अथवा बाण के समान। जोगी = एक बलोच डाकू का नाम। भोगी = एक बलोच डाकू विशेष। मुड = शिर। छेबै = स्पर्श करते हैं। असमाण = आसमान, आकाश।

११५. पौरस = पौरुष। कापडी = कापडीखान, बलोच डाकुओ का एक सरदार। धिख = क्रोधित होकर। धीनै = धीना नाम का भी एक बलोचो का डाकू सरदार था। महा कठीर = शेर के सदृश बहादुर।

११६. प्रगै = प्रजा, अपने अधीनस्थ जन-समुदाय। ततखिण मां = तत्क्षण मे। भ्रत = भ्राता, भाई।

११७. सोरठ = सौराष्ट्र। हिलोहल = समुद्र। इल दिखणाद = दक्षिण की धरती, दक्षिणी भारत। बाधौ = सपूर्ण।

११८. निमिया = झुके, नतमस्तक हुए। नाईं = नही। कांईं = कुछ भी, लेश मात्र भी। गरभ = गर्व, अभिमान। साई = ईश्वर। मांईं = अंदर, मे।

झिळिया दळ रैंहमांण मनायौ।
एकूकौ सत सत सै आयौ।
पड़पण खाधौ माल परायौ।
फतै हुसी काजी फुरमायौ ॥४॥[११९]

छंद भुजंगी

चढै 'कापड़ीखांन' मैदांन चालै।
झिलै कूदतौ वाज स्रिग्गांण झालै।
भलै मांकड़ै मांड पल्लांण 'भोगी'।
जितै ताजणी खैंग कूदाय 'जोगी' ॥१॥[१२०]
'धुरीखांन' चढ्ढै अबल्लक्ख धज्जूं।
वहै पंथ नासा मनूं नाद वज्जूं।
चगी वाह तोखार 'धीनार' चढ्ढै।
गिणौ कूदतौ डांण उड्डांण गढ्ढै ॥२॥[१२१]
चढै पांचसौ झीकरै वेढ चाळा।
वळै दूसरा खांन साथे वडाळा।
सवस्सव्व घोड़ां मिळै साथ सूधा।
वहै वाट खैंगां थरक्कै वसूधा ॥३॥[१२२]

---

११९ रैंहमाण = रहमान। एकूकौ = एक-एक। सत सत सै = एक-एक योद्धा सात-सात के बराबर शौर्य मे छिलता हुआ।

१२०. झिलै = शोभित हो रहा है। वाज = घोडा। स्रिग्गाण = मृग, हरिण। झालै = पकड लेता है। माकडै = घोडो की एक जाति विशेष। पल्लाण = घोडे की पीठ पर रखी जाने वाली काठी। ताजणी = घोडो की एक प्रसिद्ध जाति, जिसे ताजी कहते है। खैंग = घोडे।

१२१ धुरीखान = एक लुटेरा बलोच मुसलमान। अबल्लक्ख = अबलख जाति का घोडा विशेष। वज्जू = वज, घोडा। नासा = नासिका। मनू = मानो। नाद = गर्जना। चगी वाह = अच्छी घोडी। धीनार = लुटेरा बलोच विशेष। डाण = सलफ, छलाग। उड्डांण = उडान। गढ्ढै = दुर्ग, गढ।

१२२. झीकरै = टुकडे-टुकडे करना, चूर-चूर कर देना। वेढ = लडाई, भिडन्त। चाळा = उत्पात। वडाळा = बडे-बडे। सवस्सव्व = सौ सौ। वसूधा = वसुधा, पृथ्वी।

मिळै साथ केता चलै मक्कड़ांणी।
जिकै जोर वाळा महा जम्म जांणी।
फेरू मुल्लतांणी घणा जोस फाबै।
तिकां भाळ दीठां मनूं काळ ताबै ॥४॥[१२३]
वळै आरबी काबली जोध वका।
सबै साथ दीठां दुनी खाय संका।
इसा पांचसै हैवरां धाट आया।
खोसां देस रा माल उज्जाड़ खाया ॥५॥[१२४]
अबै कोटसल्लांम सूं कोस ऊणा।
देखे सांणे ऐसा फिरै नार दूणा।
हवै गांम 'जग्गा' तणै मत्त हालौ।
चवै खांन 'सादूळ' रै देस चालौ ॥६॥[१२५]

दुहा

उप सुगन्न दीठा उसर, पाछा वळ पछताय।
संकिया गोधानेर सूं, जिकै भोरीलै जाय ॥१॥[१२६]
भोरीलौ तड़ भेळियौ, खोसां कर अत खोंत।
दुरमत अंध न देखवै, मसतक आई मौत ॥२॥[१२७]

---

१२३. मक्कडाणी=घोडो की एक जाति विशेष। जम्म जाणी=यम स्वरूपी। फेरू=फिर। मुल्लताणी=मुल्तानी घोडे। भाल दीठा=ललाट की ओर देखने से। काल ताबै=काल स्वरूपी।

१२४. आरबी=अरबी जाति के घोडे। काबली=काबुली घोडे।

१२५. कोटसल्लाम=सलामकोट, यह वर्त्तमान पश्चिमी पाकिस्तान मे उमरकोट से करीब ४० कोस पश्चिमोत्तर मे बसा हुआ है। ऊणा=आधा। साण=शकुन। नार=नाहर। दूणा दुगुने। मत्त हालौ=मत चलो। चवै=कहते हैं। सादूल रै देस=शादूल गोत्र के सोढे शिवराज के क्षेत्र मे, शिवराज सोढा भोरीला एव चेलार (उमरकोट इलाका) नामक गाँवो का स्वामी था।

१२६. उपसुगन्न=अपशकुन। उसर=असुर, मुसलमान लुटेरे। गोधानेर= गोधियार नामक गाँव, जहाँ वीर जगमाल रहा करता था, यह गाँव आज भी इसी नाम से स्थित है तथा सलामकोट के पास मे ही बसा हुआ है।

१२७. भोरीलौ=एक गाँव का नाम है, जो सलामकोट के पास मे स्थित है तथा....

घण घोड़ां घण घेरियौ, मुणियौ 'सिवै' सादूळ।
वाहर चढ़ियौ वीरवर, मेछ गमण जड़ मूळ ॥३॥[१२८]
'सिवौ' रयौ रिणखेत सज, मुड़िया नहीं मळेछ।
अेतै 'ईसर' आवियौ, पायक नायक पेछ ॥४॥[१२९]

छंद बेअखरी

आयौ 'ईसर' करे ऊतावळ।
वंग सजौ जोधार वंगागळ।
'ईसर' 'जगौ' आळोझ उपावै।
तिण वेळा भ्रत सोय तेड़ावै ॥१॥[१३०]
'पांचा' 'देवा' वड प्रोहचाळा।
'रायब' 'वाका' विरद रुखाळा।

हिन्दुत्व का पुजारी शिवराज सादूल इसी गॉव का निवासी था। तड=तडके, सवेरे। भेलियौ=लूट-खसोट की। खोसा=लुटेरो ने। खोत=लगन, तबीयत। दुरमत=दुर्मति, मूर्ख। अध=अन्धा, मदान्ध। मसतक=मस्तक।

१२८ घण=मवेशी गोधन। सिवै सादूल=शादूल गोत्र का सोढा शिवराज, जो चेलार (उमरकोट इलाका) नामक गाँव का निवासी था। इसके पिता का नाम कुशलसिह था तथा गायो की रक्षा करते-करते बलोच लुटेरो की भिडत मे शिवराज सोढा काम आया था। मेछ=म्लेच्छ, मुसलमान। गमण=मिटाने के लिये, नष्ट करने को। जडमूल=जडामूल से।

१२९ मलेछ=म्लेच्छ, बलोच डाकू। ईसर=वीर जगमाल का सेनापति राठौड ईसरदास। पायक नायक=दलपति, सेनानायक। पेछ=प्रेक्ष्य, देखते हुए।

१३०. वेंगागल=घोडे। जगौ=वीरवर जगमाल सोढा। आलोझ=विचार-विमर्श। भ्रत=भाई, बघु। सोय=समस्त।

१३१. पाचा=सोढा वैरसी का पाटवी पुत्र पचायण, जिसके वशज पाचा अथवा पचायणोत कहलाते हैं। देवा=सोढा वैरसी नवावत का द्वितीय पुत्र देवीसिह, जिसके वशज देवा सोढा कहलाये। वड प्रोहचाला=वड़े पराक्रमी, अत्यत शूरवीर। रायब=सोढा वैरसी का तृतीय पुत्र रायचद अथवा रायसिह, जिसके वशज रायब कहलाये। वाका=वैरसी नवावत का चतुर्थ पुत्र वाका, जिसके वशज वाका कहलाये। रुखाला=रक्षक।

'रिड़मल' 'रुगा' वडा राजेसुर।
आया सांभळ वात अवस्सर ॥२॥[१३१]
भ्रात अनेक जोरवर भारी।
सब ही आया वैर संभारी।
है 'घाघल' परधांन हठाळा।
'हिंगोळजा' दिपियासर वाळा ॥३॥[१३२]
सीया पणै नहीं समवडिया।
खत्री 'दुहट' बिया 'खावडिया'।
'बायडमेरा' तेग बहादर।
'भाटी' 'चवांण' आविया सभर ॥४॥[१३३]
अबै सोढ वाखाण उचारू।
वड छोटा सब ही विसतारूं।

---

१३१. रिडमल=राणा तेजसी वीसावत के १२ पुत्रो मे से रिडमल (रणमल्ल) भी एक पुत्र था, जिसके वंशज रिडमल कहलाये। डिंगल भाषा मे 'ण' का 'ड' उच्चारण बन जाता है, यथा हनुमान का 'हड मान' रणमल का रिडमल आदि-आदि। रुगा=रघुनाथ नामक प्रसिद्ध सोढा के वशज रुगा कहलाये।

१३२. सभारी=स्मरण करते हुए, तत्परतापूर्ण। घावल=राठौडो की एक शाखा, जो वीरवर पाबूजी के पिता धाधलजी से बनी थी। हठाला=हठीले, वीर। हिंगलोजा=हिंगुलाज पर्वत-क्षेत्र के निवासी क्षत्रिय अथवा हिंगुलाज देवी (आदिशक्ति) के नाम पर हिंगलाज नामक व्यक्ति हो, जिसके वशज। दिपियासर=उमरकोट इलाके मे स्थित देपासर नामक एक गाँव।

१३३. सीया=राव सीहाजी के वशज, राठौड क्षत्रियो को एक शाखा। समवडिया=समकक्ष, बराबरी के। खत्री=क्षत्रिय। दुहट=राठौडो का एक गोत्र। खावडिया=पारकर इलाके मे खावड एक प्रदेश है, जहाँ के राठौड खावडिया कहलाते हैं—जैसे घाट के घाटेचा, माड (जैसलमेर) के माडेचा आदि-आदि। बायडमेरा=बाडमेर के निवासी बाड़मेरा राठौड। यद्यपि बाडमेर का नामकरण तो बाहड़राव परमार के नाम पर हुआ था, किन्तु बाद मे राठौडो का आधिपत्य अधिक समय तक रहने से 'बाडमेरा' केवल राठौडो के लिये ही प्रयुक्त होता है। भाटी=यादव क्षत्रिय। चवाण=चौहान। सभर=तैयार होकर।

१३४. वड=बडे। विसतरूं=विस्तार से वर्णित करता हूँ।

सोढ तणी है जेती साखां।
दीरघ लघू जोड़ कर दाखां ॥५॥[१३४]

दुहौ

सारा सोढ सिरोमणी, जसवारा घण जांण।
एक एक सू आगळा, तेड़ावौ सुरतांण ॥१॥[१३५]

छंद त्रोटक

'सुरतांण' तेड़ावौय वेग सही।
कुळभाण धड़ै 'भोजराज' कही।
हद 'जोध' तेड़ीजैय 'मांनहरा'।
समसेर 'सादूळ' तेड़ौ सधरा ॥१॥[१३६]

---

१३४. जेती=जितनी। साखां=शाखाएँ, गोत्र। दीरघ=दीर्घ। लघू=लघु, छोटी। दाखा= कहते हैं।

१३५ सिरोमणी=शिरोमणि, श्रेष्ठ। जसवारा=यश की घडी, कीर्ति का युग। आगला=बढकर। तेडावौ=बुलाइये।

१३६. सुरताण=राणा गागा का पुत्र तथा चापा का पौत्र सुरताण सोढा था। राणा गागा के १० पुत्र थे—पतौ (टीकाई), रायसल, नेतसी, सुरताण, मेघराज, मानसिघ, रतनसी, वैरसल, हदौ एव भोजदे। इन दशो पुत्रो मे सुरताण बडा वीर था और इसके पुत्र का नाम मुकुन्द था। इसी सुरताण के वशज सुरताण सोढा कहलाये, जिनके ठिकाने उमरकोट इलाके मे छाछरौ तथा फागलियौ नाम से प्रसिद्ध है। भोजराज=राणा गागा के १० पुत्रो मे पता टीकाई था और उसका पुत्र चन्द्रसेन हुआ। चन्द्रसेन का वेटा भोजराज था, जिसके पीछे भोजराज सोढे कहलाए। भोजराज सोढो के प्रसिद्ध ठिकाने छौल, खुहटा तथा ठिगारी हैं। इस भोजराज का समय सं० १६५० वि० के लगभग था। जोध=राणा गागा के दश पुत्रो मे से मानसिघ था, जिसका पुत्र जोधा हुआ। इस जोधा का पुत्र जैसिहदे हुआ, जिसको सं० १७१० वि० के भाद्रप्रद मे भाटी रावल सबलसिह ने उमरकोट का राज्य दिया था और भोजराज के पुत्र ईसरदास राणा को खदेड कर उमरकोट मे से निकाल दिया था। इसी जोधा के वशज जोधा गोत्र के सोढा कहलाये। मानहरा=राणा गागा के १० पुत्रो मे मानसिह भी था और इसी मानसिह के वशज मानहरा कहलाये। 'हरा' शब्द का अर्थ होता है पौत्र अथवा वशज। इस ...

'नरपाळ' तेड़ौ अगजीत नरां।
घण लाज वडाइय तेण घरां।
'मालदेव' तेड़ावौय मोट मणा।
तिण वार तेड़ौ 'गंगदास' तणा ॥२॥[१३७]
'विजैराण' भुजांबळ अेण वड़े।
धिन 'राम' 'वैरसी' मोट घड़।
वड सोढ 'नबा' सुदतार वडा।
अरियां दळ हूंत वहै अवडा ॥३॥[१३८]

.. मानसिंह सोढा का पुत्र जोधा हुआ, जिसके पीछे जोधा गोत्र सोढो मे बना। सादूल=राणा हमीर थिरावत का प्रपौत्र सोढा महीरावण था, जिसका पुत्र खेतसी हुआ। उस खेतसी के ६ पुत्रो मे एक पुत्र सादूल था, जिसके वशज सादूल गोत्र के सोढा कहलाये। सधरा=श्रेष्ठ, समस्त।

१३७. नरपाल=राणा तेजसी के १२ पुत्र थे, जिनमे एक का नाम नरा था, उसी नरा के वशज नरा अथवा नरपाल कहलाये। तेजसी वीसावत के १२ बेटो के नाम का छप्पय इस प्रकार है :

'देवीदास[1] दुरग, सुग्रह कान्हौ[2] राजेसर।
खडगहथौ खेतसी[3], अनै बळराज[4] उनैकर।
चापौ[5] नै रायमदन[6], रूप राया छळ राखण।
वीदौ[7] नं सामत[8], वैर वडवार विचक्खण।
महिकरण[9] नरौ[10] रिड़मल[11] मुदं, मेरौ[12] गुण सागर सुमत।
तेगिया तिलक तेजल तवा, बारै बेटा विरदपत ॥१॥'

[मुहता नैणसी री ख्यात, भाग १, पृ० ३५७]

अगजीत=अजेय, अत्यन्त पराक्रमी। वडाइय=बडप्पन। मालदेव=मालदेव नामक एक वीर सोढा हुआ, जिसके वशज मालदेव सोढे कहलाये। मोटमण=उदारमना, दानवीर। गगदास=राणा चापा का पुत्र तथा हापा का अग्रज सोढा गागा के वशज गगदास सोढे कहलाये। गगदास सोढो के मुख्य ठिकाने राडरातौ, कोटू, खीपरौ, मुथूण तथा अवरसिया आदि उमरकोट इलाके मे आये हुए हैं। यद्यपि गागा के कुछ पुत्र तो इतने पराक्रमी हुए कि उनके नाम से अलग ही उप-गोत्र बन गए, किन्तु शेष भाइयो को गगदास या गगदासोत कहा जाता है।

१३८. विजैराण=राणा तेजसी के १२ पुत्रो मे एक कान्हा था, जिसका पौत्र हमीर (द्वितीय) हुआ। उस हमीर का पौत्र विजा था। इस विजा के पिता का नाम गोयद तथा भाई का नाम नारायण था। इसी विजा के ..

'वरजाग' 'ऊदा' भड़ वाग वणूं।
भल 'भाण' तेड़ो 'मैंहराण' भणूं।
दळ 'केलण' धाराय दाखवियै।
'अखमाल' हंदा भड़ आखवियै ॥४॥[१३६]

.. वशज विजैराण सोढा कहलाये। अेण=इस। वडै=बरावरी, समकक्ष। राम=वीरवाव के काधलजी सोढा का पुत्र राम था, जिसके वशज राम सोढे कहलाये। राम का पुत्र मनोहरदास सोढा था। वैरसी=राणा हमीर थिरावत के चार पुत्र—वीसा, वैरसी, वरजाग व ऊदा मे वैरसी के वशज वैरसी सोढा कहलाये। इस वैरसी के राजधर तथा माडण नाम के पुत्र हुए। नवा=सोढा नवा बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ है, इसके पिता का नाम रूपा, पितामह हापा, जो राणा गागा के अनुज थे तथा प्रपितामह राणा चापा थे। नवा का पुत्र वैरसी हुआ, जिसके पचायण, रायचद (रायब), देवा तथा बाका नामक चार पराक्रमी पुत्र हुए। इसी नवा के वशज नवा सोढा कहलाते हैं। आज भी उमरकोट तथा पारकर के इलाके मे नबा गोत्र के सोढो की सख्या पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है। सुदतार=दानवीर, अत्यत उदार। वडा=वडे। हूत=मे। अवडा=टेढे, वाँकापन के साथ, शौर्य-पूर्ण भाव मे।

१३६ वरजाग=राणा हमीर थिरावत के चार पुत्रो मे वरजाग भी था। वरजाग के वीसा, ऊदा तथा वैरसी नामक तीन भाई थे। इसी वरजाग के वशज वरजाग सोढा कहलाये। ऊदा=राणा हमीर थिरावत का पुत्र तथा वरजाग का भाई ऊदा था, जिसके वशज ऊदा कहलाये। ऊदा का पुत्र मुहता नैणसी के अनुसार तो कूपा था, किन्तु 'सोढायण' के कवि ने कूपा को तेजसी का पुत्र माना है, जब कि राणा तेजसी के १२ पुत्रो के नाम का छप्पय भी है, जिसमे चापा का नाम नही है। अतः कूपा ऊदा का ही पुत्र होना समीचीन जान पडता है। इस प्रकार ऊदा का पुत्र कूंपा, पौत्र वैरसल तथा प्रपौत्र महीरावण सोढा था। 'सोढायण' मे 'कूपै रै चापो कवर' कहते हुए चापा को कूपा का पुत्र माना है, जब कि नैणसी की ख्यात मे तेजसी के १२ पुत्रो मे से चापा था। इस प्रकार कूंपा का पुत्र वैरसल ही था, न कि चापा। चापा तेजसी का पुत्र ही था, जिसके हापा नामक पुत्र हुआ। यह हापा राणा गागा का अनुज तथा चापा का पुत्र था—यह निर्विवाद है। वाग=व्याघ्र, शेर, वहादुर। वणूं=कहता हूँ। भल=भला, श्रेष्ठ। भाण=राजा धरापसाव (धरावरीस) के दुर्जनसाल तथा आसराव दो पुत्र थे। दुर्जनसाल के ५ पुत्र थे, जिनके नाम क्रमश खीमरो, भाग्, नागड, सग्रामसी तथा केलण थे। यद्यपि ...

'सगरांसिय' 'नांगड़' 'जेत' सुरा।
पखमेर 'मदा' भुवपाळ पुरा।
'आसकन्न' 'विभा' 'थिरियाह' इसा।
जग 'जेसा' 'सूरजमाल' जिसा ॥५॥[१४०]

...प्रस्तुत ग्रथ सोढायण मे 'दुर्जनसल अवतारदे, घिन थिरपाल सधीर' कहते हुए कवि ने दुर्जनसाल का उत्तराधिकारी राणा अवतारदे को ही माना है, किंतु अन्य ख्यातो मे राणा खीवरा को उत्तराधिकारी लिखा है। ग्रथ के अतिम भाग मे पिथोरा पीर की स्तुति करते हुए कवि ने, 'सोढै दुरजण साल रै, भला प्रगटियौ भाण' कहते हुए नैणसी की ख्यात आदि के अनुकूल ही दुर्जनसाल का पुत्र भाण को माना है, जो वास्तव मे सही जान पडता है। इसी भाण सोढा का पुत्र पिथोरा पीर जन्मा तथा भाण की धर्मपत्नी का नाम सोनलबाई था। इस भाण के वशज भाण सोढा कहलाए। मैहराण=राणा तेजसी वीसावत के १२ पुत्रो मे मेरा भी था, जिसके वंशज मेहराण सोढे कहलाये, अथवा हमीर थिरावत के चार पुत्रो—वीसा, वरजाग, वैरसी तथा ऊदा मे, ऊदा का प्रपौत्र महीरावण था। इस महिरावण का पिता वैरसल था। महिरावण के ६ पुत्र थे—लखा, सूजा, गोपाल, सादूल, कान्हा व भाना। सभवतः इस महिरावण के वशजो को ही कवि ने 'मैहराण' सोढे माने हो, जैसा कि उस प्रदेश मे महिरावण का उच्चारण 'मैहराण' सा किया जाता है। इस प्रकार मेहराण सोढो के लिये उपर्युक्त दोनो ही प्रसिद्ध व्यक्ति मेरा तथा महिरावण मूल पुरुष माने जा सकते हैं—ऐसा अनुमान है। केलण=राजा धरावरीस (धरापसाव) का पुत्र दुर्जनसाल उमरकोट का स्वामी था, जिसके पाँच पुत्र थे खीवरा, सग्रामसी, नांगड, भाण तथा केलण। इसी केलण के वशज केलण सोढा कहलाये। केलण सोढो की जनसख्या धाट मे बहुत ज्यादा है। धारा= गोत्र, शाखा। दाखवियै=कहिये, मानिये। अखमाल=राणा हमीर से आगे चौथी पीढी मे खेतसी महिरावणोत हुआ, जिसके ६ पुत्र थे। उन छः पुत्रो मे लखा नामक व्यक्ति का पौत्र अखैराज था। इस अखैराज के पिता का नाम जेसा था। इसी अखैराज के पीछे अखमाल या अखैराज गोत्र के सोढा कहलाये।

१४० सगरासिय=सोढा दुर्जनसाल के पाँच पुत्रो मे सग्रामसी भी था, जिसके पीछे सग्रामसो सोढे कहलाये। सग्रामसी के अन्य चार भाइयो मे राणा खीवरा, केलण, भाण व नागड थे। सग्रामसी गोत्र के सोढो की आबादी धाट मे बहुत अधिक मात्रा मे विद्यमान है। नागड=सोढा दुर्जनसाल, जो राजा धरावरीस (धरापसाव) का बेटा था। उसके पाँच पुत्रो मे नागड भी एक था। यह नागड़ सग्रामसी का भाई था। इसी के वशज...

कह दाखूं 'घोधा' 'कूरनिया'।
प्रतपाळ 'देपाळ' वडा 'पनिया'।
दिल सोढ 'अरज्जण' दाख 'दला'।
सुध 'वीरमदे' मांणजै 'सतला' ॥६॥[१४१]

. नागड गोत्र के सोढा कहलाये। जैत = खेतसी महिरावणोत का पुत्र कान्हा था, जिसके पौत्र का नाम जैता था। जैता और तेजा ये दो भाई सोढा रायमल के बेटे थे। इसी जैता के वशज जैतमल सोढा कहलाये। सुरा = राणा कूपा का पौत्र खेतसी महिरावणोत के ६ पुत्रो मे से एक कान्हा भी था। इस कान्हा का पुत्र सूरा था। सूरा का एक भाई माधो नाम से था। रायमल नामक सूरा का पुत्र था। इसी सूरा के वशज सूरा अथवा सुरा गोत्र के सोढा कहलाये। पखमेर = मेरु पक्ष वाले, परमारो को 'मेरपखा' विरुद लगता है। मदा = कान्हा (जो खेतसी महिरावणोत का पुत्र था) के माधो एव सूरा नाम के दो पुत्र थे। उनमे माधा के वशज मदा अथवा मधा गोत्र के सोढा कहलाये। इसी माधा के पुत्र का नाम रामा था तथा ये सोढे उमरकोट मे आज भी बहुत-से गाँवो मे पाये जाते है। आसकन्न = राजा धरावरीस (धरापसाव) के दो पुत्र थे दुर्जनसाल तथा आसराव। आसराव के वशज पारकर मे बसते हैं। इसी आसराव के पीछे सोढो मे आसराव अथवा आसकरण गोत्र कहलाया। विभा = सोढो का एक गोत्र विशेष। थिरियाह = राणा अवतारदे का पुत्र थिरा था। यह थिरा राणा हमीर का पिता था। थिरा का एक भाई वीरमदे था। इसी थिरा के वशज थिरिया गोत्र के सोढे कहलाये। जेसा = सोढा वैरसी हमीरोत का पुत्र माडण था, जिसके बेटे का नाम जेसा था। इसी जेसा के वशज जेसा गोत्र के सोढा कहलाये। सूरजमाल = राणा चापा का पुत्र, हापा एव गागा का भाई सूरजमल सोढा था। इसके पुत्र का नाम करण था। इसी सूरजमल के पीछे सूरजमाल गोत्र के सोढे कहलाये।

१४१. घोधा = सोढा खीवरा (दुर्जनसाल का पुत्र) के तीन पुत्रो अवतारदे, घोधा, एव सता मे घोधा के वशज घोधा गोत्र के सोढा कहलाये। कूरनिया = ये सोढे सभवत. सोढा करण के वशज कहलाये होगे। राणा तेजसी के १२ पुत्रो मे से चापा का पाटवी पुत्र गागा उमरकोट का स्वामी बना। चापा का दूसरा पुत्र सूरजमल था, जिसके करण नामक वेटा था—ऐसा मुंहता नैणसी की ख्यात मे प्रकट होता है, किन्तु कविराजा बांकीदासजी ने अपनी ख्यात मे करण को राणा चापा का ही पुत्र माना है। इसी करण के पुत्र का नाम खीवा तथा पौत्र का नाम भाणा था। उपर्युक्त इसी ...

'भारमल्ल' 'तेजू' 'नरसींग' भणूं।
गुणग्राग सोढा सब जात गिणूं।
सब आय मिळै जरदाळ सजै।
वरियांम अंबागळ जैत वजै॥७॥[१४२]

... करण के वशज सोढा करण कहलाये। 'कूरनिया' शब्द शायद 'करनिया' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, क्यो कि 'त्रोटक छद' के विधान मे ४ 'सगण' प्रत्येक पक्ति मे अनिवार्य होने से 'करनिया' या 'करणिया' शब्द बैठ नही सकता, इसीलिये कवि को 'कूरनिया' लिखना पडा होगा। इसके अतिरिक्त कोई इस नाम की शाखा ख्यातो मे अथवा मौखिक सुनने मे नही आई। प्रतपाल=प्रतिपालक, रक्षक। देपाल=राजा धरावरीस (धरापसाव) के दो पुत्र थे, जिनमे दुर्जनसाल के वशज उमरकोट मे तथा, आसराव के वशज पारकर मे बसे थे। आसराव का पुत्र देवराज हुआ, जिसका पौत्र देपाल अथवा देपा था। इस देपाल के पिता का नाम सलख था तथा खगार नामक देपाल के पुत्र था। इसी देपाल के वशज 'देपाल गोत्र के सोढा कहलाये। पनिया=पना नामक सोढा के वशज पनिया कहलाये। इसका पूरा विवरण ज्ञात नही हो पाया। अरज्जण=राणा अवतारदे का पुत्र वीरमदे था, जो राणा थिरा का छोटा भाई था। उस वीरमदे का पुत्र तमाइची था और तमाइची का देवराज हुआ। देवराज के पुत्र सता से आगे पाँचवी पीढी मे अर्जुन नामक सोढा हुआ, जिसके वशज 'अरजण', 'अरजणोत' या 'उरजणोत' सोढा कहलाये। दला=राणा तेजसी के १२ पुत्रो मे से एक कान्हा था, जिसके वाघा, चाचा एव बनवीर नामक तीन पुत्र हुए। बनवीर का प्रपोत्र विजा था, जिस विजा के रतनसी, नादा तथा दला नामक पुत्र थे। इसी दला के वशज 'दला' गोत्र के सोढा कहलाये। सुध=भले, श्रेष्ठ। वीरमदे=राणा गागा के १० पुत्रो मे एक मानसिह भी था। इस मानसिह के पुत्र जोधा के दो लडके हुए, जिनके नाम वीरमदे तथा जैसिह थे। इसी वीरमदे के वशज 'वीरमदे' गोत्र के सोढा कहलाये। सतला=राणा अवतारदे का पुत्र वीरमदे था, जो राणा थिरा का अनुज था। इस वीरमदे का पुत्र तमाइची था और तमाइचो का पुत्र सता था। इसी सता के वशज 'सतला' गोत्र के सोढा कहलाये। सता के पुत्र का नाम कूभा तथा पौत्र का नाम सहसा था। 'सतला' गोत्र के सोढो की जनसंख्या धाट इलाके मे पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है।

१४२. भारमल्ल=राणा हमीर थिरावत के चार पुत्रो मे से एक ऊदा था, जिससे आगे चौथी पीढी मे खेतसी महिरावणोत हुआ। इस खेतसी के ६ पुत्रो मे से भाना था, जिस भाना का प्रपौत्र भारमल हुआ। भारमल और जोधा नामक दो भाई थे तथा सागा के पुत्र थे। इसी भारमल के पीछे ...

छंद बेअखरी

मिळियौ दळ आफू मनवारां।
प्याला आसब फिरै अपारां।
चाढै धेगां चरू चढाए।
विवध भांत पकवांन वणाए ॥१॥[१४३]
साकर बाकर मांस सुगंदा।
है पकवांन लापसी हुंदा।
जुगत भांत कर पात जिमाया।
बापोकार घणूं बिरदाया ॥२॥[१४४]
बगतर भीड़ौ किरमर बांधौ।
सराइयां ऊपर जुध सांधौ।

... सोढो मे 'भारमल' नामक गोत्र चल पडा। तेजू = राणा तेजसी वीसावत, जिसके १२ पुत्र थे, उसी तेजसी के वंशज 'तेजू' अथवा 'तेजमालोत' सोढा कहलाये। यद्यपि अधिकाशत तेजसी के पुत्रो मे से ऐसे पराक्रमी हुए, जिनके पीछे पृथक गोत्र चल पडा, फिर भी कुछ ऐसे बचे, जो पिता के नाम पर 'तेजू' या 'तेजमालोत' गोत्र के सोढा कहलाये। नरसीग = राणा हमीर थिरावत का प्रपौत्र महिरावण सोढा था। महिरावण के तीन पुत्र थे—लूणा, खेतसी एव नेतसी। इस लूणा का पौत्र घड़सी डूगरोत था, जिसके दो पुत्र थे—माडण एवं नरसिह। इसी नरसिह के वशज 'नरसीग' अथवा 'नरसिंग' गोत्र के सोढा कहलाये। गुणग्रग = गुणग्राहक। जात = जाति, गोत्र। जरदाल = ढाल। त्रबागल् = नगाडे। जैत = जीत, विजय।

१४३ आफू = अफीम। मनवारा = मनुहारो मे। आसब = आसव, मदिरा। अपारा = अपार, बहुत-से। चाडै = चढा रहे हैं। धेगा = बडी-बडी डेकचियाँ विशेष, जिनमे अधिक लोगो का खाना पकता है। चरू = पीतल का ऊर्ध्वमुखा बर्तन, जिसमे प्राय द्रवित पदार्थ रखे अथवा पकाये जाते हैं। विवध = विविध।

१४४ साकर = शर्करा, शक्कर। बाकर = बकरे। सुगदा = सुगधित। लापसी = गेहूँ को दल कर घृत एव गुड-शक्कर के रस मे पकाया जाने वाला मिष्ठान्न विशेष, जिसे लपसी कहते हैं। जुगत = युक्ति, खातिर। जिमाया = भोजन करवाया। बापोकार = विरुदाने के शब्द विशेष, जिनमे पूर्वजो के शौर्य एव महत्ता की गाथा से योद्धाओ को प्रोत्साहित किया जाता है।

१४५. वगतर =, कवच। भीडौ = कसिये, बाधिये। किरमर = कृपाण, तलवार। जुध = युद्ध। साधौ = निश्चित कीजिये, सलग्न कीजिये।

गीता भागवंत सुरण ग्यांना।
भड़ पुन दांन करै भगवांना ॥३॥[१४५]
सैंहस नांम विसनु सांभळिया।
मह रिछणाळ इसै छक मिळिया।
तुळछी मंजर सोस धरे तिरण।
वैग समरिया अरां विधूंसरण ॥४॥[१४६]
दीयौ हुकम 'जगै' वरदाई।
करौ भीरण अब जेज न काई।
सह जरदाळ कसे संभरिया।
पमगां साज किया पाखरिया ॥५॥[१४७]
चंचळ ताता वैग चड़ांरणी।
'ईसर' कमध हुवौ अगवांरणी।
सोढां रांरण हाकिया साकुर।
आवै वैग सरायां ऊपर ॥६॥[१४८]
ऊतावळ कर दळां अपारी।
धिखिया जोध रीस तन धारी।

---

१ ५. पुन=पुण्य ।

१४६. सैंहस=सहस्र, हजार। विसनु=विष्णु । साभलिया=सुने, श्रवरण किये। मह=महि, पृथ्वी। रिछपाल=रक्षपाल, रक्षक। इसै छक=इस छटा से। तुलछी=तुलसी, वृन्दा। मजर=मञ्जरी। तिरण=तृरण, तनका। समरिया=युद्धार्थ उद्यत हुए। विधूसरण=विध्वासित करने को।

१४७. दोयौ हुकम=हुक्म दिया, आज्ञा दी। जगै=वीर जगमाल सोढा। वरदाई=वरदायी, विलक्षरण प्रतिभाशाली। भीरण=घोड़ो की पीठ पर कसी जाने वाली काठी और उसकी सजावट विशेष। जेज=देर, विलम्ब। काई=कुछ भी, तनिक। कसे=कसकर। सभरिया=तैयार हो गए। पमगा=घोडे। पाखरिया=घोडो की पीठ पर रखी जाने वाली रक्षात्मक पाखर एव उससे सम्बन्धित साज-सामान।

१४८. ताता=तेज। चड़ारणी=चढे। ईसर कमध=ईशरदास नामक राठौड, जो सोढा जगमालजी का सेनानायक था। साकुर=घोड़े।

कंवरां गुर जुध आरंभ कीधौ।
दळां चड़रण चौ हुक्कम दीधौ ॥७॥[१४६]

छंद भुजंगी

चढै बौहली खैंग 'जग्गौ' सचाळौ।
करै हाथ मां कूंत दीसै कराळौ।
'जुगत्तेस' चढ्ढै रिड़माल जायौ।
खिवै हाथ भालौ पमंगूं खिलायौ ॥१॥[१५०]
इतै चढ्ढ 'सोभौ' 'गजैसींग' ऽवाळौ।
पिता वैर लेवा घणं प्रौहचाळौ।
चढै बाज 'कूंपौ' करां सेल चोळै।
बड़ौ रीसधारी अरां थाट बोळै ॥२॥[१५१]
चढै वंक 'मूळौ' महा रोसधारी।
अबल्लवख घोड़ै करै आसवारी।
चढै गौड़ ताजी करै मन्न चाया।
छिबै सीस आभै खिवै कूत छाया ॥३॥[१५२]

---

१४६. कवरागुर = कुवरो मे श्रेष्ठ अर्थात् सोढा रायसिह का पुत्र वीर जगमाल। कीधौ = किया। चडरण चौ = चढने का। हुक्कम दीधौ = हुक्म दिया, आज्ञा प्रदान की।

१५०. बौहली = घोडो की एक श्रेष्ठ जाति। जग्गौ = वीर जगमाल सोढा। सचालौ = स्फूर्तिमान, युद्ध मे अत्यन्त निपुण। हाथ मा = हाथ मे। कूत = कुत, भाला। करालौ = विकराल, भयानक। जुगत्तेस = जुगतसिह सोढा, जो रणमल का पुत्र था। रिडमाल = रणमल, एक नाम विशेष। जायौ = पुत्र, आत्मज। खिवै = चमक रहा है। पमंगू = घोडा। खेलायौ = युद्ध रूपी खेल मे चलाया।

१५१ सोभौ = वीर जगमाल का भतीजा तथा गजसिह का पुत्र वीर सोभा। कूपौ = कूपा नामक एक वीर सोढा। चौलै = घुमाता है, प्रहार करता है। रीसधारी = क्रोधी। बोलै = नाश करता है, मिटाता है।

१५२ वक = वाँका नामक एक वीर क्षत्रिय। मूलौ = मूलसिह नामक सोढा। रोसधारी = रोष वाला, पराक्रमी। आसवारी = सवारी, आरोहण। गौड = क्षत्रियो की एक शाखा गौड होती है, वीर जगमाल के बलोच लुटेरो के साथ किये गये युद्ध मे गौड क्षत्रिय भी शामिल थे—ऐसा यहाँ प्रकट होता है। ताजी = घोडो की एक जाति विशेष।

चढै स्रब्ब 'देवा' अती तेज धारी।
चढै भूप 'पांचा' अलल्लां हजारी।
चढै जोध 'रायब्ब' रा छक्क पूरै।
चढै भ्रात 'वांका' रिमां तेग चूरै ॥४॥[१५३]
चढै 'ईसरौ' जोध धांधल्ल साथै।
हुवा साथ हींगोळचा तेग हाथै।
इसा और ही साथ चड्डे अपारूं।
सबै कोपिया वैर उग्राण सारूं ॥५॥[१५४]
जिके हाकलै बाज जोधार जोरै।
भरां भंगरा डूंगरां थाट भोरै।
हुवौ ठोर नीसांण नै फौज हालै।
भिलै बाज म्रग्गांण नै डांण भालै ॥६॥[१५५]

---

१५३ स्रब्ब = सर्व, समस्त। देवा = सोढा वैरसी का पुत्र तथा नबा का पौत्र देवीसिंह सोढा के वशज देवा कहलाते हैं। पाचा = वैरसी का पाटवो पुत्र पचायण के वशज 'पाँचा' या 'पचायणोत' कहलाते हैं। अलल्ला = घोडे। हजारी = हजार रुपयो की कीमत का घोड़ा, पुराने जमाने मे बहुत सस्ती कीमतें थी, उस जमाने मे 'हजारी बाज' अर्थात् हजार रुपयो की कीमत का घोडा अत्यत श्रेष्ठ समझा जाता था। रायब्ब = सोढा वैरसी का पुत्र तथा पचायण, देवा तथा बाका का भाई रायब (जिसे रायचद या रायसिंह भी कहते थे) के वशज 'रायब' सोढे कहलाये। छक्क पूरै = पूरे जोश मे, पूर्ण साजसज्जा मे। वाका = सोढा वैरसी के पुत्र तथा नवा के पौत्र बाँका के वशज 'वाका' गोत्र के सोढे कहलाये। चूरै = चूर्ण करते हैं, काट गिराते है।

१५४. ईसरौ = ईशरसिंह राठोड, जो वीर जगमाल का सेनाध्यक्ष था। हीगोलचा = क्षत्रियो की एक शाखा। अपारू = अपार, असख्य। उग्राण = उग्राहना, बदला लेना। सारू = हेतु, लिये।

१५५. जिके = जो। हाकलै = ललकारते हैं। जौरै = जोरदार, तेजी से। भरां = कटीली भाड़ियो का समूह। भंगरा = घने वृक्षो का समुदाय। डूगरा = पर्वत, पहाड। भोरै = झकझोरते हैं, रौंदते है। बाज = घोडे। म्रग्गांण = मृग, हरिण। नै = के। डांण = डौल, गति। भालै = पकड़ते हैं।

थळां विम्मरां खूर मावै न थट्टां।
भोरै अन्नड़ां खेंग देता झपट्टां।
पंथां खेड़िया भोरिलै खूर पूगौ।
अरां भेळिया थाठ नै सूर ऊगौ ॥७॥[१५६]
इणी वींटिया सराई हाथ आया।
चमू खेत मां होवसी मन्न चाया।
पुगी जोम मूंछां धरै पांण प्रोढा।
सत्रां जीतसी खेत जोधार सोढा ॥८॥[१५७]

छंद बेअखरी

निरखी सेन सरायां नैड़ी।
कहो उपाव करां अब कैड़ी।
'जोगी' कहै सुणौ जोधारां।
भागां भांय होवसी भारां ॥१॥[१५८]

---

१५६. थला = रेतोले स्थल। विम्मरा = बीहड, निर्जन। खूर = योद्धा। थट्टा = सेनाएँ। अन्नड़ा=पर्वत, पहाड। खेंग = घोडे। झपट्टा = इतनी तेज गति मे चलना कि पास खडे व्यक्ति झपेट मे आ जायँ, तीव्रगति के कारण वातचक्र की झपट लगना। पथा = मार्ग। खेडिया = चलाये हुए, प्रयाण किया हुआ। भोरिलै = भोरीला नामक एक गाँव, जो सलामकोट के पास मे स्थित है। भेलिया = भिडत की।

१५७ इणी वीटिया = भालो की अणियो (नोको) से परिवेष्टित हुए नोक से नोक छाई हुई। चमू = सेना। पुगी = पहुँची, मिली। जोम = जोश की आकृति, ऊर्ध्व। पाण = (स० पाणि) हाथ। प्रोढा = प्रौढ, शूरवीर। सत्रा = शत्रुओ।

१५८. नैडी = निकट, समीप। उपाव = उपाय। कैडी = कैसी। जोगी = एक वलोच डाकू का नाम। भागां भाय होवसी भारा = कहावत प्रसिद्ध है कि भगते समय दूरी बढती प्रतीत होती है, अर्थात् भयातुर व्यक्ति के पाँव बोझिल हो जाते है। 'दाढालै सूर' की वात का एक दोहा भी इस उक्ति की पुष्टि करता है, यथा—

"एक विडांणा जव चरै, मालम ऊगै सूर।
दाढाळा भूडण भणै, भागा माखर दूर॥"

लसियां विरद आंपणौ लजसी।
संभियां विनां गरज नां सजसी।
कहै 'धिनार' 'कापड़ी' कारण।
मिळिया सोढ आंपां नै मारण ॥२॥[१५६]
सजौ सुनाह बगत्तर सारौ।
वैरी आया मरण विचारौ।
पढ किलमांण निवाज़ां पड़ौ।
चाड़ौ घेग जांम नै चड़ौ ॥३॥[१६०]
उण वेळा सैमांन अणाई।
मुसदी चावळ दाळ मंगाई।
जीमै केम असुर दळ जाडा।
पनरै आठ मारिया पाडा ॥४॥[१६१]
भखे पुलाब तोबरा भरिया।
सह दळ जीम अेम संभरिया।

---

१५६. लसिया = पीछे हटने पर। आपणौ = अपना। गरज ना सजसी = उद्देश्य सिद्ध नही होगा। धिनार = धीनारखान नामक एक बलोच लुटेरा। कापडी = कापडीखान नामक बलोच डाकू।

१६०. सुनाह = सनाह, कवच। बगत्तर = बख्तर, तनत्राण। सारौ = सभालिये। किलमाण = कलमा पढना, मुसलमानो के धर्म-ग्रथ की सूक्तियो मे से 'कलमा' भी एक विशेष आदेश है। निवाजा = नमाज। पडौ = पढिये। जाम = शराब, मदिरा। चडौ = चढाइये।

१६१. सैमान = सामान, असबाब। मुसदी = [फा० मुसदी] मिठाई बनाने का एक साँचा। चावल तथा दाल जैसे खाद्य पदार्थों के साथ 'मुसदी' शब्द आने से सभवत. मुश्ती शक्कर के लिये प्रयोग किया गया है। पश्चिमी राजस्थानी मे मुश्ती का मुसदी उच्चारण होना स्वाभाविक जान पडता है, जैसा कि 'त' के स्थान पर 'द' तथा 'द' की जगह 'त' बोलने की अधिक प्रथा है—यथा सफेद = सपेत, खाद = खात, इसी प्रकार वाहियात = वइयाद आदि-आदि। जीमै = भोजन करते है। जाडा = वहुत सख्या मे। पनरै आठ = पन्द्रह और आठ अर्थात् तेवीस (२३)। पाडा = भैंसे।

१६२. तोवरा = घोडो के दाने का एक थैला विशेष।

पढे कुरांग किताबां पढी।
दीदे हाथ सला री दढी ॥५॥[१६२]
मेहदी केस रगे चख मोड़ै।
जूसणिया जमदूतां जोड़ै।
इला इलल्ला मुखां उचारै।
धुन रैहमांण फातमा धारै ॥६॥[१६३]
रोस भया कीना चख रत्ता।
मिळिया जोध होय इकमत्ता।
चढिया घोड़ां तेगां चल्ली।
बोली ताम करै किलबल्ली ॥७॥[१६४]

दुहौ

हमैं जगै दीनौ हुकम, करे मनां अत क्रोध।
अव वागां ऊपाड़ नै, जंग करौ सब जोध ॥१॥[१६५]

छंद पद्धरी

वळवळां सूर ऊपाड़ वाग।
रिणखेत जाग सिंधू स राग।

---

१६२. कुराण = कुरान, मुसलमानो का धर्म-ग्रन्थ। दीदे हाथ सला री दढी = हिन्दू लोग जिस तरह युद्ध के समय मूछो पर ताव देते है, उसी प्रकार मुसलमान दाढी पर हाथ फेर कर अपना मतव्य प्रकट करते है। खा-पीकर अथवा किसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये जाते समय मुसलमान दाढी पर स्वाभाविक रूप से हाथ फेरते हैं, ऐसी मान्यता है।

१६३ चखमोडै = आंखें तरेरना। जूसणिया = स्वांग किया, वनठन कर तैयार हुए। जोडै = समकक्ष, समान। रैहमाण = रहमान। फातमा = फातिमा, हजरत मुहम्मद साहब को सुपुत्री, हजरत इमामहुसैन की माता।

१६४ चखरत्ता = लाल नेत्र किये हुए। इकमत्ता = एकमत होकर, सहमत होकर। तेगां = तलवारे। चल्ली = चली। ताम = तव, उस अवसर पर। किलवल्ली = किलविलाहट-सी बोली, जो अन्य लोगो की समझ मे न आये।

१६५. मना = मन मे। वागा = घोडो की लगामे।

१६६ वलवला = हर तरफ से, चारो ओर से। जाग = जागृत होकर। सिन्धू = सिंधव राग, जो युद्ध के अवसर पर की जाती है।

वजवजै सूर वादोसवाद।
आसुरां सुरां धुख वैर आद ॥१॥[१६६]
'धीनारखांन' धारै स ध्रोह।
छत्रीसवंस 'जगौ' छछोह।
पायाळ धूज केकांण पोड़।
अड़वड़ै घोड़ च्यारू स ओड़ ॥२॥ ७]
कापड़ीखांन हैवर कुदाय।
उण समै 'जगौ' जूटौस आय।
जगमाल ढाल रोपीस जोध।
केवांण वाह 'ईसर' सक्रोध ॥३॥[१६८]
दळ इणी मिळै वाजै दमांम।
ऽयूं मिळै सोढ खोसा अमांम।
कड़कड़ै नाळ छूटै कराळ।
झड़झड़ै दमंगां आग झाळ ॥४॥[१६९]

---

१६६ वजवजै = जोश मे आगे बढना। वादोसवाद = परस्पर होड लग गई, एक दूसरे के आगे। धुख = सुलगकर, दाहस्वरूपी। आद = आदि, प्रारम्भ का।

१६७. ध्रोह = द्रोह, द्वेष। छत्तीसवस = क्षत्रियो के ३६ वश माने गये है, जैसा कि महाकवि करनीदानजी कविया ने जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी की प्रशस्ति मे लिखे 'विरद-शिणगार' काव्य मे कहा है —

'छत्रपती अभौ छत्रकुळ छतीस।
बहोतर कळा र लक्खण बतीस ॥'

छछोह = स्फूर्तिमान, वीर। पायाल = पाताल। केकाण = घोडे। पोड = घोडो के पौड। अडवडै = द्रुत गति से घोडो का आगे बढना, परस्पर प्रतिस्पर्द्धा मे आगे बढते हुए। ओड = ओर, तरफ।

१६८. कापडीखान = एक बलोच डाकू का नाम। जूटौ = युद्ध मे जुट गया। केवाण = कृपाण, तलवार। वाह = प्रहार करते हुए। ईसर = जगमाल सोढा का सेनानायक राठौड ईसरदास।

१६९. इणी मिलै = भालो की नोक से नोक मिल गई, रणभूमि योद्धाओ से छा गई। खोसा = लुटेरे, डाकू। अमाम = अच्छी तरह से। कडकडै = बन्दूक या तोप के छूटने की ध्वनि विशेष। नाल = तोप या बन्दूक। दमगा = बारूद से छूटने वाला एक अस्त्र विशेष। झडझडै = झड़ रही है। झाल = ज्वाला।

हड़हड़ै वीर टोळा हसंत।
धड़हड़ै तोप सूरा धसंत।
बंदूकदार हुसियार बोत।
गुनेगार हूंत ले लेस गोत ॥५॥ [१७०]

जंजाळ आठिया छूट जोर।
सँझाळ होत भळळाट सोर।
कूदाय बाज जोधार केक।
इण भाय चोट नांखै अनेक ॥६॥ [१७१]

छणकार तीर गोळास छोह।
ललकार सार वाजैस लोह।
खणकार धार वाजैस खाग।
भड़ मेर मीर जावै न भाग ॥७॥ [१७२]

तन जोस धार तरवार तोल।
बळ धार बांण अेकार बोल।
'जगमाल' तांण मूंछां सजोर।
मलपाय वोदळी जांण मोर ॥८॥ [१७३]

---

१७० हडहडै = अट्टहास की ध्वनि। वीर टोला = वीर वैतालो की टोलियाँ। धडधडै तोप आदि के छूटने से जोर की ध्वनि होना। सूरा = शूरवीर। धसत = धँस रहे हैं। बदूकदार = बदूकधारी। बोत = बहुत। गुनेगार = गुनाहगार, अपराधी। गोत = बदला।

१७१. जजाल = एक बडी पलीतेदार बदूक। आठिया = एक प्रकार की छोटी बदूक। सँझाल = आग की लपट। भललाट = जोर का प्रकाश। सोर = बारूद। केक = कई। भाय = तरह, प्रकार। नाखै = डालते हैं, गिराते हैं।

१७२. छणकार = तीरो के छूटने की ध्वनि विशेष। गोला = तोप आदि के गोले। छोह = सत्वर गति से, तेजी से। सार = तलवार। लोह = शस्त्र। खणकार = तलवारो की खनखनाहट। भडमेर = पहाड के सदृश भीमकाय योद्धा। मीर = मुसलमान योद्धा।

१७३. वाण = वाणी, वचन। अेकार = एकता के। मलपाय = छलाग भराते हुए। वोदली = घोडो की एक श्रेष्ठ जाति। जाण मोर = घोडे या ऊँट के वखान मे उपमा मयूर से दी जाती है, यथा —

'छत अत्त सजोर चकोर अछप्पळ, मोर जिसा छिबकोर मडै।'

(कविया चिमनजी)

पौतियौ खांन 'धीनार' पास।
नीछटी खाग असुरांण नास।
तरवार वाढ 'धीनार' तुड्ड।
रड़वड़ै ईंट ज्यूं पडे रुड्ड ॥९॥[१७४]

हूसियार आय ठहकीस हूर।
देखियौ 'धीन' उतबंग दूर।
ले चड़ी सीस माहेस लीन।
पै खाळ छ्रोण डायणी पीन ॥१०॥[१७५]

'जोगीसखांन' ऊठे सजोर।
ठहकियौ आय बे भुजा ठोर।
'जोगीसखांन' 'जगमाल' जूट।
तोड़ियौ सीस ज्यूं हार तूट ॥११॥[१७६]

धर पड़े खान 'जोगी' सधाय।
वरमाळ हूर पाछी वळाय।
ऊठियौ सीह 'भोगी' अभग।
जगमाल भिड़ खग भाल जग ॥१२॥[१७७]

---

१७४. नीछटो=निकली, निस्सरित हुई। वाढ=काट कर। तुड्ड=तुण्ड। रडवडे=इधर-उधर ठोकरे खाते हुए। रुड्ड=रुण्ड, कटा हुआ शिर।

१७५. ठहकी=उपस्थित हुई, आ धमकी। हूर=जिस प्रकार हिन्दू योद्धा के रणभूमि मे काम आने पर स्वर्ग से अप्सरा वरण करने को आती है, उसी प्रकार मुसलमान योद्धा को भिश्त मे पहुँचाने के लिये हूर आया करती है, वैसे हूर तथा अप्सरा का एक ही अर्थ होता है। धीन=धीनारखाँ लुटेरा। उतबग=शिर। माहेस=महेश, शिव। छ्रोण=श्रोणित, रक्त। डायणी=डाकिनी। पीन=पिया।

१७६. बे भुजा ठोर=दोनो भुजाओ को शौर्य मे ठोकता हुआ, जोशभरी मुद्रा मे। जोगीसखान=जोगीखान नामक बलोच लुटेरा। हार तूट=हार को तोडने से जिस प्रकार मनका दूर जा पडता है, उसी प्रकार वीर जगमाल सोढा ने जोगीखान बलोच डाकू का शिर काट कर फेंक दिया।

१७७. सधाय=काम आया। वरमाल्=वरण कर के। वल्राय=लौट गई।

तरवार नीछटी 'जुगत्तेस'।
खगधार साथ माथौ खिरेस।
ले गई हूर हाथां लपेट।
भड़ कियौ सीस जगदीस भेट ॥१३॥[१७८]

ऊठियौ खांन धरिया अडोल।
तोखार हाक तरवार तोल।
उरण कियो 'कूंप' सूं जग आय।
जूटिया बिहूं सिंधू वजाय ॥१४॥[१७९]

नीछटी तेग देवां नरेस।
वाढियौ खांन 'भोगी' वसेस।
तड़फड़ै लोथ मच्छी तराय।
ले वळी हूर कठे लगाय ॥१५॥[१८०]

चौगांन खेत इण विध चकार।
आथमे दीह छाया अंधार।
बोह थाट जंग अरियां बहोड़।
ठहकिया बळोचां हेक ठौड़ ॥१६॥[१८१]

---

१७७. सीह=सिंह, योद्धा। भोगी=भोगीखान नामक बलोच डाकू। अभग=शूरवीर, महान् योद्धा। भिडै=जूझ रहा है।

१७८ जुगत्तेस=जुगतसिंह नामक सोढा, जो उस युद्ध मे बडी बहादुरी से लड कर काम आया था। माथौ खिरेस=शिर कट कर नीचे गिर पडा।

१७९ अडोल=आभूषण आदि। कूप=कूपा नामक वीर क्षत्रिय।

१८०. देवा नरेस=देवा गोत्र के सोढो के वशजो का पाटवी. देवा गोत्र वैरसी के पुत्र तथा नवा के पौत्र देवा सोढा के पीछे कहलाया। लोथ=शिर कट जाने के पश्चात् शेष धड। मच्छी तराय=मछली की तरह।

१८१ चौगान=मैदान। खेत=रणक्षेत्र। चकार=चक्कर लगाने लगे। आथमे=अस्त होने पर। दीह=दिवस। बोह=बहुत, घना। बहोड=मोड कर, पुन लौटाते हुए। ठहकिया=आ धमके। हेक=एक।

दुहौ

च्यार सराई चौक में, मार लिया 'जगमाल'।
पांचम ऊभौ 'कापड़ो', सोढां रै दळ साल ॥१॥[१८२]

छंद बेअखरी

ऊगौ सूर फेर आहड़िया।
'जगौ' 'कापड़ो' खागां जुडिया।
बोल नबाणा जैंहर बांणी।
तांणै दड्ढी मूंछां तांणी ॥१॥[१८३]
घडछूं तनै खाग री धारा।
मेळूं नर बधव रा मारा।
खग धारां 'गज्जौ' तैं खाधौ।
जोतौ आभ जमीं पर लाधौ ॥२॥[१८४]
गरजै सोढ धार मन गोसौ।
खिमै न बोल 'कापड़ो' खोसौ।
दाढी हाथ दियै दाढाळौ।
मूंछां वळ घालै मूंछाळौ ॥३॥[१८५]

---

१८२. च्यार = चार। पाचम = पचम पाँचवाँ। कापडी = एक बलोच लुटेरा। दलमाल = सेना के दिल मे खटकने वाला, शत्रु।

१८३. सूर = सूर्य। आहडिया = आ भिडे। जगौ = वीर जगमाल। खागा जुडिया = त वारो से भिडने लगे। नबाणा = नही बोलने योग्य, कड़वे। जेंहर = जहर, विष। बाणी = वाणी। ताणै = खीचने लगे। दड्ढी = दाढी।

१८४. घडछू = काट गिराऊँ, मारूँ। तनै = तुझको। मेळू = मिट्टी मे मिला दूंगा, मार डालूंगा। मारा = मारने वाला। गज्जौ = वीर जगमाल का अनुज गर्जसिह सोढा। तै = तुमने, तूने। खाधौ = खा गया, मार डाला। जोतौ आभ जमी पर लाधौ = राजस्थान मे कहावत है कि जिसकी आकाश मे तलाश की जा रही थी, वही पृथ्वी पर मिल गया, किसी अभिलषित व्यक्ति का सहज ही मिल जाना।

१८५. गोसौ = गुस्सा, क्रोध। कापडी = कापडीखान नामक बलोच लुटेरा। खिमै = सहन करना। खोसौ = लूट-खसोट करने वाला, डाकू। दाढालौ = दाढी रखने वाला अर्थात् कापडीखान बलोच डाकू। वळ = मरोड़। मूंछालौ = मूछो वाला अर्थात् वीर जगमाल सोढा।

कायर पणै 'जगौ' नां क्रमियौ।
नह को धकै 'कापड़ो' नमियौ।
बिहूं अवैड़ा खारा बोलै।
तांणे मूंछ केवाणां तोलै ॥४॥[१८६]

दुहा

बोलै 'जगौ' महाबळी, नबांपती नखतैत।
जोध सरोसा जूट नै, खोसा राखौ खेत ॥१॥[१८७]
धर लूटै छूटै धरम, ग्रहै कटक्का गाय।
उण वेळा नर आळसै, कुळ छत्री न कहाय ॥२॥[१८८]
बौह वाकारे बेलियां, भुज धारे कुळ भार।
'रासावत' रिण खेत मां, जूसणिया जोधार ॥३॥[१८९]

छंद भुजंगी

अबै ऊठियौ सीह 'रासींग' ऽवाळौ।
भिड़ै पाधरै खेत भाराथ भाळौ।
'गजैसींग' रौ वैर हूं लेण गाढौ।
वदै सूरमां झाट केवांण वाढौ ॥१॥[१९०]

---

१८६ ना क्रमियौ = नहीं भुका। अबैडा = अत्यत कटुभाषी, ताना देते हुए खारे वचन कहना। केवाणा तोलै = प्रहार करने के हेतु तलवार का दाव जमाना, तलवार को चलाने के लिये खडी करना।

१८७ नबापती = सोढा नबा के वशजो मे पाटवी अथवा स्वामी। नखतैत = नक्षत्रधारी, पराक्रमी। सरोसा = रोष सहित। खेत = रणक्षेत्र।

१८८. ग्रहै = पकडना, घेरना। आलसै = आलस्य करता है। कुल = वश, खानदान। छत्री = क्षत्रिय।

१८९. वाकारे = जोश दिलाते हुए, प्रेरक ललकार करते हुए। बेलिया = साथियो को। रासावत = सोढा रायसिह का पुत्र वीर जगमाल। जूसणिया = तैयार किये, युद्धार्थ उद्यत किये। जोधार = योद्धा।

१९०. सीह रासीग वालौ = रायसिंह (रायचद) सोढे का पुत्र जगमाल। पाधरै खेत = सीधे रणक्षेत्र मे। भाराथ = युद्ध। भालौ = देखिये। गजैसीग = सोढा जगमाल का अनुज गजसिह। वदै = कहता है। सूरमा = शूरवीरो को। झाट = प्रहार। वाढौ = काट डालो।

सजे आवियौ धाट तूं केण सल्ला।
मुजै भ्रात रौ वैर भूलौ मुसल्ला।
मुखां बोलतौ जेर सत्तोल मोसा।
खगां पाधरो आव निम्भाग खोसा ॥२॥[१६१]
इतै 'कापड़ी' सांभळे वात आयौ।
छटा सींह री आखियां रोस छायौ।
भिड़ै मारका सींह जोधार भल्ला।
मिळै सोढ नै थाट सांमा मुसल्ला ॥३॥[१६२]
'जगै' आंखियां रोस ज्यूं आग जागै।
लजा धारियां सीस गैणाग लागै।
विहूं सांमठा थाट सूं होय बाथे।
हवै धारिया उनगा खाग हाथे ॥४॥[१६३]

दुहौ

'जगौ' जरदां जोरवर, अंगां क्रोध अपार।
भल्ला भल्ला सुम्भटां, हुय हल्ला हूंकार ॥१॥[१६४]

छंद पधरी

हूंकार सबद जैकार होय।
कंठीर सक धारै न कोय।

---

१६१ केण सल्ला = किसकी सलाह से। जैर = जहर। सत्तोल = समान, सदृश। मोसा = व्यग्य, ताना। नम्भाग = निर्भाग, अभागा।

१६२ मारका = मारने वाला, शूरवीर। भल्ला = भली प्रकार से।

१६३. जगै = वीर जगमाल सोढा के। आग जागै = अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही हो। लजा = लाज, मर्यादा। गैणाग = गगन, आकाश। सामठा = भरपूर, जबरदस्त। बाथे = लथोबत्थ होना व मल्ल-युद्ध करना। हवै = अब। उनगा = नग्न।

१६४ जरदा = योद्धाओ मे। जोरवर = श्रेष्ठ वीर। भल्ला भल्ला = भले भले। सुम्भटा = सुभटो, शूरवीरो मे। हुय = हो रहा है।

१६५. हूकार = हुकार, युद्ध की मारकाट मे योद्धाओ द्वारा की जाने वाली ध्वनि। कठीर = कठीरव, सिंह, योद्धा। सक = शका, भय। तोखार = तुषार, घोडे।

ऊपाड़ वाग तोखार ओर।
जोधार नीछटै खाग जोर ॥१॥[१९५]
हथनाळ छूट वैताळ हाक।
डंडाळ ठोर वाजैस डाक।
ऊताळ पलीतां झाळ आग।
खरणकार वाज झणकार खाग ॥२॥[१९६]
जिरणवार वीभरै केक जोध।
कायरां घरणां छुट जाय क्रोध।
भभकार घाव बोलैस भाळ।
खळकार भोम रगताळ खाळ ॥३॥[१९७]
अरणपार झाळका तोप आंरण।
तरवार काळका चक्र तांरण।
माळका झुड जोगरण समेळ।
भाळका सूर तोखार भेळ ॥४॥[१९८]
बाळका सगत खेलै हबोळ।
काळका पुत्र करता किलोळ।

---

१९५. नीछटै = निस्सरित होती है।

१९६. हथनाल = बदूक। बैताल हाक = वीर वैतालो की सी भयकर गर्जना। डडाल् = डडे। ठोर = चोट लगाना। डाक = युद्ध के समय बजने वाला महादेव का एक बाजा विशेष। ऊताल् = उतावले, शीघ्र ही। पलीता = तोप या बदूक की रजक मे आग डालने की बत्ती। झाल = ज्वाला। खरणकार = ध्वनि विशेष। झरणकार = झकार।

१९७ वीभरै = क्रोध मे बिगड जाते है। केक = कतिपय, कई। छुट जाय = छूट जाना, मिटना, उतरना। बोलैस = आवाज करते हैं। भभकार = भभकते हुए। खलकार = कलकल करते हुए, रेलते हुए। रगताल = रक्त के। खाल = नाले।

१९८. झालका = ज्वाला की लपटें। कालका = कालिका, रणचडी। मालका = मालिका, पक्ति। समेल = सम्मिलित होकर। भालका = द्रष्टव्य, श्रेष्ठ। भेल = शामिल, साथ मे।

१९९ बालका = बालिका। सगत = शक्ति। हबोल = उन्मुक्त रूप से, खुले दिल से, तेज प्रवाह से। कालका पुत्र = कालो के पुत्र, भैरव।

ठाळका सूर सांमा स ठाय।
अबचरां टाळका लै उठाय ॥५॥[१९९]
खळहळे भोम स्रोणाळ खाळ।
झळहळे तेज भळहळे झाळ।
कळहळे वाज विळकुळे काळ।
माहेस रळवळे रुडमाळ ॥६॥[२००]
झटझटै घाव अर कटै झूळ।
मर मिटै लटै दोयण समूळ।
... . ।
लजमरां फेर धाड़ा न लाट॥
लज तेग बाज 'जगमाल' लूट।
कीरती सांभळी च्यार कूंट।
जगमाल जीतियौ अेम जंग।
राखियौ धाट रौ सोवरग ॥१४॥[२०१]
इण रीत जीत थानंक आय।
वजवजे क्रीत जांगी वजाय।
कव पात ख्यात 'चिमनेस' कीध।
दुनियांन 'जगा' धिन रंग दीध ॥१५॥[२०२]

---

१९९. ठालका=निर्धारित। ठाय=तैयार करके। अबचरां=अप्सराएँ। टालका=चुनिंदे, श्रेष्ठ।

२०० खलहलै=पानी या रक्त के प्रवाह से होने वाली ध्वनि, खलखलाहट। स्रोणाल=श्रोणित के। खाल=नाले, प्रवाह। झलहलै=जाज्वल्यमान। भलहलै=तेज चमकते हुए। कलहलै=कलहल ध्वनि करते हुए, हींसते हुए। बाज=घोडे। विलकुलै=सामीप्य मे, निकट मे ताकना या मडराना। रलवलै=रली की मुद्रा मे, प्रसन्न चित्त से घुमाना या देखना।

२०१. झटपटै=अत्यत तेज गति से। अर=अरि, शत्रु। झूल=समूह। लटै=विध्वंस होना, चूरा होना, कुचला जाना। दोयण=दुर्जन, शत्रु। लज=लज्जा, मर्यादा। कीरती=कीर्ति, यश। सोव रग=सुवर्ण, आनबान।

२०२ थानक=स्थान, अपने ठिकाने। वजवजे=शौर्य के उभार मे। जागी=जगी, शानदार। कव=कवि। पात=चारण। चिमनेस=चिमनजी कविया (ग्रथकर्त्ता)।

दुहा

धिन 'जग्गा' नव्बां घड़, धिन 'ईसर' परधांन।
वैर 'गज' रौ वाळियौ, दखै रंग दुनियांन ॥१॥[२०३]
जिण गादी जगमाल री, जसधारी 'जैसींग'।
परतक चारण पाळिया, तेवोतरै त्रसींग ॥२॥[२०४]
रिध गादी 'जैसींग' रै, अवतरियौ 'अखराज'।
कुळ दीपग भगती करी, ऊ पूजीजै आज ॥३॥[२०५]

छंद वेअखरी

अवतरियौ 'अखैराज' अणंकळ।
पारस मिणी देव छक प्रग्गळ।
साच वाच सत सील संतोखो।
दीनौ संगठ भ्रात हुय दोखो ॥१॥[२०६]
अड़िया बंधव खाग उबांणी।
लीनौ विखौ जाय लोद्रांणी।

---

२०३. नव्बा घडै = नबा गोत्र के सोढो के परिवार समुदाय मे। ईसर परधांन = ईश्वरसिह राठौड, जो वीर जगमालजी का प्रधान सेनानायक एव विश्वासपात्र स्वामिभक्त योद्धा था। वालियौ = वसूल किया, पुन ले लिया। दखै रग दुनियान = दुनियाँ रग दे रही है अर्थात् सर्वत्र प्रशसा हो रही है।

२०४ जैसीग = जयसिह सोढा, जो वीर जगमालजी का पाटवी पुत्र और अत्यत दानी पुरुष था। स० १८७३ वि० मे उमरकोट इलाके मे भीषण दुर्भिक्ष पडने पर इसी जयसिह सोढा ने गिरी हुई आर्थिक स्थिति वाले अनेक चारण परिवारो को सम्मानपूर्वक पोषित किया था। परतक = प्रत्यक्ष, वास्तव मे। पालिया = पालन-पोषण किया। तेवोतरै = तेहोत्तरा (यहाँ सवत् १८७३ वि० से तात्पर्य है)। त्रसीग = बहादुर, योद्धा।

२०५ रिध = समृद्ध, कायम, शुभ। जैसीग = वीर जगमाल सोढा का पुत्र जयसिह। दीपग = दीपक। भगती = भक्ति। ऊ = वह। पूजीजै = पूजा जाता है।

२०६. अणकल = अत्यत वीर, अनवी। मिणी = मणि। देवछक = दैविक विभूति वाला। प्रग्गल = भरपूर, अत्यत। सतोखी = सतोषी। सगठ = सकट, दु ख। दोखी = दुश्मन, अनिष्ट चाहने वाले।

२०७ अडिया = अड गए, सामना करने को तुल गए। खाग उबाणी = तलवार उठाई। विखौ = दु.ख के दिन, विपत्ति। लोद्राणी = एक गाँव का नाम।

वरस तीन लोद्रांणी वसियौ।
घूनौ रोस दोखियां घसियौ ॥२॥[२०७]
मांमां हूंत कयौ अर मारौ।
प्रगळ सेन कर धाट पधारौ।
तद वागेल मूंछ कर तांणी।
सबळो सेना वेग सजांणी ॥३॥[२०८]
घुरिया जांगी ढोल त्रघाई।
वागेलांणी फौज वणाई।
गाजै ढोल वहै दळ लंगर।
झोरै वाट करै तर झंगर ॥४॥[२०९]
ऽयू दळ खेड़ धाट घर आयौ।
तद 'अखमाल' मनां पछतायौ।
रैवत फेरां बंधव मारां।
इण रौ लागै पाप अपारां ॥५॥[२१०]
दया विचारी खिमिया दाखी।
राज न लूट्यौ जरणा राखी।

---

२०७ घूनौ = जबरदस्त, भारी।

२०८. मामां हूत = मामाओ से। प्रगल = पर्याप्त, घनी। सेन = सेना, फौज। तद = तब। वागेल = वाघेल, राठौडो की एक खाँप है, जिसके क्षत्रिय वाघेल अथवा वाघेला कहलाते हैं। सवली = सबल, शक्तिशाली। सजाणी = सजाई गई।

२०९. जागी = जगी। त्रघाई = ढोल व नगाडों पर पड़ने वाला डका, गभीर उद्घोष। वागेलाणी = वाघेलो की। गाजै = गर्जना करते हैं। लगर = कतार, पक्तिबद्ध समूह, भारी। वाट = मार्ग। झगर = नष्ट प्राय:, भूर देना।

२१०. खेड = चला कर। अखमाल = अखयराज, जयसिंह सोढा का पुत्र तथा वीर जगमाल का पौत्र। मना = मन मे। रैवत = घोड़े। अपारां = अत्यन्त।

२११. खिमिया = क्षमा। दाखी = प्रकट की, कही। जरणा = सहिष्णुता, शत्रु शान्ति।

धीरत कर वळियौ सत धारी।
है मत लूटौ परज हमारी ॥६॥[२११]
लेग्यौ पाछौ कटक लोद्राणी।
जका वात जगदीसर जांणी।
'अखवौ' वळ लोद्रांणी आयौ।
गरवै हियै रांम गुण गायौ ॥७॥[२१२]
हटक्यौ मन माया नां हेरी।
फिकर न राखी माळा फेरी।
भुजन करै असतूत स भाखी।
रघुवर तणौ भरोसौ राखी ॥८॥[२१३]

दुहौ

धरणी धर मोटा धणी, सरणायां साधार।
अर गंजण देयण इळा, माधव किसन मुरार ॥१॥[२१४]

नीसाणी

माधव केसव कच्छ मच्छ कोरंभ कहायौ।
बळ बंधण बाराह तूं संतां सिमरायौ।

---

२११. धीरत = धैर्य। वलियौ = लौट पडा। सतधारी = सत्य को धारण करने वाला। परज = प्रजा।

२१२ कटक = सेना। जगदीसर = जगदीश्वर, परमात्मा। अखवौ = अखयराज सोढा। गरवै = गभीर, निष्ठावान।

२१ . हटक्यौ = रोका, सयत रखा। ना = नही। हेरी = देखी, दृष्टि डाली। फिकर = फिक्र, चिन्ता। भुजन = भजन। असतूत = स्तुति। भाखी = कही। रघुवर = भगवान राम। भरोसौ राखी = भरोसा रखते हुए।

२१४ धरणीधर = धरती को धारण करने वाला, ईश्वर। मोटा धणी = बडे स्वामी, महान् आत्मा। सरणाया साधार = शरण मे आये हुए का आधार, शरणागत-वत्सल, ईश्वर। अर गजण = शत्रुओ का नाश करने वाला। देयण इला = पृथ्वी का प्रदाता। किसन मुरार = भगवान श्री कृष्ण मुरारि।

२१५ कच्छ = कच्छप अवतार। मच्छ = मत्स्यावतार। कोरभ = कूर्म अवतार। वल वधण = वलि वधन, भगवान ने वामन अवतार धारण कर राजा वलि को पाताल मे वधित कर दिया था, तव से ईश्वर का एक पर्यायवाची नाम वलिवधन भी पड गया। वाराह = वाराह अवतार।

संत स्त्रियादे सांम कू धीरज सै धायौ।
सिरियादे सुत सांज रौ नीमा लगवायौ ॥१॥[२१५]
महीं सुत्त मंजार का, ऽवां ताप न आयौ।
प्रैळादै तद पूछियौ ध्यांन कैरौ धायौ।
उडग्ग रखेसुर आपके मन सोच न मायौ।
भूपत सुत्त भणीजवा आगळ मुज आयौ ॥२॥[२१६]
पड़दै ले प्रैळाद कूं गुर ग्यांन बतायौ।
प्रैळादै हर जप्पियौ राकस रीसायौ।
कोपे राकस पूरकस ऽयूं मारण आयौ।
कहियौ थारौ रांम किथ अै जाब कहायौ ॥३॥[२१७]
मो मे तो मे खभ में गुण ऐसे गायौ।
ऽयूं करतां छिन एक में थंभौ बड़ड़ायौ।
लाल सुरंगी लोयणां सिंघ रूप सजायौ।
हर नाहर के रूप हुय अर मारण आयौ ॥४॥[२१८]
नख सूं दांणव चीरियौ प्रैळाद बचायौ।
गज कूं तातव ग्रेहियौ, गज यूं गरळायौ।

---

२१५. स्त्रियादे=सिरियादे नामक एक भक्त नारी। साम=स्वामी, ईश्वर। धायौ=ध्यान किया, भजन किया। साज=साझ। नीमा=कुम्हार द्वारा बर्तन पकाया जाने का अग्निकुण्ड विशेष, जिसमे मिट्टी के कच्चे बर्तन कई दिनो तक रख कर पकाये जाते हैं।

२१६ मही=अन्दर। सुत्त=बच्चे। मजार=मार्जारी, बिल्ली। ऽवा=उनको। ताप=अग्नि की आँच। प्रैलादे=भक्त प्रह्लाद। कैरौ=किसका। उडग्ग=[स० उड्डीयन] हठयोग का एक बध वा क्रिया, जिमके द्वारा योगी उडते हैं, कहते हैं कि इसमे सुषुम्ना नाडी मे प्राण को ठहरा कर पेट को पीठ मे सटाते हैं और पक्षियो की तरह उडते हैं। भणीजवा=पढने के लिये। आगल=आगे, सामने। मुज=मेरे।

२१७. पडदै=पर्दे मे। प्रैलाद=भक्त प्रह्लाद। गुर=गुरु। ग्यान=ज्ञान। हर=हरि, ईश्वर। राकस=राक्षस, हिरण्यकश्यपु।

२१८. खभ=स्तभ। थभौ=स्तभ, खभा। वडडायौ=किसी भारी वस्तु के फटने की ध्वनि विशेष। लोयणा=लोचन, नेत्र। सिंघ रूप=सिंह स्वरूप, नृसिंहावतार। नाहर=सिंह। अर=अरि, शत्रु।

२१९ दाणव=दानव, भक्त प्रह्लाद का दुष्ट पिता हिरण्यकश्यपु। तातव=ततुवा, एक वड़ा जल जंतु, जिसे ग्राह भी कहते हैं। उसने एक हाथी को...

ममो न आयौ मुवख सै नासा ररराग्यौ।
तिरण वेळा गोपाळ तूं घर पैंडै धायौ ॥५॥[२१६]
ऊंतावळ सूं आवतां कर चक्र चलायौ।
तोड़े दांरगव तांतवौ गजराज छुड़ायौ।
छींपे हंदौ झूंपड़ौ छिन मांय छजायौ।
हर 'करमा' रै हेत सूं खीचड़ तै खायौ ॥६॥[२२०]

जल मे पकड कर मारना चाहा, परन्तु हाथी पूर्व जन्म का भक्त था, अत उसने 'राम' शब्द कहना चाहा और 'र' की ध्वनि के साथ ही भगवान विष्णु गरुड को छोड कर पैदल ही भागे और भक्त गजराज की. रक्षा की थी। ग्रेहियौ=ग्रहित किया, पकडा। गरलायौ=दबी हुई आवाज मे करुण-क्रदन करना, दवे कठ से रोदन की ध्वनि करना। ममौ=मकार, 'म' अक्षर। नासा=नाशिका। ररराग्यौ=रकार की ध्वनि की जिसमे 'राम' शब्द का स्मरण करने की चेष्टा थी। गोपाल=भगवान श्रीकृष्ण। पैंडै=पैदल ही। धायौ=भागे, दौडे।

२२०. चक्र=सुदर्शन चक्र। छीपै हदो झूपडौ छिन माय छजायौ=नामदेव नामक भक्त छीपा था, जिसका झोपडा एक दिन सहसा जल उठा। भक्त छीपे ने आग को बुझाने की अपेक्षा ईश्वर की ही ज्योति मान कर दण्डवत करनी शुरू कर दी। घर का तमाम सामान जल कर राख हो गया। फिर भी नामदेव अपनी भगवद्-भक्ति मे लीन रहा। उसका अनन्य प्रेम तथा अटूट भक्ति देख कर रात्रि के समय भगवान् स्वय प्रकट हुए और पूछा कि—"नामदेव! क्या तुमने अग्नि मे भी मेरा ही स्वरूप देखा?" भक्त ने प्रत्युतर दिया कि—"प्रभु! यह घर आप का ही है और आपके अतिरिक्त इस घर की ओर आँख उठाने की भी किसी को हिम्मत नही हो सकती।" भक्त से ऐसी बात सुन भगवान् गद्गद् हो गए और स्वय अपने हाथो से जैसा पहले था, वैसा ही झोपडा और घर फिर से बना दिया। यह चमत्कारिक कथा बहुत ही प्रसिद्ध है। दिल्ली का बादशाह सिकंदर लोदी भी नामदेव छीपे के चरणो मे अपना मस्तक झुकाता था। उपर्युक्त चमत्कार का वर्णन अनेक स्थलो पर हो चुका है। 'प्रेम पुकार' मे भक्त कृष्णादास छीपा कहता है—

"छीपे की छापरी नीकी छई, भव तारि के सीस उतारि के मारा।"

हर करमा रै हेत सू खीचड तै खायौ=करमाबाई नामक एक जाटनी थी, जो प्रतिदिन सवेरे जल्दी उठ कर खीच बनाती और भगवान् श्री जगन्नाथजी को चढाया करती थी। उसका ऐसा सच्चा प्रेम था कि भगवान् साक्षात् प्रकट होकर करमाबाई के हाथ की खिचड़ी खाया करते थे, ऐसा ..

सांम कबीरै संत रै, लद बा_द लायौ।
सांसौ मेटण 'सेन' रौ ऊतावळ आयौ।
खूब रछांनी खाख मां त्रप हाजर थायौ।
प्रभू भुजन सूं पडवा हथणापुर पायौ ॥७॥ [२२१]
भूधर ध्रूह भगत्त नां दिढ राज दिरायौ।
पचाळी हर पूजियौ ऐवौ फळ पायौ।
राखी ईजत रांमजी वपु चीर वधायौ।
मांण भ्रगू सुत मोड़ियौ कोमड चड़ायौ ॥८॥ [२२२]

उल्लेख अनेक भक्ति-काव्यो मे मिलता है। आज तक जगन्नाथ तीर्थ पर भगवान की मूर्ति के सम्मुख सवेरे सर्वप्रथम करमाबाई की खिचडी का भोग लगाया जाता है। करमाबाई के खीच का उल्लेख 'प्रेम-पुकार' मे इस प्रकार है—

"जो करमा घर खीच जुहारति, कौन सवाद से जीमत कारा।"

२२१ साम कवीरै सत रै लद बालद लायौ=भक्त कबीर के लिये स्वयं भगवान् बनजारा बन कर माल से भरी बालद लाये थे, ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है। सासौ=दुख, चिंता। सेन=सेन भक्त जाति का नाई था तथा बाधवगढ (बघेलखण्ड) के राजा वीरसिंह के यहाँ नौकरी किया करता था। एक दिन राजा की हाजिरी मे जा रहा था कि रास्ते मे कुछ साधु-महात्मा मिल गए। सेन भक्त अपनी नौकरी को भूल कर सतो की सेवा मे लीन हो गया। घर ले जाकर साधुओ की बडे प्रेम से आवभगत की, तथा उधर राजा की खिदमत मे अनुपस्थिति का अपराध न घोषित हो जाय, इस भय से स्वय भगवान सेन भवत का स्वरूप बना कर राजा के दरबार मे गये और राजा की हजामत बनाई थी। बाद मे सही तथ्य प्रकट होने पर यह बात लोक-प्रसिद्ध हो गई। इस कथा की ओर अन्य कवियो ने भी सकेत किया गया है, यथा—

"होइ हजाम गयौ नृप के घर, सेन खवास को कारज सारा।"

रछानी=हजामत बनाने का सामान रखने के लिये चमडे से बनाया हुआ एक थैला विशेष, जिसे नाई अपनी बगल मे लटकाये फिरता है। खाख=बगल। भुजन=भजन। पडवा=पाँडवो ने। हथणापुर=हस्तिनापुर।

२२२ भूधर=ईश्वर। ध्रूह भगत्त=ध्रुव भक्त। दिढ=दृढ। पचाली=द्रौपदी। ऐवौ=ऐसा। ईजत=इज्जत। रांमजी=भगवान श्री राम। माण=अभिमान, गर्व। भ्रगू सुत=भृगु मुनि के पुत्र श्री परशुराम। कोमड=धनुष, शिव-धनुष।

तूज तणौ चिरतां तणौ केइ पार न पायौ।
चित्त विचार 'चिमन्न' कै रुघपत रीजायौ।
यूं 'अखमाल' जगाहरौ, वेसास वंधायौ॥९॥[२२३]

दुहौ

'अखैराज' असतुत करै, सिमर सांम इण साज।
कर वदन सेवन कियौ, राज दियौ रुघराज॥१॥[२२४]

छंद वेअखरी

'अखवौ' भूप धाट धर आया।
लसकर भ्रात मनाए लाया।
राज तिलक बैठो राजेसर।
किरता तणी भगत साची कर॥१॥[२२५]
ज्या सुत 'खांन' जोरवर जंगां।
आभोपन धारण बळ अगां।
दूजौ 'सेरसिंघ' वरदाई।
सूरत मूरत देव सवाई॥२॥[२२६]
'हाथीसिंघ' तीजौ सुत होई।
जग वाखांण करत है जोई।

---

२२३. तूज तणौ=तेरे वाले, आपके। चिरता=चरित्र। केई=किसी ने। चिमन्न=सोढायण के कर्त्ता कविवर श्री चिमनजी कविया। रुघपत=रघुपति, भगवान श्रीराम। रीजायौ=रंजित किया, प्रसन्न किया। जगाहरौ=वीर जगमाल का पौत्र। वेसाम=विश्वास।

२२४. असतुत=स्तुति। सिमर=स्मरण करते हुए। इण साज=इस प्रकार। सेवन=सेवा। रुघराज=रघुराज, रघुपति, भगवान श्री राम।

२२५ लसकर=लश्कर, सेना। मनाए=राजी करके। राजेसर=राजेश्वर, भक्तवर सोढा अखयराज। किरता=करतार, परमात्मा। भगत=भक्त।

२२६ ज्या सुत=जिसका पुत्र। खान=सोढा अखयराज का प्रथम पुत्र खानुसिंह। आभोपन=अनुपम, अत्यत। दूजौ=द्वितीय, दूसरा। सेरसिंघ=अखयराज का द्वितीय पुत्र शेरसिंह सोढा। मूरत=मूर्ति, देह। देव सवाई=देवता से भी बढकर।

२२७. हाथीसिंघ=सोढा अखयराज का तृतीय पुत्र हाथीसिंह। वाखाण=वखान, कीर्ति।

चौथै 'माहब' घरा प्रौहचाळौ।
राजेसुर बिरदां रखवाळौ ॥३॥[२२७]
बळ दळ साबळ वीजळ बंधी।
सह जिरा पाय लगाया संधी।
हिंदू धरम दांन पुन हाथां।
भड़ नह नमियौ वड भाराथां ॥४॥[२२८]

छंद पधरी

नर समर वीर नमियास नांय।
'मासीग' प्रगट दस देस मांय।
जिरा किया रहुम्मां प्रथम जेर।
घरा भोम लीध खग पांरा घेर ॥१॥[२२९]
नर वीर भोजराजां निमाय।
धर लीध खाग पांरगां धकाय।

---

२२७. माहब = सोढा अखयराज का चतुर्थ पुत्र महासिंह, जो बड़ा वीर पुरुष था। राजेसुर = राजेश्वर। बिरदा = विरुद। रखवाळौ = रक्षक।

२२८ बल दल = सैन्य बल। साबल = सबल, अत्यंत। वीजल = तलवार। पाय = पैरो मे। संधी = वीरत्त्व का लोहा मानते हुए संधि करना। वड भाराथा = बडे युद्धो मे।

२२९. समर = युद्ध। नमिया = झुके। नाय = नही। मासीग = महासिंह सोढा, जो अखयराज का पुत्र था। दस देस = दश देश, भारत मे पहले अलग-अलग प्रदेशो को देश कहा जाता था और उस समय प्रसिद्ध दश देश थे, वह उक्ति तव से अनेक वर्षो तक उसी रूप मे प्रचलित रही। रहुम्मा = मुसलमानो की एक जाति विशेष। जेर = परास्त। घरा = घनी, अधिक। भोम = भूमि। पारा = शक्ति।

२३०. भोजराजा = भोजराज सोढा, जो चंद्रसेन (जोधपु महाराजा सूरसिंहजी के स्वसुर) का पुत्र था और उसके वंशज भोजराज सोढा कहलाये। भोजराजो के मुख्य ठिकाने उमरकोट इलाके मे छोल, खुहडा और ठिगारी हैं। लीध = ली, प्राप्त की। खाग पारा = तलवार की शक्ति से। धकाय = विपक्षियो को पीछे खदेड़ते हुए।

कर डकर अरां सूं जंग कीध।
लड़ अडर नदां सूं भोम लीध ॥२॥[२३०]
जोरावर समहर खाग जोर।
झगर तर गिरवर पिछम झोर।
जिण कीनौ कांकड़ अनड़ जेथ।
.. . . ॥३॥[२३१]
हज्जार पात सरणं हजूर।
दे रीझ करै दाळद्द दूर।
भूपाळ कंवर किरणाळ भाय।
सुनमुक्ख जेण देवी सिहाय ॥१०॥[२३२]
जगपती बाप बेटास जोड़।
कीज्योस राज वरसां किरोड़।
सल्लांमकोट थाहर समाज।
राजद्र अवच्चळ करौ राज ॥११॥[२३३]
महारती राखियौ अती मांन।
दाखियौ ग्रथ कव 'चिमन दांन'।
'सिवदांन घड़ै' कवियौ सु जांण।
वाचिया जेण ऐसा वखांण ॥१२॥[२३४]

---

२३०. डकर = ललकार। अडर = निडर, निर्भय। नदां = एक जाति विशेष।

२३१ जोरावर = शक्तिशाली। पिछम झोर = पश्चिमी क्षेत्रों को झकझोरता हुआ। काकड = सीमा, सरहद। अनड जेथ = जहाँ पर पहाड स्थित है।

२३२. हज्जार पात = हजारो कवि। सरणै = आश्रय मे। दालद्द = दरिद्र। भूपालकवर = राजकुमार। भाय = भाँति। सुनमुक्ख = सन्मुख। जेण = जिसके। देवी = शक्ति, दुर्गा। सिहाय = सहायक, रक्षक।

२३३. जगपती = युगाधार। जोड = जोड़ी। कीज्योस = कीजियेगा। राज = राज्य। किरोड = क्रोड। सल्लामकोट = सलामकोट, जहाँ पर उक्त सोढो का प्रमुख ठिकाना था। थाहर = स्थिर, प्रमुख। राजद्र = राजेन्द्र, ठाकुर। अवच्चल = अविचल, स्थायी रूप से।

२३४. महारती = महारथी, शूरवीर। अती मान = अत्यत सम्मान। दाखियौ = कहा, सुनाया, रचा। कव = कवि। चिमनदान = ग्रन्थ के कर्त्ता श्री चिमनजी कविया। सिवदान घडै = सोढायण के कर्त्ता श्री चिमनजी गाँव बिराई

जिण पिता 'लुद्रदांनस' जांन।
दादौस प्रगटियौ 'करनिदांन'।
जिण कियौ ग्रथ आसीस जोड़।
कर राज रांण जुग्गां किरोड़ ॥१३॥[२३५]
औ ग्रंथ सांभळै नबा आज।
लख दांन समापै विरद लाज ॥१४॥
भाखियौ ग्रंथ सुण जथा भाय।
जुग क्रोड़ वरस सोभा न जाय ॥१४॥[२३६]
पढियौस नांम बुध्धी प्रमांण।
सो कवी खिमत कीज्यो सुजांण ॥१५॥[२३७]

कवत

सोढ नबा सिरदार, वडा दातार वखांणै।
प्रभा क्रीत दध पार, जबर मोटा भड़ जांणै।

.. (जोधपुर जिला) के आथूणा वास मे जन्मे थे तथा आथूणावास मे तीन धडे हैं—शिवदानजी का धडा, रामचद्रजी का धडा तथा भैरावता का धडा—इनमे शिवदानजी के धडे मे कविया लुद्रदानजी के घर इनका जन्म हुआ था। यहाँ पर 'धडे' का अर्थ किसी विख्यात पूर्वज के नाम पर बसे हुए परिवार-समूह से है। कवियौ = कविया, चारणो मे एक गोत्र का नाम।

२३५ लुद्रदानस = लुद्रदानजी, सोढायण के रचयिता श्री चिमनजी कविया के पिता का नाम। जान = जानिये। दादौ = पितामह। करनिदान = श्री करनीदानजी कविया जो लुद्रदानजी के पिता तथा चिमनजी के पितामह थे। जुग्गा किरोड = करोड युगो तक।

२३६. नबा = नबा गोत्र के सोढा, जिसमे वीर जगमाल आदि के वशज आते हैं। लख = लाख, लाखो रुपयो की सपत्ति। समापै = समर्पित करते है, देते हैं। विरद लाज = वश-परम्परागत विरुद की लाज के लिये। भाखियौ = कहा, रचा। जथा भाय = उसी के अनुसार।

२३७ पढियौ = काव्य का उच्चारण (अथवा प्रपाठ) किया। स्मरण रहे, राजस्थानी भाषा मे कविता सुनाने के लिये कविता पढना कहते है, जैसे — "जोगमाया रौ गीत पढौ" आदि। नाम = नामून, कीर्ति। बुध्धी प्रमाण = अपनी बुद्धि के अनुसार वीर-प्रशस्तिपूर्ण यह ऐतिहासिक काव्य रचा है। कवी = कविगण। खिमत = क्षमा। सुजाण = विद्वान।

२३८. वडा दातार = वडे दानी। क्रीत = कीर्ति। दध = उदधि, समुद्र। जबर = जबरदस्त। मोटा भड = महान् शूरवीर।

कही जिकां री क्रीत, 'चिमन' बुध सारू साची।
नवखडां नांमून, वडां गढ कोटां वाची।
नखतैत भूप 'जालम' नबौ, सह सोढां कुळ सेहरौ।
'मासींग' पाट 'जालम' मयंद, क्रोड़ जुगां राजस करौ ॥१॥[२३८]

दुहा

कंह तेत्रीसै वरस कब, तिथ काती सुद तीज।
सम्मत उगणीसै समै, रांण समापै रीज ॥१॥[२३९]
गांम बिराई जोधगढ, जात सु कवियौ जांण।
'चिमनौ' कीरत उच्चरै, रीजै 'जालम' रांण ॥२॥[२४०]
कव 'चिमनै' रूपग कयौ, सोढां साख सिणगार।
हू भूलौ चूकौ होऊ, सक्कव लियो सुधार ॥३॥[२४१]

॥ समत १९३३ काती सुद ३ सुभवस्तु कल्याणवस्तु दा। चिमनै रा छै श्री श्री श्री ॥

---

२३८. जिकारो = जिनकी। चिमन = कविया चिमनजी, (ग्रन्थकर्त्ता)। बुध सारू = बुद्धि के अनुसार। नामून = ख्याति, नामवरी। वाची = कही, बांचो। नखतैत = नक्षत्रधारी, पराक्रमी। जालम = सोढा जालमसिंह, जो महासिंह का पुत्र तथा अखयराज का पौत्र था। यह बडा ही वीर, दानी, काव्यानुरागी तथा सच्चरित्र व्यक्ति था। इसी जालमसिंह ने श्री चिमनजी कविया को कुछ दिनो तक अपने पास रख कर 'सोढायण' ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा दी थी, जिसका सकेत कवि ने आगे के छदो मे किया है। कुल सेहरौ = वश का शिरमौर। मासीग' पाट = महासिंह सोढा की गद्दी पर। मयद = मृगेन्द्र, सिंह, वीर। राजस = राज्य, मौज, आनन्द।

२३९. कंह = कहता है। तेत्रीसै वरस = स० १९३३ वि० मे। तिथ = तिथि। काती सुद तीज = कार्तिक शुक्ला तृतीया। सम्मत उगणीसै = सवत् उन्नीसवे मे। रीज = रीझ।

२४० गाम विराई = विराई नामक गाँव, जो जोधपुर जिले की शेरगढ तहसील के अतर्गत् आया हुआ है तथा कविया चारणो की शासन-जागीर का गाँव है। इसी गाँव मे कविया चिमनजी का जन्म हुआ था, अतः अपना पता प्रकट करते हुए मातृभूमि की ओर सकेत किया है। जोधगढ = जोधपुर राज्य। जात = जाति, गोत्र। कवियौ = कविया गोत्र। चिमनौ = 'सोढायण' का कर्त्ता श्री चिमनजी कविया। कीरत = कीर्ति। रीजै = रीझता है, प्रसन्न होता है।

२४१. रूपग = रूपक, कीर्ति, प्रशस्ति-काव्य। कयौ = कहा, रचा। सोढा साख....

दुहा

सोढायरण गुण तीन सौ, तव परियां तेतीस।
वीदग 'चिमन' वखांणिया, वेहद विसवा वीस ॥१॥[२४२]
तेत्रीसां दादां तणा, जस सांभळ जुधजीत।
ज्यांरै ऊपर 'जालमै', कळस चढायौ क्रीत ॥२॥[२४३]
सोय नबा-गुण सांभळै, मौजां दै मघवांण।
कोई नाकारौ करै, जकौ नबौ नह जांण ॥३॥[२४४]
तेत्रीसां पीढी तणौ, वरणे कियौ विचार।
धजबधी च्यारां धुड़ा, सैगां रा सिणगार ॥४॥[२४५]
'पांचां' 'देवा' 'रायबां', 'वांकां' सुणौ वखाण।
दादां री जस दाखियौ, पोतां लाज प्रमांण ॥५॥[२४६]

.. सिणगार = सोढो की शाखा (गोत्र या जाति) का शृंगार रूपी यह 'सोढायरण' ग्रथ। हू = मै। सक्कव लियो सुधार = सुकवि-गण ! इसे सुधार लेना।

२४२ सोढायरण गुण तीन सौ = सोढायरण मे कुल ३०० गुण गर्भित छद हैं। स्मरण रहे, तीन सौ मे जितने छद कम पडते हैं, वे मूल प्रति मे से खडित हो चुके हैं। तव = स्तव, कहना। परियां = पूर्वज। वीदग = चारण। विसवा वीस = बीस बिसवा, पूर्ण तौर से।

२४३. तेत्रीसा दादा तणा = सोढो के कुल ३३ विख्यात पूर्वजो तक का वर्णन। जस = यश। जुवजीत = वीर, पराक्रमी। जालमै = सोढा जालमसिंह ने। कलस = कलश। क्रीत = कीर्ति।

२४४. सोय = जो भी। गुण = कीर्ति। मघवाण = इन्द्र के सदृश। नाकारौ = इन्कार करना, मना करना। नबौ = नबा गोत्र का वशज।

२४५ वरणे = वर्णन करते हुए। धजबधी = धजाबध ठिकाना, जिन्हे अपनी अलग पताका फहराने का अधिकार हो। च्यारा धुडा = चारो धडो (सगोत्रीय परिवार समूहो) मे। सैगा रा सिणगार = सभी के शृगार अर्थात् सब की यथोचित महिमा व्यक्त करना।

२४६. पाचा = सोढा पचायण वैरसीहोत के वशज। देवा = देवा सोढा के वशज, यह देवा पचायण का भाई तथा वैरसी का पुत्र था। रायवा = सोढा रायसिंह, जो वैरसी का पुत्र तथा पचायण व देवा का भाई था। उस रायसिंह के वशज रायव सोढा कहलाये। वाका = वांका नामक सोढा, जो वैरसी का चतुर्थ पुत्र था। उसके वशज वाका गोत्र के सोढे कहलाये। दादां = पितामह। पोता = पौत्र।

औ 'सोढायण' ग्रंथ है, औ परियां विसतार।
सह को सोढा साभळो, साख नवां सिणगार ॥६॥[२४७]
सोढायण सोढा तणौ, सुणौ सको सिरदार।
देग तेग दातारपी, मोटा है परमार ॥७॥[२४८]
हस पसाव वीकम दियौ, दियौ सीस जगदेव।
पनरै सौ दीना पमंग, सोढ खींवरै सेव ॥८॥[२४९]
ज्या हदी औलाद रौ, ह्वै सो जोड़ै हाथ।
मागण नै मनमांगियौ, अजे समापै आथ ॥९॥[२५०]

---

२४७. विसतार = विस्तार। सह को = सभी, समस्त। नवा = नवा गोत्र के सोढे।

२४८. देग नेग = देना तथा कृपाण अर्थात् उदारता एव वीरता। दातारपी = दानवीरता। परमार = क्षत्रियो की अत्यत प्राचीन जाति परमार है तथा इन्ही परमारो मे से आगे ३५ शाखाएँ वनी।

२४९ हस पसाव = प्राण दान। वीकम = वीर विक्रमादित्य। जगदेव = जगदेव परमार, जिसने ककाली भाटनी को शीश-दान कर दिया था। यह घटना स० ११९१ वि० चैत्र के महीने की है, जिसके प्रमाण का यह दोहा पुरानी वातो मे लिखा मिलता है—

'सवत इग्यार इकाणवं, चैत तीज रविवार।
सीस ककाली भट्ट नै, जगदे दियौ उतार॥'

पमग = घोडे। खीवरै = सोढा राणा खीवरा, जो अत्यंत दानी पुरुष माना गया है तथा आज भी लोकगीतो के माध्यम से गाया जाता है। नैणसी की ख्यात मे इसे दुर्जनसाल का पुत्र माना है तथा सोढायण मे दुर्जनसाल का उत्तराधिकारी अवतारदे को माना है। खीवरा सोढा मे कवि अपरिचित नही है, क्योंकि यहाँ उसके द्वारा १५०० घोडो के दान करने की वात का स्पष्टीकरण हुआ है, ऐसी हालत मे खीवरा राजा था अथवा राजा का कोई अलवेला एव मनमौजी भाई, इसके विपय मे निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है।

२५०. ज्या हदी = इनकी। मागण = मार्गण, वाण, चारण। चारणो के लिये चारण वाण कहा जाता है, क्योकि वे जो भी वात कहते है, वह तीर की तरह सीधी और दिल मे चुभ कर असर करने वाली होती है। इस पर्यायवाची शव्द से चारणो की निर्भीकता तथा प्रभविष्णुता सिद्ध होती है। अजे = अभी तक। आथ = अर्थ, धन।

सोढां कीरत सांभळौ, वड मौजां वरसीस।
कवियण 'चिमनौ' यूं कहै, अमर नांम आसीस ॥१०॥[२५१]
सोभ पुराणी साभळी, लोका वांणी लोय।
देखी जेहड़ी दाखवी, हमकू दोस न होय ॥११॥[२५२]
आयौ मुरधर सू अठै, 'चिमनौ' कवी विचार।
जोड़ कराई 'जालमें', दांन पांण दातार ॥१२॥[२५३]
धिन 'जालम' 'मासींग' धिन, धिन 'अक्खौ' 'जैसींग'।
कवियां ग्रथ कहाडियौ, सुण अंजसै तिरसींग ॥१३॥[२५४]
वडा सोढ वाखांणजै, जिका जीतिया जग।
कव नैं ग्रंथ कहावियौ, रग हो 'जालम' रंग ॥१४॥[२५५]

॥ इती सोढायण ग्रथ सपुरण ॥

---

२५१. वरसीस = प्रदान करने वाले। आसीस = कवि के द्वारा वीर क्षत्रियो को अमर होने, फलने फूलने तथा मान-मर्यादा-पूर्ण जीवन बिताने आदि की प्रेरक आशीष दी जाती थी, जिसे वीर क्षत्रिय एव वीराङ्गनाएँ बहुत शुभ मानते थे।

२५२ सोभ = शोभा, कीर्ति। लोकावाणी = लोकवाणी, जनता के मुह की कहानी। लोय = प्रकाश-रेखा, लौ, सग्रहीत करके। दाखवी = कही। हमकू = हमको, मुझे। दोस = दोष, गलती।

२५३. मुरधर = मरुधरा, मारवाड। जोड = काव्य-रचना। दान पाण = दानवीरता के कारण।

२५४. धिन = धन्य। जालम = सोढा जालमसिंह, जो सलामकोट का निवासी तथा ग्रथकर्त्ता का आश्रयदाता भी था। मासीग = सोढा जालमसिंह का पिता महासिह। अक्खौ = अखयराज सोढा, जो महासिह का पिता तथा जालमसिंह का पितामह था। जैसीग = जयसिंह सोढा, जो अखयराज का पिता, महासिह का पितामह तथा जालमसिंह का प्रपितामह था। यही जयसिंह, वीर जगमालजी सोढा का पुत्र था। कहाडियौ = कहलाया, प्रेरणा देकर सृजित करवाया। अजसै = गर्व करते है। तिरसीग = बडे-वडे तीसमारखाँ, अत्यत पराक्रमी।

२५५ वाखाणजै = यशोगान किया है। जिका जीतिया जग = जो युद्ध मे विजयी हुए थे। कव = कवि, 'सोढायण' के कर्त्ता श्री चिमनजी कविया। कहावियौ = वनवाया। रग = धन्यवाद। राजस्थान मे मागलिक अवसरो पर अफीम-रस की पारस्परिक मनुहार के समय शूरवीरो अथवा दानवीरो के सुकृत्यो का स्मरण करते हुए जनता के ...

[श्री पिथोरा पीर की स्तुति]†

दुहा

सोढं 'दुरजरणसाल' रौ, भलां प्रगटियौ 'भांरण'।
जिरण रै 'माडरण' जलमियौ, रिधवंत सोढां रांरण ॥१॥[२५६]
'मांडरण' रै सुर जलमियौ, सौढां रै कुळ सांम।
उदर 'सोनल' रै ऊपनौ, निज भल 'पीथल' नांम ॥२॥[२५७]

छंद भुजंगी

निमो 'पीथला' पीर सोढां नरंदूं।
वडै वेग आवौ तोरा पाव वदूं।
भलौ देव सोढांरण में तूज भारी।
थियै देव औरां न को ईढ थारी ॥१॥[२५८]

... सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करते हुए उन महान् आत्माओ को 'रग' दिये जाते है। इस प्रकार के पावन प्रशस्तिमय दोहो को 'रग रा दूहा' कहा जाता है।

२५६ दुरजरणसाल = सोढा दुर्जनसाल, जो आसराव का भाई तथा धरावरोस (धरापसाव) का पुत्र था। उस दुर्जनसाल के पाँच पुत्र थे, जिनके नाम क्रमश. खीवरौ, भारण, नागड, सग्रामसी तथा केलरण थे। भारण = उक्त दुर्जनसाल का द्वितीय पुत्र भारण, जिसके माडरण नामक पुत्र हुआ। जलमियौ = जन्मा। रिधवत = ऋद्धिवान, भाग्यशाली।

२५७. सुर = देवता। कुल साम = वश का स्वामी। सोनल = पिथोरा पीर की माता तथा माडरण की धर्मपत्नी का नाम। पीथल = इसे पिथौरा पीर भी कहते हैं। यह माडरण का पुत्र, भारण का पौत्र तथा दुर्जनसाल का प्रपौत्र था। इसकी माता का नाम सोनलबाई था तथा यह एक जबरदस्त चमत्कारी हिन्दू-देव माना जाता है। राणा हमीर थिरावत के समय मे मायावी सय्यद सम्मस की हृदय-विदारक हरकतो से मुक्ति दिलाने वाला यही पिथोरा पीर था। आज भी धाट एव पारकर इलाको मे इस पीर की हिन्दू एव मुसलमान दोनो ही बडी निष्ठा से पूजा करते हैं। पिथोरा पीर का प्रमुख मदिर मीरपुर से हैदराबाद (सिंध) को जाते समय रास्ते मे पडता है, देव-स्थान के नाम पर उस स्टेशन का नाम भी 'पिथोरा' पड गया है।

२५८. पीथला = पिथोरा पीर। सोढा नरदू = सोढो मे नरेन्द्र, सोढो का स्वामी।....

---

†इस पिथोरा पीर का वर्णन पीछे पृ० ११ पर आया है। इस पीर की दैविक शक्ति ही राणा हमीर की विजय का कारण बनी। अतः कवि ने यहाँ पृथक रूप से पिथोरा की स्तुति की है।

इसी पौछ तूं वस में भांण ऊगौ।
प्रचा दे'र तू जाय मुलतांण पूगौ।
करै वादळी छांय जम्मात कापी।
सबै सग री लाज खल्लीप सापी ॥२॥[२५९]
खरौ पीर तूं गैब कप्पाट खोलै।
बिया कंपिया जोध जैकार बोलै।
लियो वाटकौ हाथ आकास लायौ।
पीरां देव नै भैंस रौ दूध पायौ ॥३॥[२६०]

.. वडै = स्तुति करने पर। वैग = शीघ्र ही। तोरा = तुम्हारे। पाव वदू = चरण-वन्दन करता हूँ। सोढाण = सोढो का क्षेत्र, जिसमे धाट तथा पारकर इलाके आते है, 'सोढाण' कहलाता है। राजस्थान के किसी प्रदेश मे सब से अधिक जो गोत्र अथवा जाति रहती है, उसी के नाम पर उस पत्रका प्राय: नामकरण हो जाता है, यथा—भाटोपा जैसलमेर), मागलियावटी, शेखावाटी, सोढाण, केलणावटी आदि-आदि। थियै = होती है। ईढ = बराबरी, समकक्षता। थारी = तुम्हारी।

२५९. पौछ = पहुँच, शक्ति, करामात। भाण = भानु, सूर्य। प्रचा = दैविक चमत्कारो को राजस्थान मे 'परचा' कहते हैं। मुलताण = मुल्तान शहर मे पिथोरा पीर के चमत्कार प्रकट हुए थे। वादली छाय = बादलो की छाया। जम्मात कापी = जमात काँप उठी। सग = सह-यात्री। खल्लीप सापी = खलीफा लोगो की जमात मे पिथोरा पीर भी जा रहे थे कि रास्ते मे धूप और प्यास के मारे लोगो के कठ सूखने लगे, ऐसी दशा मे पिथोरा ने अपने चमत्कार से बादलो की छाया करवा दी तथा शीतलता के कारण अन्य सभी फकीरो को राहत मिली। उसके ऐसे अद्वितीय चमत्कारो से जमात अनभिज्ञ थी, अत· सहसा इस तरह के विस्मयजनक चमत्कारो से वह घबरा कर काँप उठी तथा सब ने यात्री-दल की लाज का उत्तरदायित्व पिथोरा पीर के कधो पर डाल दिया। जमात के खलीफा पिथोरा की अद्भुत शक्ति देख कर प्रसन्न और प्रभावित हुए थे।

२६०. गैब कप्पाट खोलै = पिथोरा पीर को अपनी जमात के साथ जाते समय एक जगह किसी देवालय मे ठहरना था, किंतु कपाट बद थे, पिथोरा की स्तुति से ताले लगे हुए कपाट स्वत: ही खुल गये और यह ढग देखकर साथ के साधु महात्मा दग रह गये। बिया = दूसरे, अन्य। कपिया = कम्पायमान। जोध = शक्तिशाली। जैकार = जय-जयकार। वाटकौ = बाटका, काँसी का बना गोल बर्तन विशेष, जिससे दूध वगैरह पिया जाता है। पीरा देव ...

सजी हाज नै आवियौ धाट सांई।
अठै आय नै थांन माड़ी अडाई।
दियै ……… च नै दांन दाखै।
रिधू धाट री लाज तूंहीज राखै ॥४॥[२६१]
वदै 'चिमनौ' पात 'हम्मीर' वांणी।
मुजं कीजियै देवता मैरवांणी।
इती वार 'हमीर' रै साद आयौ।
खत्री 'सम्मसा' खूर मारे खपायौ ॥५॥[२६२]

दुहा

हैवर चड़े 'हमीर' नै, दीनौ पीर दरस्स।
चंचळ राणौ चड्डियौ, 'पीथल' पाव परस्स ॥१॥[२६३]
बरवाई मोटै वखत, आई सादे आव।
'अखवी' सेवग आपरौ, लोद्राणी थी लाव ॥२॥[२६४]

नै पायौ = पिथोरा पीर ने अपने चमत्कार से भैंस का दूध मंगवा कर बाटके भर-भर कर मंदिर के देवता तथा साथ के पीरो को खूब अर्पित किया।

२६१ हाज = हज। थान = देव-स्थान। माडी = एक प्रकार का देवालय। अडाई = स्थापित की। रिधू = सदैव, स्थायी रूप से।

२६२ वदै = कहता है। चिम्मनौ = कविया चिमनजी (सोढायण के कर्त्ता)। पात = चारण। हम्मीर वाणी = राणा हमीर थिरावत की ओर से की गई स्तुति। मुजं = मुझे। मैरवाणी = महरबानी, कृपा। साद = [स० शब्द] फरियाद, स्तुति। खत्री = क्षत्रिय। सम्मसा = सय्यद सम्मस, जो मायावी तान्त्रिक था तथा धाट इलाके पर चढाई करके आया और राणा हमीर ने पिथोरा पीर की सहायता से उस दुष्ट का खात्मा किया था। खूर = योद्धा।

२६३ दरस्स = दर्शन। चचल = घोडा। चड्डियौ = चढा। परस्स = स्पर्श।

२६४ वरवाई = वरदान देने वाली। मोटै वखत = बडी महत्त्वपूर्ण वेला मे। आई = शक्ति, देवी। सादे = पुकार करने पर, स्मरण करने पर। अखवी = सोढा अखयराज, जो जयसिंह का पुत्र तथा वीर जगमाल सोढा का पौत्र था। सेवग = सेवक, पुजारी। लोद्राणी = लोद्राणी नामक वाघेला (राठौड) क्षत्रियो का एक गाँव, जहाँ पर भक्तवर श्री अखयराज सोढा का ननिहाल था। थी = से। लाव = लाइये। मालणा = माल्हण देवी जिसका प्रमुख स्थान विराई गाँव मे है। इसका जन्म स० १४९१ वि० के मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को जोधपुर जिले के भाडू नामक गाँव मे हुआ था। …

छंद भुजंगी

देवी मालरण देव निम्मांम अंबा ।[†]

दुहौ

'मालण' नित राखै मया, दया करै जगदेव ।
राज अमर 'अखैराज' रौ, सह नर करसी सेव ॥१॥[२६५]

॥ इती असतूत सपुरणं ॥

सिवराज सादूल जुध लिखते [‡]

छंद त्रोटक

'सिवराज' चढ़ै 'कुसळेस' सुत ।
प्रजपाळग रांण चेलार पतं ।

.. माल्हण देवी के पिता का नाम दूल्हा तथा पितामह का नाम आल्हा था। इनका विवाह बिराई के कविया टीकमजी के साथ हुआ था, किन्तु भाँवर (चवरी) मे ही गायो की रक्षार्थ फरियाद सुन कर टीकमजी लुटेरो से जूझने चले गये और वहाँ पर अपने आश्रयदाता तोलाजी सूडा (राठौड) के पुत्र राणाजी के मारे जाने पर दु ख से विकल हो गले मे कटारी खाकर काम आ गये थे। आज टीमकजी एव माल्हणदेवी दोनो ही आराध्य देव के रूप मे बिराई गाँव मे पूजे जाते हैं। 'सोढायरण' के कर्त्ता श्री चिमनजी कविया की आराध्य देवो होने के नाते कवि ने अखयराज सोढा के द्वारा की गई देवी-स्तुति मे प्रथम पक्ति मे ही माल्हण देवी का स्मरण किया है। निम्माम = नमामि ।

२६५. मालण = माल्हण देगी। मया = कृपा। अखैराज = सोढा अखयराज। सह = सब। सेव = सेवा, स्तुति ।

२६६ सिवराज = सादूल गोत्र का सोढा शिवराज, जो गाँव चेलार (उमरकोट इलाका) का निवासी तथा कुशलसिह सोढा का पुत्र था। वह गोधन की रक्षार्थ बलोच लुटेरो से भिडत करता हुआ काम आया था। यह वीर जममाल सोढा का समकालीन था। कुसलेस = कुशलसिह सोढा, जो शिवराज सादूल का पिता था। सुत = सुत, पुत्र। प्रजपालग = प्रजा-पालक। चेलार पत = चेलार नामक गाँव का स्वामी ।

[†] ये १५ छद थे, बीच के पन्ने गायब हैं।

[‡] पीछे के पृ० ३२ पर छद स० १२८, १२९ में शिवराज सादूल के युद्ध का प्रसङ्ग है, उसी का पृथक वर्णन यहाँ पर किया गया है।

घण तेड़ैय बंधव साथ घणा।
तपधार सबै 'अखमाल' तणा ॥१॥[२६६]
मिळ थाहर 'हापाय' आप मला।
'भैरवांणिय' 'रायब' जोध भला।
खग 'भाजरांमेण' 'रुणा' सखरा।
'रढरांमण' एताय 'मांणक' रा ॥२॥[२६७]
चढ 'भाखर' एताय खूर चड़ै।
असणां दळ धाह करूर पड़ै।
'जगमाल' 'गोपा' 'जोगदास' जिसा।
अडपायत 'लाखाय' जोध इसा ॥३॥[२६८]

---

२६६ तेडैय = बुलाते है, आमन्त्रित करते हैं। तपधार = तपधारी, प्रतिभाशाली। अखमाल = सोढा अखा के वशज। अखमाल गोत्र के सोढो की टिप्पणी पृष्ठ ३७ पर दी जा चुकी है।

२६७. थाहर = स्थायी, वीर पुरुष। हापाय = राणा चापा के गांगा, हापा एवं सूरजमल आदि पुत्रो मे हापा के वशज 'हापा' गोत्र के सोढा कहलाये। रूपा नामक हापा के पाटवी पुत्र हुआ। मला = मालदेव सोढा के वशज 'मल्ला' कहलाये। 'मला' का अर्थ सभवतः मल्ल से हो, जिसका अर्थ वीर अथवा दगल करने वाला होता है। भैरवाणिय = भैरसिंह सोढा के वशज 'भैरवाणी' गोत्र के सोढा कहलाये। रायब = वैरसी का पुत्र तथा नबा का पौत्र रायसिंह के वशज 'रायब' सोढा कहलाये। जोध = योद्धा, जोधा गोत्र के सोढे भी हैं, जिनके लिये भी सभवत जोध कहा हो— (देखिये—टिप्पणी पृष्ठ स० ३४ पर)। भाजरामेण = सोढो का एक गोत्र। रुणा = सोढो का एक गोत्र। सखरा = श्रेष्ठ, अच्छे। रढरांमण = सोढो का एक गोत्र। माणक रा = वैरसी हमीरोत के पुत्र माडण का प्रपौत्र शिवराज था। इस शिवराज के रायमल्ल, रतनसी, कल्ला, नैणसी व माणकराव, ये पाँच पुत्र हुए। इन पाँचो मे माणकराव के वशज 'माणक' अथवा 'माणक रा' कहलाये।

२६८. भाखर = नवा के पुत्र वैरसी के ४ पुत्रो मे पचायण पाटवी था। इस पचायण का पाटवी पुत्र भाखर था, जिसके वशज 'भाखर' गोत्र के सोढा कहलाये। असणा = मुसलमान, विधर्मी, शत्रु। धाह = मार, जबरदस्त हमला। करूर = उग्र, तेज। जगमाल = वीर जगमाल सोढा जो रायसिंह का पुत्र तथा जयसिंह का पिता था। गोपा = एक सोढा, का नाम। जोगदास = वीर जगमाल के समकालीन एक सोढा का नाम।...

चढवै 'गनदास' 'खिया' चढिया।
मछराळ 'देवा' लज मे मढिया।
चढ एम 'सिया' रिण खेत चलै।
हुसियार. हुवा दळ पूर हलै ॥४॥[२६६]
दळ मेळ 'सिवौ' चढियौ दळ सू।
बिजड़ां कस जोध घणै बळ सू।
दळ वादळ फौज इसी दरसै।
सुरनायक हूंत घणी सरसै ॥५॥[२७०]
भिड़जां कर पाखर भारथ सा।
पौहु साज बगत्तर पारथ सा।
खड़िया धजराज सकाज खरा।
वैहतां सिर धूजेय वासग रा ॥६॥[२७१]

...अडपायत = अडेल, अत्यन्त वीर। लाखा = लखा नामक सोढा के वशज लाखा गोत्र के सोढा कहलाये।

२६९. चढवै = युद्ध के लिये घोड़ो पर चढ रहे हैं। गनदास = एक सोढा का नाम जिसके पीछे उपगोत्र बन गया। खिया = खीया सोढा के वशज। = वीर। देवा = वैरसी के पुत्र तथा नबा के पौत्र देवा के वशज 'देवा' गोत्र के सोढा कहलाये। लज मे मढिया = वश-परम्परागत लाज अथवा मर्यादा मे मडित। सिया = क्षत्रियो की एक शाखा। हुसियार = सावधान, सचेत।

२७०. सिवौ = शिवराज सादूल। बिजडा = तलवारे। दल वादल = बादलो के अनुमान सेना का अपार दल, लोह के कवच धारण किये हुए योद्धाओ के दल को काले बादलो की उपमा दी जाती है, अत: 'दल वादल' कहा गया है। दरसै = दिखाई देती है। सुरनायक = इन्द्र। सरसै = सरसती है, शोभा पाती है।

२७१ भिडजा = घोडे। पाखर = घोडो की पीठ पर कसा जाने वाला रक्षात्मक उपकरण विशेष, जिसे 'पाखर' कहते हैं। भारथ सा = महाभारत के सदृश। पौहु = [सं० प्रभु] राजा, सरदार, ठाकुर। वगत्तर = वख्तर, कवच। पारथ = पार्थ, अर्जुन। धजराज = घोडे। सकाज = लक्ष्य सहित। वैहता = चलते हुए। वासग = शेषनाग।

इण रीत उतावळ धार अंगां।
जिणवार जोधार सकोड जंगां।
धण जाय न ऊभांय आप धणी।
अस वाग उपाड़ैय मेळ इणी ॥७॥[२७२]

छंद पधरी

उप्पाड़ वाग 'सिवराज' अेम।
जुध वार भद्रवीरांण जेम।
कर कर सक्रोध जूटा कंठीर।
विळकुळे हसै बावन्न वीर ॥१॥[२७३]
'सिवराज' आज कोपै सदूळ।
मेछांण गमण दळ जड़ा मूळ।
तरवार धार कर मूंछ तांण।
रिण जग रंग सादूळ रांण ॥२॥[२७४]
जड़ त्रजड़ सूर कड़कै जंजाळ।
ढह पड़ै वडफरां टूक ढाल।
खोसां दळ ऊपर करै खीज।
वैह खाग लाग कड़कै क वीज ॥३॥[२७५]

---

२७२ सकोड जगायुद्ध के लिए = हर्ष एव उत्सुकता धारण किए हुए। धण = धन, मवेशी, गोधन। ऊभाय = खडे रहते हुए, उपस्थिति मे। अस वाग = घोडो की लगामे। मेल इणी = भालो की नोक से नोक भिडाते हुए।

२७३. भद्रवीराण = वीरभद्र, महादेव का एक प्रमुख गण। कठीर = कठीरव, सिंह। विलकुलै = एक दूसरे के निकट आते हुए। बावन्न वीर = बवना वीर, जो युद्ध के देवता माने जाते हैं। बावन भैरव तथा चौसठ योगिनियो का वर्णन डिंगल के वीर-काव्यो मे स्थान-स्थान पर मिलता है।

२७४ सदूल = सादूल गोत्र का सोढा। मेछाण = म्लेच्छ, विधर्मी। गमण = खोने के लिये, काटने के लिये। सादूल राण = सादूल गोत्र का सोढा शिवराज।

२७५ जड = प्रहार करके। त्रजड = तलवार। सूर = शूरवीर। कडकै जजाल = पल तेदार बदूक विशेष जिसके छूटने पर कडकडाहट की ध्वनि होना। वडफरा = कवच, ढाल। टूक = टुकडे। खी = क्रोध। वैह = चलती है। कडकैस वीज = तलवारो के तेज प्रहार ऐसे लगते हैं, मानो बिजलियाँ कौंध रही हो।

धूंवा रव नाळी अती घोम ।
भैभीत रीत वड़कैस भोम ।
तरवार बरच्छै तीर तांण ।
जोधार नीछटै जांण जांण ॥४॥[२७६]
बौ छूट छ्रोण धरती बंबोळ ।
चहुं दिसा रंग दीसंत चोळ ।
पीवैस जोगणी पत्र पूर ।
समसेर धर पड़ै बजर सूर ॥५॥[२७७]
नीध्रसै ढोल डंका निसांण ।
वारंग आय ठहकै विवांण ।
जुध होय सरायां एक जांम ।
कट थाट केक आयास कांम ॥६॥[२७८]
घड़छिया असुर ग्रीधां धपाय ।
उण ठौड़ सीव 'सिवराज' आय ।
'सिवराज' खेत जीतौ सदूळ ।
मेछांण वाढिया जड़ा मूळ ॥७॥[२७९]

---

२७६. रव = शब्द, आवाज । नाली = बन्दूकें । घोम = विकट, धूम । भैभीत = भयभीत । घडकैस = धडकती है । भोम = भूमि । बरच्छै = बरछियां, लोह का छोटा शस्त्र विशेष । नीछटै = तेज प्रहार करते हैं ।

२७७. बौ = बहुत । छ्रोण = शोणित, रुधिर । बबोल = लाल, सराबोर, गरकाव । चोल = लाल रग । जोगणी = योगिनियाँ । बजर सूर = वज्र के सदृश मजबूत योद्धा ।

२७८. नीध्रसै = निर्घषित होते हैं, जोर से आवाज करते है । निसाण = नगाडे । वारग = अप्सरा । विवाण = विमान । सराया = बलोच जाति के मुसलमान लुटेरे जिन्हे सराई कहते है । जाम = याम, प्रहर । थाट = सेना । आयास काम = काम आये, वीरगति को प्राप्त हुए ।

२७९. घड़छिया = काट डाले, पछट-पछट कर मारे । असुर।विधर्मी, लुटेरे । सराई । ग्रीधा = गिद्ध । सीव = (?) शिव के सदृश वीर, शायद 'सीव' का अर्थ 'सीव' से हो जिसका अर्थ होता है सीमा या हद । शिवराज ने अपनी सीमा से बाहर शत्रुओ को खदेड दिया तथा गायो को छुड़ा कर वीरगति को प्राप्त हुआ ।

विढ पड़ै कवर खागां वजाय।
वरमाळ अबछरां लै वधाय।
धेनां छुडाय ग्यौ सुरां धांम।
नरियंद कियौ चहुं कूंट नांम ॥८॥[२८०]
.... †

---

२८०. विढ = युद्ध करके, जूझ कर। कवर = शिवराज सादूल काम आया, उस समय कुवर पद मे ही था, पिता कुशलसिह के जीते जी उसके पुत्र ने धर्म की रक्षार्थ ऐसा अद्भुत शौर्य दिखाया था। सुराधाम = स्वर्ग। नीरयद = नरेन्द्र। चहु कूट = चारो दिशाओ मे।

---

† इसके आगे 'शिवराज सादूल युद्ध' का अश अप्राप्य है।

परिशिष्ट १

कविया चिमनजी कृत

सम्मां रा झूलणा

।। श्री रामजी सत छै ।। अथ झूलणा समा रा लिखतै ।।

दुहौ

आद सगत दीजे उकत, सुण रीजे सुरराय।
गुण संमातर गावसू, आपे बुद्ध अपार ।।१।। [१]

झूलणा

आद सगत्ती ईसरी, करनल्ल क्रपा कर।
कीजे स्याय कवेसरां, दीजे सुध अचर।
एकदता गुण अप्पिये, गवरी का पुत्तर।
रिध सिध आगेवाण रह, दीवाण लबोदर।
वाण व्रवीजे वीदगां, गुण जाण गुणेसुर।
राण समा रीझावसू, कुल भांण दिनकर।

---

१. आद सगत = आदि शक्ति, हिंगुलाज। उकत = उक्ति। रीजे = प्रसन्न होना। सुरराय = देवी, शक्ति। समांतर = सम्मा जाति के यादव क्षत्रिय होते हैं, जिनमे कई तो मुसलमान बन गये थे। भारतवर्ष पर मुसलमानों का लम्बे अर्से तक आधिपत्य रहने से अनेक क्षत्रिय वश उनके प्रभाव मे आ गये थे। परमार, चौहान, परिहार, खीची, सोलकी, तुवर, भुट्टा, सम्मा, जोइया, दहिया, आदि बडी प्रसिद्ध राजपूत कौमे मुसलमान बन गई थीं और इन्हीं नामों से पुकारी जाती है। यहाँ पर 'सम्मा' जाति के यदुवशियों की शौर्य एवं औदार्य भरी गाथा का उल्लेख किया गया है। सिंध का विख्यात दानवीर ऊनड जाम भी इसी वश में हुआ था और ये सम्मा शुरू से हो काव्य और कीर्ति के बड़े प्रेमी रहे हैं। आपे = अर्पित करना, दीजिये।

२. अंचर = अक्षर। एकदता = गणेश। गवरी = गौरी, पार्वती। आगेवांण = अगुआ। वांण = वाणी। व्रवीजे = प्रदान कीजिये। गुणेसुर = गणेश, गजानन।

राज समा खित सामही, निज थड स नग्गर।
जे कुल 'उनड' जेहडा, पिछमाण अपपर।
नग्गर ठट्ठौ नीपणा, सासण दै सद्धर।
आठ क्रोडा दत अप्पियौ, चढतै दिन पौहर।
जे कुल 'विकियै' जेहडा, जलमे जोरावर।
पीलू दान समापिया, वीरत पीरावर।
सम्मा 'सप्पड' सारखा, प्रतपाल प्रथी पर।
चाढे पगा चारणा, सुखपाल कवेसर।
जे कुल राव 'खगार' सा, गिरनार तणै गिर।
राव 'देवायच' सारखा, जूनैगढ सैहर।
माथा दीना मागिया, नह कीना उत्तर।
जे कुल 'गाहै जाम' सा, सिंदू पत जब्बर।

---

२ खित = क्षिति, ठिकाना। सांमही = सिंध प्रान्त का एक गाँव, जो सम्मा जाति के यादवो का बहुत प्रसिद्ध ठिकाना है। थडस नग्गर = नगर पारकर का का इलाका। ऊनड जाम = यह बडा दानी पुरुष था और सात ही सिंधों का राज्य सावल सुध नामक चारण को दान मे दे दिया था। उसी विषय का एक दोहा प्रसिद्ध है .

'माई एहा पूत जण, जेहा ऊनड जाम।
दीधी सातूं सिंध इम, जिम दीजे हिक गाम ॥'
[कविराजा बांकीदासजी]

अपपर = अपार, विस्तृत। नग्गर ठट्ठौ = ठट्ठा नामक एक नगर, जो सिंध मे आया हुआ है। नीपणा = निपुण, चारण कवि। सासण = शासन जागीर। सद्धर = श्रेष्ठ। पोहर = प्रहर। विकियै = वीका नामक जांम (यादव) बडा दानी हुआ है, उसने कवियो को अनेक हाथी दान मे दिये थे। वीके के पिता का नाम पन्ना था अत वीका पनुआणी के नाम से विख्यात है। पीलू = (फा० फील) हाथी। वीरत = शूरवीर, श्रेष्ठ। सप्पड = यह भी ऊनड़ जाम तथा वीका पनुआणी की तरह बडा दानी पुरुष था। इसके पिता का नाम छोटू था अतः सप्पड छोटाणी कहलाया और इसने पगु चारण कवियो के लिये सुखपाल तथा पालकियों का राजकीय प्रवन्ध किया था। सिंध मे इसका भी छोटा-सा राज्य था। खगार = राव खगार गिरनारगढ का राजा था, जिसके सोरठ नामक अत्यन्त रूपवती स्त्री थी। यह भी यदुवशी ही था। देवायच = जूनागढ का राजा देवायच (यादव) वड़ा दानी पुरुष था। उसने भी जगदेव परमार की भाँति शीश-दान किया था। गाहै जाम = गाहा नामक जाम सिंध मे नवाब था, जो दानवीरता, शौर्य एव मौज के लिये प्रसिद्ध है। सिंदू पत = सिंधुपति, सिंध का नवाब।

सो 'गाही' तज सामही, लद खेड लसक्कर।
साथ लिया दल सामठा, ईणी ढक अंबर।
संवरिया धर सिंध सू, जग वात जोरावर।
एम वैहता आविया, पिछमाण धणी पर।
मिलिया बेंरकवार मे, 'जमियल' जोगेसुर।
कुण राजा दल् कोपियौ, कित जाय सेना कर।
'जाम गहै' इम जप्पियौ, महाराज मुनेसुर।
मुज सू नग्गर छूटियौ, विध अक तणौ वर।
एम सिधेसर अक्खियौ, सुण वात नरेसर।
राज देहू पिछमाण रौ, नह पीठ फेरे नर।
कालै डूगर ऊपरा, धिन थान कलाधर।
राज दिया 'गहै जाम' कू, अल्लाह लिखतर ॥१॥ [२]
जाम 'गहै' इम जप्पियौ, सत वात सिधेसर।
उण वेला भड ओपिया, वध चाल बराबर।
राग सिंधू सुरणाइया, इम जाग अवस्सर।
आग पलोता ऊछलै, झल दागस झगर।
होली फाग हरक्खिया, मंड खाग स गेहर।
नाल कडैकड अन्नडा, परनाल सु रुद्धर।

---

२. लद खेड लसक्कर = लश्कर सजा कर चल पडा। ईणी ढक अबर = भालो की अणियों से आकाश ढक गया। वैहता = चलते हुए। पिछमांण = पश्चिम। बेंरकवार = एक स्थान का नाम। जमियल जोगेसुर = योगीराज पीर जमियल्ल शाह, जिसका प्रमुख स्थान सिंध मे रोडीशखर तथा कलाधर नाम से प्रसिद्ध है। यह पीर बाबा रामदेव की तरह हिन्दू एव मुसलमान दोनो का ही समाहृत आराध्य देव है। इसी जमियल्लशाह पीर की स्तुति मे 'सोढायण' के कर्त्ता श्री चिमनजी कविया ने 'पिछमी पीर रा छद' शीर्षक से बहुत सुन्दर व अलकृत छद लिखे हैं, जो आगे 'स्तुति-काव्य'-शीर्षक परिशिष्ट मे दिये गये हैं। जप्पियौ = कहा। विध अक तणै वर = विधाता के लेखानुसार। अक्खियौ = कहा। काळै डूगर = सिंध मे काला डूगर नामक एक प्रसिद्ध पर्वत है, जहाँ कलाधर का पवित्र देवस्थान है।

३. सिधेसर = सिद्धेश्वर, पीर जमियल्लशाह। ओपिया = सुशोभित हुए। चाळ = सेना, तौर, रौनक, शौर्य। सुरणाइर्यां = शहनाइयों, एक प्रकार का वाजा। झळ = ज्वाला। दागस = झुलसते हैं। झगर = झाडियाँ। गेहर = होली के अवसर पर पिचकारियो द्वारा खेली जाने वाली गेर, यहाँ रक्त की होली मनाई जाने का भाव है। नाळ = बदूक या तोप। कडैकड = तोप या बन्दूक के छूटने की....

भाल बिहू दल भभभकै, विन फाल लिंगोव्रर।
आल करै इरा रीत सू, जुध 'गाही' जव्बर ॥२॥ [३]
काल रूठौ दल काठिया, मिलिया मछराला।
चाल वधै कलचालवी, दल ठाल दुठाला।
वीर वीरारस वाजिया, रिणधीर रढाला।
चाढ उराणैं चापडैं, झड वाढ क्रमाला।
जोण असाढ अद्राह मे, झड लाग मेघाला।
क्रोध कडक्कड के भडा, पड मार पडताला।
होय हडव्वड हैवरा, ध्रमकत्त पयाला।
सार भकोभक सोहडा, छकधक्क छडाला।
जोध जरक्क गरक्क जग, अग एम अफाला।
रग दिये रहमाण रट, कट घाव क्रमाला।
सूर घटोघट चूर सेन, भ्रख पूर पंखाला।
नूर वधै ग्रह पूर ज्यू, कर भूर क्रपाला।

. ध्वनि, कडकड़ाहट। अम्रडा = पर्वत। रुद्धर = रुधिर। भाळ = देखकर। भब्भकै = क्रोध एव रोष मे भभकते हैं। फाळ = छलांग। लिंगोवर = लिंगूर, वदर विशेष। आळ = छेड़-छाड, लडाई।

४ काठियां = काठी नामक जाति, जिसके साथ गाहाजाम ने युद्ध कर विजय पाई थी। मछराळा = शूरवीर। कळचाळवी = युद्ध की। ठाळ = निश्चित करना, टालना। दुठाळा = क्रोधी, बांके, वीर। रढाळा = हठीले वीर। उराणे चापड़ं = सीने के सामने। झड वाढ क्रमाळा = तलवारो की धारें कट-कट कर गिरने लगीं। अद्राह = आर्द्रा नक्षत्र। मेघाळा = वादलो का। क्रोध कडक्कड़ = क्रोध मे दांत पीसते समय कड़कडाहट की ध्वनि होना। पडताळा = जोर की वर्षा अथवा तलवारों की बौछार से होने वाली ध्वनि विशेष। हड़व्वड = घोडों आदि के तेज दौड़ने की ध्वनि। ध्रमकत्त = कपायमान होना। पयाळा = पाताल। सार = तलवार, समलकर, सावधानी से। भकोभक = झटपट। सोहडा = सुभट, शूरवीर। छकधक्क = कशमकश, धक्कमधक्का। छड़ाळा = भाले धारण किये हुए। जोध जरक्क = जबरदस्त योद्धा। गरक्क = ढहना। अफाळा = जुटे हुए, युद्ध मे सलग्न। रहमांण = रहमान, ईश्वर। घटोघट = घट से घट भिडा कर। चूर सेन = सेना का चूर (खात्मा) करते हुए। भ्रख = भक्षण। पूर = पूर्ण। पखाळा = मासाहारी पक्षी। भूर = भूर-भूर करना। कपाळा = कपाल, मस्तक।

लूर त्रिखा जिमा सालले, गज खूर दताला।
हूर अबच्छर हूकले, जोय सूर वडाला।
भलकै भाला के भुजा, खलकै रत खाला।
गलकै बूथां ग्रीधर्णी, हलकै लोथाला।
ढलकै ढाल वडप्फरा, रलकै रुडाला।
भलकै भाल कराल व्याल, डलकै स भुजाला।
टलकै कायर टोल मे, मुलकै चोटियाला।
कूट ऐसी विध काठियां, बौह दूठ पटाला।
जूट ऐसौ जुध जोतिया, रज रीत रोसाला ।।३।। [४]
काठी वाढे कढ्ढिया, इम कोध लडाई।
सज गामा चौवोस सू, इम पिच्छम आई।
थिर कर राजस थप्पियौ, वस की लोकाई।
कुडलियै गढ कोट मा, अर दोट उडाई।
मोट मना गढ सामही, इम फेर उपाई।
होय घरोघर हौकवा, धर फूला छाई।

लूर त्रिखा = वर्षा ऋतु मे पानी से भरपूर उमडते-घुमडते बादलों का समूह। सालळै = आगे बढते हैं, फैलते हैं। खूर = बहादुर, शक्तिशाली। दताळा = हाथी। हूर अबच्छर = हूरें तथा अप्सराएँ। हूकळे = आतुर हो रही हैं, घूमरें दे रही हैं। वडाळा = बड़े। भळकै = चमक रहे हैं। रत खाळा = रक्त के नाले। गळकै = निगलती हैं। बूथा = माँस की बोटियाँ। ग्रीधर्णी = गिद्धनियाँ। हळकै लोथाळा = शवों को काट-काट कर हल्के बना रही हैं। ढळकै = लुढक रही हैं। वडप्फरा = बडी ढ़ाल। रळकै रुडाला = शिर कट-कट कर गिर रहे हैं। भळकै = प्रज्ज्वलित हो रही हैं। डळकै = स्तम्भित हो रहे हैं, हतप्रभ हो रहे हैं। टळकै = टल कर भागने की चेष्टा कर रहे हैं। टोळ = टोली, दल। मुळकै = मुस्कराते हैं। चौटियाळा = भैरव, युद्ध के देव विशेष। कूट = मार कर। दूठ = रोषधारी। पटाळा = बहादुर, सिंह, अधिपति। रज रीत = रजवट की रीति, क्षात्रवट का मार्ग।

४. वाढे = काट कर। कढ्ढिया = निकाल दिये। लोकाई = प्रजा। कुंडलियै = कुडलिया नामक गाँव, जहाँ के गढ़ मे लड कर सम्मा विजयी हुए तथा काठी हारे थे। सम्मों ने २४ गाँवों की राजधानी कुडलिया नगर मे स्थापित की थी, उस समय गाहा जाम के नेतृत्व मे अन्य सम्मा (यादव) थे। दोट = चपेट, प्रहार। मोट मना = उदारमना। हौकवा = आनन्द-प्रमोद, रग-राग।

जाम 'गाहै' इण रीत सू, विध क्रीत वचाई।
नीत अ्रजादा न्याव निज, सज रीत सवाई।
चीत मिटी सुख ऊपनौ, भल सपत भाई।
दूठ अरा दल दोटिया, मिट लूट कुलाई।
रूठ भजाया काठिया, प्रज तूठ सदाई।
कूट च्यारो ही कीरती, गुणिया मुख गाई।
सो सुणियौ जस पातसा, अत हेत उपाई।
और समातर अजसै, वड तौर वधाई।
जोर सुणे अप 'जाम' रौ, घण भेर घुराई।
रोर हटै कव रैणवा, दत क्रोड दिराई।
और दुनी सोय ऊपरा, फिर 'जाम' दुवाई।
कुडलियै राजस करै, हुय नीत हवाई।
जोय धरा पिछमाण री, रेहमाण सिहाई।
राग रगा नितरा .... †४॥ [५]
.... ता गढ आवे।
देता डंड अखड केइ, नव खड नमावै।
माड दला जुध मोडवै, परचड पजावै।
सो सुणियौ जस पातसा, हस हास हसावै।
जुध वीरारस जागवै, भुज सेल सभावै।
खेल करै खत्रवाट दा, आखेट उपावै।

चींत=चिंता। ऊपनौ=उत्पन्न हुआ। भल=भली। सपत=प्रेम, एकता लूट कुलाई=लूटमार की चुलबुलाहट। प्रज=प्रजा। तूठ=तुष्टायमान होकर कूट च्यारो ही=चारों ही दिशाओं मे। गुणियां=कविगण। पातसा=बादशाह। रोर=अजसै=गौरव अनुभव करते हैं। भेर=नगाड़े। घुराई=बजाये, डंका दिया। दारिद्र, गरीबी। रैणवां=कवि, चारण। दुवाई=दुहाई। हवाई= ऊँची, श्रेष्ठ। सिहाई=सहायक।

६. डंड=दण्ड, कर। मोडबै=मोडते हैं। परचड=प्रचंड, योद्धा। पजावै= मारते हैं, प्रहार करते हैं, दण्ड देते हैं। खत्रवाट दा=क्षात्रवट का।

---

† बीच का अंश अप्राप्य है।

प्रसण लगावै पागडा, सज फौज सतावै।
च्यार दिसावर चौक फेर, केइ जेर करावै।
घेर केकाणा घूमरां पाखर पैहरावै।
साबल लोधा 'जांम' सू, नह काम निभावै।
पीर सईदां पेखिया, निज कध निभावै।
जाम हुता इण जुग्ग मा, कुण मीढ कहावै ॥५॥ [६]
जाम सबै जगजीत है, अगजीत अणकल्।
आत समातर जात भी, किरणाल वडा कल।
राज रहूमानोहडी, वाखाण स विम्मल।
घला हिंगोला चानिया, पल्ली केह प्रग्गल।
.... कल्लर लेखिये, भल साख भलाहल।
चिगता चुहडा चाव सूं, नर बाबी त्रम्मल।
जूणेजा हिंगोलजा, पोहाला प्रग्गल।
सरवहिया जाड़ा भटी, इल थभ अवच्चल।
थेबा घोघा देहथा, केह केता सक्कल।
एता दाखू एकठा, प्रोहचाल अप्रब्बल॥
जेता 'गाहै' जाम रै, एता मुख अग्गल।
सहजाता मे सेहरौ, हद तेज झलाहल।
'गाहो कुडलियैस गढ, मच्छराल महाबल।

प्रसण = शत्रु, विधर्मी। पागडां = घोडे या ऊंट पर सवारी करते समय पांव रखने का रकाव विशेष, पांवों मे। सतावै = सताते हैं, कष्ट देते हैं। दिसावर = दूरस्थ प्रदेश, परदेश। जेर = परास्त। केकाणां = घोडे। सईदां = शहीद। पेखिया = देखने पर। कध = स्कंध, कधा। जुग्ग = युग। मींढ = बराबरी।

७. अगजीत = अजेय। अणकळ = अनवी, अत्यत वीर। किरणाळ = सूर्य, तेजस्वी। कळ = कला, युक्ति। रहूमानोहड़ी = एक स्थान का नाम। घळा, हिंगोळा, चांनिया, पल्ली, कल्लर = ये सम्मा जाति के यादवों की उपजातियां हैं। साख = जाति, गोत्र। झळाहळ = उज्ज्वल। चिगता, चुहडा, बाबी, जूणेजा हिंगोळजा, पोहाळा, सरवहिया, जाडा, भटी, थेबा, घोघा = ये सभी सम्मा नामक मुसलमान राजपूतो मे प्रसिद्ध गोत्र हैं। अप्रब्बळ = पराक्रमी, प्रबल। अग्गळ = आगे, सामने। सेहरौ = शिखर मुकुट, श्रेष्ठ। झळाहळ = जाज्वल्यमान। महाबळ = महाबली, वीर।

सोयं समातर साख मा, सम्मी नर सब्बल।
अबला पालग अक्खियै, धींगा कर धूकल।
जास तणै डर जोड रा, चक च्यार चलच्चल।
दिन ऊगै पसरा दियै, दूठाल चडै दल।
सँका दीधा सत्रवा, वका जुध विम्मलं।
ज्या ही जगा मेलिया, त्या मेलं रसातल।
क्रोध भलै नह केविया, विढ काज भरै वल।
राज धरा पिछयाण री, मिलिया हद मगल।
लोक सुखी बौह लिच्छमो, मन मोद सबै मिल।
गजबध सम्मा गढपती, त्रहकाय त्रबागल ॥६॥ [७]
जेण मेवासा जीतिया, तड़छे तरवारा।
के के वार कड़च्छिया, धडछे दुध्धारा।
.... ॥७॥ [८]
.... †
ले सब गामा लोक मा, भल भागं भराया।
जोग ऐसौ इण जुग मा, वाखाण वचाया।
आप तणी धर ऊपरा, थिर राजस थाया।
कालै डूगर क्रीत रा, नीसाण वजाया ॥८॥ [६]

अबळां = निर्बलों । पाळग = प्रतिपालक । धींगां = शूरवीर, योद्धा । धूकळ = युद्ध, कलह । जोड = बराबरी । चक च्यार = चतुर्दिक, चारों दिशा । चळच्चळ = विचलित, चलविचल होना । पसरां = रीझ । दूठाळ = पराक्रमी । वका = बाँका, श्रेष्ठ, चपल । केवियां = शत्रुओं । विढ = लड़ाई, युद्ध । वळ = मरोड, तरग, उन्माद । लिच्छमी = लक्ष्मी । मोद = प्रमोद, आनन्द । गजबध = हस्तीबन्ध ठिकाना के अधिपति । त्रहकाय त्रबागळ = नगाडों पर डका देते हुए ।

८ मेवासा = छावनी विशेष । तडच्छे = तेज प्रहारों से काट गिराना । कडच्छिया = काट डाले । धडछे = टुकडे-टुकडे करना । दुध्धारा = वह खाँडा जिसकी दोनों धारें पैनी हों ।

६ भाग = भाग्य । जोग = योग । वाखाण = कीर्ति, बखान ।

---

† सातवाँ भूलणा छंद अप्राप्य है तथा आठवें का कुछ अंश प्राप्त हुआ है ।

इण गादी अप ऐहडा, के जाम कहाणा।
'जेहै' जेहडा जास कुल, भूपाल भणाणा।
जाम नद ... .. राव री, कलमाय कहांणा।
'पीथल' जेहडा पाटपत, सुरियद सुणाणा।
गौड वडा इण गढ्ढ पै, कुल मौड प्रमाणा।
आमर जैसा .. ....ण, दुग्गम दरसाणा।
गौड वखाणू........ ...., मौजा मघवाणा।
इण गादी अजवालवा, 'प्रथिराज' प्रमाणा।
'पीथल' पाल सुपाथुवा, अजवाल घराणा।
राज करै ध्रम रीत सू विघ एण वखाणा।
पिच्छम हदै देस मा, रिघ सिद्ध रहाणा।
'मान' 'पचायण' सारखा, बधव बुघवाणा।
काका 'मौड' सरोख है, हाका जसवाणा।
जक्का नाम जगत्त मा, विग्गत्त वचांणा।
'पीथल' समा पाटवी, रग जदुराणा।
जेण सुपाता जाणिया, बधव परमाणा।
आदर अप्पै आविया, कुजर केकाणा।
अमलां रग अवच्चाल, मेला मेहमाणा।

---

१० नीसांण = निशान, नागडे। के = कई, अनेक। जास = जिस। भणांणा = कहे गये, प्रसिद्ध हुए। पीथल = जाम पृथ्वीराज जो? सिंध में कुंडलिया नामक गांव का अधिपति था और 'सोढायण' ग्रथ के कर्त्ता श्री चिमनजी कविया के समकालीन उनका अच्छा मित्र था। यह पृथ्वीराज जाम, (जिसे सम्मा यादव भी कहते हैं अपने समय का वहुत नामी साहित्य-प्रेमी, उदार, गुणग्राहक तथा पराक्रमी व्यक्ति था। पाटपत = पाटपति, राज्याधिकारी। सुरियद = सुरेन्द्र, इन्द्र। गौड = क्षत्रियों की एक जाति। आंमर = एक नाम विशेष। अजवाळवा = उज्ज्वल करने को। सुपाथुवां = सुकवि, सुपात्र, चारण। मान, पचायण = ये दोनो पृथ्वीराज जाम (सम्मा) के भाई थे। बुघवांणा = बुद्धिमान। मौड़ = मौड़सिंह नामक सम्मा जो पृथ्वीराज जाम का चाचा था। सरीख = सदृश। हाका जसवाण = कीर्ति का शोर। जक्का = जो। विग्गत = वगत, नामून, कीर्ति। जदुरांणा = यदुवशी राणा, जाम पृथ्वीराज सम्मा। अवच्चळां = स्थायी रूप से, सदैव। मेळा मेहमाणां = मेहमानों का थाट।

डका कीरत डैलिया, रका धनवाणा।
सका दीना सूमडा, वका केवाणा।
लाका हाथा लूटवै, बाथा बगसाणा।
थाट कवदा थेलिया, नर अप्पै नाणा।
पिच्छम हदै जाम का, वाखाण कहाणा ॥६॥ [१०]
'पीथल' जाम प्रमाणिये, वाखाण विगत्ती।
जाण दुसासह जोस सो, हरचदह सत्ती।
भीम जिसौ भाराथ मा, हडुवा बलवत्ती।
देख जुजठुल काछ दिढ, जत गोरख जत्ती।
सैहसावाहू सारखौ, अैहकार अधत्ती।
दरवासा रिख वाच रौ, नह स्वाल चुकती।
खिमिया धीरत दाखवा, तेहौ दधपत्ती।
ग्यान गुणेसुर ग्रंथ मा, ऐसौ बुधवत्ती।
माण दुयोधण सारखौ, छिब भाण आदत्ती।
सेस आपाण समोवडै, रेहमाण रखत्ती।
सत्रा माण विडारणौ, तरवार घुखत्ती।
केवा सारण केविया, अेवा चक्रवत्ती।

डैलिया – फैले, उद्घोषित हुए। रंका = रक, गरीब। धनवांणा = धनवान। सूमडा = कृपण। केवाण = कृपान, तलवार। बाथां बगसाणा = जो बाथ भर-भर के रीझ अथवा बख्शीश करता है। कवदा, कविन्द्र = महाकवि। नांणा = रुपये।

११ दुसासह = दुस्सासन। हरचादह सती = सत्यवादी हरिश्चन्द्र। भाराथ = युद्ध। हडुवा = हनुमान। जुजठुल = युधिष्ठिर। काछदिढ = काछदृढ़ा, सदाचारी, सयमी। सैहसावाहु = सहस्त्रबाहु। अैहकार = अहकार। अधत्ती = जबरदस्त। दरवासा रिख = दुर्वासा ऋषि। वाच = वचन। स्वाल = सवाल, बोल। चुकत्ती = चूकता है। खिमिया = क्षमा, सहिष्णुता। धीरत = धैर्य, गाभीर्य। दधपती = दधिपति, महासागर। गुणेसुर = गणेश। दुयोधण = दुर्योधन। छिब = छवि, शोभा। आदत्ती = आदित्य। सेस = शेषनाग। आपाण = शक्ति, सामर्थ्य। समोवडै = बराबर। विडारणौ = विदीर्ण करने वाला। घुखत्ती = रोष मे आतुर। केवा = खामियाँ, शिकायतें। सारण = सार-संभाल लेना, चुकाना। केविया = शत्रुओ, प्रतिगामियों। चक्रवत्ती = चक्रवर्ती।

देवा दान करन्न ज्यू, हेवा है नित्ती।
ग्रेवा ठाकर ईढ रा, सुणिया नह दुत्ती।
गुणिया हदा पालगर, देवाल दौलत्ती।
मैं सुणिया सब देस मा, भणिया जस भत्ती।
गौड तणो सुण गढ्ढवा, प्रतपाल प्रकत्ती।
भाल पखा ग्रजवाल भी, करणाल कीमत्ती।
गाल रिमा थट गैवरा, प्रौहचाल प्रवत्ती।
राण समा पत राखसी, पिछमाण धरत्ती ॥१०॥[११]
ग्राज समा इल ऊपरा, दातार दिपदा।
जोरावर जोधार है, दल रोल दियदा।
ग्राथ हवोल ऊधमियैं, भर बाथ राजदा।
काथ वडा किरसन्न ज्यू, भाराथ भिडदा।
नाथ त्रिलोक निवाजिया, समराथ सहुदा।
पाथ ग्ररज्जण पडवा, जुध एम जीपदा।
बुद्ध महा बलवान है, दध जेम कहदा।
सुद्ध वेहु पख सारखा, गुण निद्ध गिणदा।
थाट गरट्टा सुभ्भटा, दरबार दिनदा।
जाम कचेडी जोवता, ऐसा नह इदा।
होय हगामा होकवा, के मौज करदा।

---

११ देवा = देने के निये। करन्न = राजा कर्ण। हेवा = ग्रादि, स्वभावगत। ग्रेवा = ऐसा। ईढ = बराबरी। दुत्ती = द्वितीय, ग्रन्य। पाळगर = प्रतिपालक। देवाळ = प्रदाता। भणिया जस भत्ती = कीर्ति-कथा कही। गढ्ढवा = चारण कवि, गुजरात तथा काठियावाड मे चारणो को गढवी कहते हैं, वैसे गढवी तथा गढपति चारणों के पर्यायवाची शब्द हैं। प्रकत्ती = स्वभाव। भाळ = देखना। करणाळ कीमत्ती = कद्र करने वाले। गाळ रिमां = शत्रुग्रों का सहार करके। गैवरा = हाथियो। प्रौहचाळ — पराक्रमी। प्रवत्ती = प्रवृति। पत्त = लाज इज्जत।

१२. रोळ दियदा = विलोड़ित करने वाले, धक्का देने वाले ऊधमियैं = खुले दिल से देते हैं। निवाजिया = स्मरण किया, भक्ति की। समराथ सहुदा = सभी समर्थ हैं। पाथ = पार्थ। जीपदा = विजेता। गरट्टा = सेना। दिनदा = दिनेन्द्र, सूर्य। कचेडी = कचहरी, दरबार। इदा = इन्द्र। हगामा = महफिल, ग्रामोद-प्रमोद। होकबा = राग-रग, रगरेलियां।

गोठ कसूबा अग्गली, फुरमाण फिरदा।
गलियां अमला गढ्वी, केइ रंग कहंदा।
आठू पौहरा अग्गली, व्रंद पात बोलंदा।
कायब सायब जांम की, केइ कवी कहदा।
आगल जेण अढारही, पुराण पढंदा।
पीर फकीर कुराण पै, केइ ग्यांन कथंदा।
हांजर बदां हुकम मे, नर पाय निंमदा।
ऐसा है सुत गौड का, कुल मौड कहदा।
'पीथल' सम्मां पाटवी, जग एम जाणंदा।
जाण ग्रहापत भाण है, उडियाण मे च्दा ॥११॥ [१२]
जोय वखाण जुगत्त मे, सोइ साच समाजा।
रांवल राव राजंद के, वाजदस वाजा।
और निबाब अबाब के, सुण जाब सकाजा।
आज पढाई ऊजली, लंवखा वन लाजा।
सांभल गल्लां अंजसिया, रैणापंत राजा।
दत दीजे नित दूथिया, तत कूदत ताजा।
रांवत राणा राजसी, जस चावत जाजा।
पावत दान पसाब के, सोभाग सकाजा।
आंवत भोम अलग्ग रा, कव के दत काजा।
मत्त मतंतर मुक्ख तें, पक्के ही प्राजा।
गढ कुडलियै गांम का, जस जाम जिहाजा।
नाम नरां नवखंड मे, पौहचाय प्रवाजा।

---

१२. गोठ = गोष्ठी। कसूबा = अफीम रस। अग्गळी = आगे। फुरमांण = फरमान। अमला = अफीम। गढ्ढवी = कवि, चारण। व्रंद = विरुद। कायब = काव्य। सायब = साहिब, ठाकुर। ग्रहांपत = ग्रहपति, सूर्य। उडियाण = उडुगण, तारे। = युक्ति। निवाब अबाब = नवाब आदि। जाब = जवाब, वचन। गल्लां = बातें, कीर्ति। रैणापत = भूपति। दूथियां = चारण कवि। तत = तत्र, वहां। ताजा = ताजी जाति के घोड़े। जाजा = गहरा, अधिक। सोभाग = कीर्ति। मत्त मतंतर = मत मतान्तर। प्राजा = परिपूर्ण। जिहाजा = जहाज। प्रवाजा = प्रमा मय।

दाम हजारां दान मे, दातार दयाज़ा।
हांम पूरै कव हेतवा, जदु साम सकाजा।
रांम अला मुख बे रटै, सुख जाम समाजा।
गांम धजा के गैवरा, हुल्लास हवाजा।
आज वजावै ऐहवा, गुण इदर गाजा।
लाज भुजा भर लेखवै, सक्काज समाजा।
राजवसां छत्रधारिया, तूही सिरताजा।
जादम के पत जाम है, वाजै जस वाजा ॥१२॥ [१३]
कुडलियै पत जाम के, अत बौत महाभड।
.... †॥१३-१४॥ [१४-१५]
... ... ।
.... नह क्रिया, नव्वाज पढता।
पीर फ़कीरा पाथुवा, अ नर हता।
वीदग भट्टा मागणा, प्रतपाल करता।
मागण नै मन मागिया, दत रीझ दियता।
पिच्छम हदा राजवी, छक एण सुछता ॥१५॥ [१६]
सम्मा आद जुगाद सू, दातार दखोज।
जाम 'प्रथीपत' जेहड़ा, 'कनपाल' कहीजै।
झूल समा सुण झूलणा, राजेसुर रीजै।
जाम समापत जाणियौ, कहा रीज करीजै।
एम समा सू अखियौ, कुल चारण कीजै।
सोय समा अत सारखा, अै वात अखोजै।

१३. हांम = इच्छा, अभिलाषा। हेतवा = चारण, कवि। अला = अल्लाह। वे, = द्वि, दो। धजां = घोडे। गैवरां = हाथी। हुल्लास = उल्लास, हर्ष। हवाजा = वातावरण का। लेखवै = अनुभव करता है, लक्षित करता है। सक्काज = सुकृत्य। जादम = यादव।

१६ नव्वाज = नमाज़। पाथुवां, वीदग, मागणा = ये चारण जाति के पर्यायवाची शब्द हैं। सुछता = प्रकट, विख्यात हैं।

१७. झूळ = समुदाय। अत सारखा = माई के सदृश।

†१३ वां एव १४ वां झूलणा अप्राप्य है तथा १५ वां भी प्राय खण्डित हो चुका है।

इण विध चारण आपणौ, कयौ जाम करीजै।
अब सारा इम अक्खियौ, दत मौजा दीजै।
ऊठ अढारै अप्पियै, दस अस्स दिरीजै।
सौ गाया सलवार है, इण भात अपीजै।
वागौ परवा वीरमूठ, भल नेग भरीजै।
हैवर ह्वै सो हाजरी, सो पण समपीजै।
असल समा ची रीत ऐ, कवराज कहीजै।
एतौ दत्तब आपनै, प्रोलपात पढीजै।
चारण 'चिम्मनदान' नै, दसु धी थरपीजै।
'कवियै' आगल जोस मा, कवु पीठ न दीजै।
असल समातर जो हुवै, सो साभल रीजै।
साखी सूरज चद है, रेहमाण रहीजै।
कव आसीस 'चिमन्न' क, अवचल्ल रहीजै।
'पीथल' 'चिमनै' पात ना, इम नेग अपीजै ॥१६॥[१७]

---

१७. आंपणौ = अपना। अढारै = अट्ठारह। अप्पियै = अर्पित कीजिये। अस्स = अश्व, घोडे। सलवार = दूध देने वाली गाय, भैंस, बकरी आदि को 'सलवार' कहते हैं। निश्चित अवधि के पश्चात् जब स्तनों मे दूध सूख जाता है और पुनः गर्भवती होती है, उस समय वही मवेशी 'बाखडी' कहलाती है। वागौ = आदमी के पहनने का एक घेरदार वस्त्र विशेष। यह वागा पुराने जमाने मे दरबारी वेश का प्रतीक था। होली के अवसर पर डडियो की 'गेर' रमते समय आज भी पश्चिमी राजस्थान मे लोग कहीं-कहीं वागा पहन कर 'गेर' रमते हैं, जिससे घेरदार घूमर बडी सुहावनी लगती है। परवा = पहनने के लिये। वीरमूठ = विवाह के अवसर पर वधू-पक्ष की ओर से दूल्हे अथवा प्रोलपात कवि को रुपयों की मुट्ठी भराने का रिवाज, था जिसे 'वीरमूठ' कहते हैं। नेग = याचकों को दिया जाने वाला एक प्रकार का दान विशेष, जो विवाह आदि के शुभ अवसरो पर देना अनिवार्य समझा जाता है। 'नेग' एक प्रकार की लाग है जो, प्रायः सभी जातियां अपने-अपने याचकों को मांगलिक अवसरों पर दिया करती हैं। हाजरी = हाजिर। समपीजै = समर्पित कीजिये। ची = की। कवराज = कविराज। दत्तव = दान। चिम्मनदांन = सोढायण के कर्त्ता, श्री चिमनजी कविया। साखी = साक्षी।

कवत कलस रौ

समां नगर सामही, समा पिच्छम पतसाही।
समां नवलखी सिंध, सभा गिरनार सदाही।
समा तखत जेसाण, समौ है दिखण सतारै।
समौ दिली पतसाह, धरा सारी छत्र धारै।
धजबध समा पिच्छस धणी, वडुम जसधण विस्तरौ।
आसीस 'चिमन' कवियौ अखै, क्रोड जुगा राजस करौ ॥१॥ [१८]

जाम इसो 'प्रथिराज', जिसौ 'ऊनड लाखाणी'।
जाम इसौ 'प्रथिराज', जिसौ 'सप्पड छोटाणी'।
जाम इसौ 'प्रथिराज', जिसौ 'पनुआणी वीकौ'।
जाम इसौ 'प्रथिराज', नाम नवखडा नीकौ।
'प्रथिराज' जाम पिच्छम पती, सती जती दत सेहरौ।
आसीस 'चिमन' कवियौ अखै, क्रोड जुगा राजस करौ ॥२॥ [१९]

'ऊनड' क्रोडा आठ, सामठौ द्रब्ब समप्पै।
दियौ तखत दान मे, अमर सोभा कज अप्पै।
पगा नै पालखी, दुनी 'सप्पड' वड दाता।
'वीकै' पीलू ब्रवै, वचाणी क्रीत विख्याता।
दातार तिमण 'गाहौ' दुझल, इसा विरद्दा ऊजलौ।
आसीस 'चिमन' कवियौ अखै, क्रोड जुगां राजस करौ ॥३॥ [२०]

---

१८. जेसाण = जैसलमेर। दिखण = दक्षिण। सतारै = सितारा, जो दक्षिण मे पूना के पास बसा हुआ है। दिली = दिल्ली। वडुम = बडप्पन, बडाई। विस्तरौ = विस्तार कीजिये। अखै = कहता है। राजस = राज्य, मौज।

१९. प्रथिराज = जाम पृथ्वीराज, जो कुडळिया, सांमही आदि गांवो का स्वामी था, तथा ग्रथकर्त्ता चिमनजी का प्रगाढ़ मित्र एव काव्य-प्रेरक था। ऊनड़ लाखाणी = ऊनड जाम, जो अपनी दानवीरता के लिये जगत्-प्रसिद्ध है। इसके पिता का नाम लाखा था अत ऊनड़ लाखाणी कहलाता है। इसने आठ क्रोड का दान तथा सात सिंधों का, राज्य सावल सुध चारण को दे दिया था। सप्पड छोटाणी तथा वीका पनुआंणी का वर्णन पहले किया जा चुका है।

२०. पीलू ब्रवै = हाथी दान में दिये थे। तिमण = तैसा, उसी के अनुसार। दुझल = पराक्रमी, वीर।

'कुडलियौ' वड कोट, अवर 'जूणौं' आखीजै।
'ओटावड' रिणधीर, भलम 'तोगा' भाखीजै।
'रातडियौ' 'रोहातड', भले 'पेइया' गुण भाखण।
'डडा' राजस डांण, रीत 'ओबाणै' राखण।
दुवादस गाम मोडण दला, विहलां रीजस यूं वरौ।
आसीस 'चिमन' कवियौ अखै, क्रोड जुगा राजस करौ ॥४॥ [२१]

॥ इति झूलणा सपुर्ण ॥ लिखतं कवियौ चिमनदांन लुदरदांनोत वाचै जंनां सुं रांम रांम वाचजो समत १९३३ आसोज सुद ९ बुधवार ॥

गीत सपखरौ

समा साख रा उजाला जिकै लाख रा देयाल समा,
कल्ॅ रा करन्न समा नामगा कियाह।
सूमा हियै साल रूपो ढाल रूपी क्रीत समा,
समा हूत समोवडी नही को सियाह ॥१॥ [२२]
सिगा वस छत्तीस रा सामही रा धणी समा,
भाराथ मा पाथ रूपी समा है भुजाल।
वैरियां नै मोडै सपा पौछ रा व्रीराधवोर,
सिरै देग तेग समा धेग रा सुगाल ॥२॥ [२३]

---

२१ कुडलियौ, जूणौ, ओटावड, रातडियौ, रोहातड पेइया, ओबांणौ आदि सम्मा के प्रसिद्ध गांवों के नाम हैं। विहळा = चारण कवि। वरौ = दीजिये।

२२ नामगा = अयाचक। समोवडी = समानता, बराबरी। सियाह = क्षत्रियों की एक जाति का नाम, जिसका मूल पुरुष सीहा था। सोढायण के छंदो मे क्षत्रियो की शाखाओं का विवरण देते हुए कवि ने कहा है—

"सीया पणं नही समवडिया। खत्री दुहट विया खावडिया।"

['सोढायण' पृ० ३३]

२३ सिगा = शिरोमणि, श्रेष्ठ। वस छत्तीस = क्षत्रियो के कुल छत्तीस वंश माने गये हैं, जिसका सकेत पृ० ४७ पर किया जा चुका है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सम्मा यद्यपि मुसलमान राजपूत भी कहे जाते हैं, तथापि 'छत्तीस वश' 'जदुवशी' (यादव), 'समा तखत जेसाण', 'जाम पृथ्वीराज' आदि नामों से उनका जीवन, हिन्दुत्त्व से परिपूर्ण नजर आता है, अत कवि ने क्षत्रिय मान कर ही उनकी वीर-प्रशस्ति रची है, सो सर्वथा उचित है। ऊनडजाम को पृथ्वीराज सम्मा का पूर्वज मानते हुए भी यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'सम्मा' यदुवशी क्षत्रियों की एक शाखा है। सिंध मे....

सेवियां समंद्र जेम इन्द्र जेम थाट समा,
वज्राग री झाट समा दोखिया विचाड।
सामहा चालियां अरा राड़ाजीत जोध समा,
चारण सुधारै समा पखा नीर चाड ॥३॥[२४]
'पनांणी वीकियै' जिसा समा दान दहै पीलू,
पाथुवां नै समा दांन दहै सुक्खमाल।
सेवागीरां तणा पाल 'सप्पडै' सरीखा समा,
चालै कल़ वीच समा अजे उवा चाल ॥४॥[२५]
'खंगार' सारीखा समा प्रभा लेण नवै खडै,
सीस दांन दिया सम्मा मत्त रा सधीर।
'ऊनड' सरीखा सम्मा आठ क्रोडी द्रव्व आपै,
गढापती वडा समा विरद्दां गभीर ॥५॥[२६]
असल्ली दातार सम्मा अेण गादी हुवा अगै,
'लाखै' लाखियार जिसा कीरती रा लैण।

... रहने वाले क्षत्रियों एव मुसलमानो का कुछ ऐसा अनूठा साम्य दृष्टिगोचर होता है कि वे राम और अल्लाह दोनों को समान रूप से रटते हैं। पृथ्वीराज जाम हिन्दू होते हुए भी राम के साथ अल्लाह को भी याद करता था, यथा—

'राम अला मुख बे रटै, सुख जाम समाजा।'—[पृ० ६१]

इसी प्रकार पीर जमियल्लशाह भी मुसलमान होते हुए अल्लाह के साथ राम का भजन करता था, कवि के द्वारा रचे गये छदो से ही—

'रट्टै गुण राम कूड न काम पिच्छम धाम परचल्ला।
जोगी जमियल्ला भ्यासै भल्ला अणघड अल्ला ईलल्ला ॥'

पौछ = पहुँच, शक्ति। सुगाळ = सुकाल, धन-धान्य पूर्ण।

२४ ज्राग = वज्र की आग। झाट = टक्कर, चपेट। विचाड = मध्य, बीच में। अरां = शत्रुओं। राडाजीत = युद्ध मे विजयी। पखा नीर चाड = अपने मातृ एव पितृ पक्ष का पानी (आब) बढाते हुए अर्थात् उनको गौरवान्वित करते हुए।

२५. सुक्खपाल = सुखपाल, पालकी। सेवागीर = सेवक, याचक। कळू = कलियुग। अजे = अभी तक। उवा = वह।

२६. मत्त रा सधीर = बुद्धि के पारावार। आठ क्रोडी = आठ करोड़। द्रव्व = द्रव्य।

२७. लाखै लाखियार = सिंध का एक दानवीर क्षत्रिय, सभवतः यह लाखा ऊनड जाम का पिता ही होगा, जैसा कि 'ऊनड लाखाणी' कहा भी है। 'लाखा फूलांणी' भी एक प्रसिद्ध दानवीर हुआ है, जिसकी याद मे प्रभात के समय लोकगीत के रूप मे 'लाखो' ..

'ऊनड' सरीखा सम्मा सासणा बरीस ग्राछा,
दूथिया रा पाल सम्मा हाथिया रा दैरण ॥६॥ [२७]
'तमायची' जिसा समा ऊनड रै पाटपती,
तिकै 'सराधीन' जिसा समा है तमाम।
पिच्छम रौ देस लीधौ काठियां नै मारे परा,
जेरण गादी हुवा सम्मा 'गाहै' जिसा जाम ॥७॥ [२८]
जोरावरी न दै जिसा सेर हुवा प्रथीजीत,
'प्रथीराज' वडा गौड ग्रामरां प्रमांरण।
बीजा गौड समै जोड नही कोई वराबरी,
जिसौ 'प्रथीराज' समौ कुडलियै जारण ॥८॥ [२९]
पिच्छमारण पती समा विरद्दा बखारण पूरा,
ग्रहनारण इद्र समा केवारण ग्रथाह।
हिंदवा मुसलमारण समा रग दियै हाथा,
वाखारगै 'चिमन्नो' कवी समा वाह वाह ॥९॥ [३०]

॥ सपुर्ण गीत कवियै चिमनदांन रौ कहियौं ॥ दा चिमनदान लुदरदांनोत रा छै वाचैं तै थी जे श्री माताजी री वचावसी सुभवस्तु कल्याणवस्तु समत १९३३ ग्रासोज सुद ९ बुधवार ॥

....गीत गाया जाता है। यद्यपि लाखा नाम के तीन दानवीर व्यक्ति हुए हैं ग्रौर तीनों एक ही क्षेत्र के रहने वाले थे, ग्रत यहाँ कौनसा लाखा लाखियार है, इसका निर्णय करना कठिन है। सासणां = शासन, जागीर। वरीस = देने वाला।

२८ तमायची = सिंध का बादशाह तमायची, जो ऊनडजाम का राज्याधिकारी एव ग्रत्यंत प्रसिद्ध दानी के रूप मे विख्यात हैं। सराधीन = एक दानवीर विशेष।

२९. गौड ग्रांमरा = गोत्र विशेष। समै = समान।

३० पिच्छमांरण = पश्चिम। ग्रैहनारण = प्रतीक, चिह्न।

परिशिष्ट २

कविया चिमनजी कृत अन्य रचनाएँ

(क) रीति-ग्रन्थ—

श्री चिमनजी कविया जिस युग मे पैदा हुए थे, वह उत्तर मध्यकालीन युग था। श्री चिमनजी से पूर्व रीतिकालीन परपरा ने एक प्रकार का साम्राज्य स्थापित कर दिया था। जहाँ दो कवि परस्पर साहित्यिक वाद-विवाद मे पड जाते तो उनको अलकारों या अन्य काव्य रीति के विविध भेदोपभेद पूछे जाते थे। जो कवि काव्य-रीति के अधिक भेद बता सकता था उसी का प्रभाव श्रेष्ठ माना जाता। श्री चिमनजी के समकालीन जोधपुर के महाराजा श्री जसवतसिहजी (द्वितीय) के नाम से अलकारों का वृहत् ग्रथ 'जसवत-जसो-भूषण' कविराजा श्री मुरारिदानजी के द्वारा तैयार हो ही रहा था। डिगल-गीतों की विस्तृत रीति तो महाराजा श्री मानसिहजी के समय मे ही तीन कवियो द्वारा रची जा चुकी थी। प्रथम जोधपुर निवासी मंसाराम सेवक था, जिसने ७२ प्रकार के गीतों का परिचायक ग्रथ 'रघुनाथ-रूपक' रचा। दूसरा गाँव पाँचेटिया के निवासी दुरसा आढ़ा के वशज श्री किसना आढा ने 'रघुवर-जस-प्रकास' नामक वृहत ग्रथ रचा, जिसमें डिगल के ९१ प्रकार के गीतों का वर्णन है। साथ ही जथाएँ, दोष, उक्तियाँ, वयण-सगाई एवं कतिपय छंदों की भी रीति प्रतिपादित की गई है। तीसरा गाँव थबूकडा के निवासी कवि उदयराम बारहट द्वारा 'कविकुल-बोध' नामक रीतिग्रथ रचा गया, जिसमे ८४ प्रकार के गीतो, १८ उक्तियाँ, २२ जथाओं आदि का विशद वर्णन है। डिगल-काव्य मे गीतो के अतिरिक्त पिगल-छद इतने घुलमिल गए कि उन्होंने डिगल का बाना धारण कर अपना रूप परिवर्तित कर लिया। क्या स्तुति-काव्य, क्या प्रशस्ति-काव्य और क्या प्रकृति-वर्णन प्राय: सर्वत्र ही रोमकद, सारसी, रेंणकी, मोतीदाम, त्रोटक, पद्धरी, भुजगी और नाराच आदि छदो का ही बोलबाला हो चला। ईशरदासजी बारहट के 'हरिरस' में मोतीदाम छदो का ही पभुत्त्व है, तो उनके 'भगवत हस' ग्रथ मे पद्धरी छद और 'आगम' ग्रथ मे प्रायः वैताल छद ही प्रयुक्त हुए हैं। विक्रम की १८ वीं सदी मे रचे गए वृहत् ग्रंथ 'सूरज-प्रकास' व 'राजरूपक' आदि मे भी गीतों के स्थान पर छदों की ही भरमार है। महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण के 'वश भास्कर' मे, स्वामी गणेशपुरीजी के 'वीर विनोद' [कर्ण-पर्व] मे, कवि ऊमरदानजी लाळस के 'ऊमर-काव्य' मे भी प्रायः गीतों से छद, कवित्त आदि का प्रयोग अधिक है। इस प्रकार छदो का अधिक प्रचलन देख कर श्री चिमनजी कविया ने भी 'जसवंत पिंगल' नामक एक छदो का रीति-ग्रथ रचा। इसी तरह एक अन्य काव्य-भेद परिचायक ग्रथ 'माखा-प्रस्तार' भी रचा। उपर्युक्त दोनो ही ग्रंथ खडित रूप मे प्राप्त हुए हैं।

(१) 'जसवंत-पिंगळ'

श्री चिमनजी कविया ने 'जसवत-पिंगळ' नामक ग्रंथ मे तत्कालीन जोधपुर नरेश श्री जसवतसिहजी (द्वितीय) की प्रशस्ति का पुट देकर पिंगल मे प्रयुक्त होने वाले प्रायः सभी प्रमुख छदो की रीति का उद्घाटन किया है। दुर्भाग्यवश इस ग्रथ का प्रारभिक एव अतिम भाग तो नहीं मिल पाया, किन्तु बीच की प्राय सामग्री अवश्य उपलब्ध हुई है। इसके अतर्गत् अनेक प्रकार के छदो के लक्षण व उदाहरण, अनुप्रासो से युक्त एव वयणसगाई के पूर्ण निर्वाह के साथ प्रस्तुत किये गए हैं। इस ग्रथ के अवशिष्ट अश की तुलना करने से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि कवि ने 'लखपत-पिंगल' नामक रीतिग्रथ का भावानुवाद किया है। 'लखपत-पिंगल' की रचना स० १७९६ वि०, माघ शुक्ला ७ बृहस्पतिवार के दिन मारवाड के घड़ोई नामक ग्राम के निवासी चारण कवि श्री हमीरजी रतनू द्वारा की गई है। भुज के तत्कालीन रावल श्री देसल के राजकुमार श्री लखधीर की प्रशस्ति मे हमीर जी रतनू ने यह ग्रथ रचा था। इसकी हस्तलिखित प्रति चिमनजी के घर मे थी, जो संभवतः वे स० १९३३-३४ वि० मे भुजनरेश को 'प्रागराव-रूपक' सुना कर लौटती वार लाये हो। श्री चिमनजी ने इस ग्रथ मे भावानुवाद करते हुए भी कुछ मौलिक तत्त्व अवश्य सन्निहित कर दिये हैं, जो ग्रंथ की स्वतत्र विशेषता के सूचक हैं।

श्री चिमनजी द्वारा स० १९२५ वि० मे की गई 'पिंगल-गण-पत्री' की प्रतिलिपि प्राप्त हुई है, जिसके सिद्धान्तो का निरूपण कवि ने 'जसवत-पिंगल' ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही किया है। तत्पश्चात् 'लखपत-पिंगल' मे आये हुए छदो से कहीं अधिक सुन्दर वर्णन चिमन कवि ने इस ग्रथ मे किया है। ग्रथ के अत मे एक छप्पय मे इस ग्रथ की विषय-सूची दी गई है, जिसके अनुसार 'प्रथम कयौ गणपत्र' शब्दो का स्पष्टीकरण है। इस 'पिंगल-गण-पत्री' के तथ्यो की जो सामग्री प्राप्त हुई है, उसका विवरण इस प्रकार है:—

प्रारभ का एक दोहा मिला है, जिसमे 'पिंगल-गण-पत्री' के सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाने का सकेत मिलता हैं, यथा —

'कर जोडे वदन करू, धरू सगत को ध्यान।
पिंगल के गण पत्र को, वरणे कहू विधान ॥'

इसके पश्चात् 'पिंगल-गण पत्री' के विधान का वर्णन कवि ने छप्पय कवित्तों मे किया है। एक-एक छप्पय मे प्रत्येक गण के रूप, देवता, नक्षत्र, राशि, जाति, लिंग, गण, दशा तथा फल आदि का पूरा वर्णन है। वडे दुख का विषय है कि आठो गणो मे से केवल प्रथम तीन के ही व्याख्यात्मक कवित्त प्राप्त हो सके हैं, किंतु यह वानगी भी सपूर्ण रतन का परिचय प्रकट करने वाली है।

'प्रथम गण विचार वरनन: मगण भेद' छप्पय—

'मगण तीन गुर मान, भोम ता देव भणीजै।
मगा नखत को जलम, सिंघ जिण रास सुणीजै।
जात सु खत्री जेण, रूप श्री देह निरक्खण।
जिकै दैत गण जाण, लिक्खमी दान वरीसण।
केत री दछा पिंड सु कहै, भेद लहै वड भूपती।
जोधाणनाथ जाणै जुगत, कवी वखाणै कीरती।।'

अर्थात् मगण का रूप तीनो गुरु [ऽ ऽ ऽ] हैं और उसका देवता भूमि है। मघा नक्षत्र मे उसका जन्म हुआ है तथा सिंह की राशि है। जाति क्षत्रिय है, देह का रूप स्त्री के जैसा है तथा उसका गण दैत्य है। फल लक्ष्मी है और केतु की दशा रहती है। इस प्रकार मगण का भेद हैं, जिसे कवि ने जोधपुर नरेश श्री जसवतसिंहजी (द्वितीय) को सम्बोधित करते हुए बताया है। आगे और देखिये:—

'नगण भेद'—

'नगण तीन लुघ नेम, पनग जिण देव प्रमाणै।
ब्रची रास वाखाण, नखत पण हस्त निपाणै।
चद्र दछा पैचाण, जात कुल सुद्र जपीजै।
असत्री दे आकार, देवगण जेण दखीजै।
आरबल वधै दौलत अखा, सेस वचन निरवाण सत।
कव 'चिमन' कहै पिंगल कयौ, परख जाण जोधाणपत।।'

उपर्युक्त छप्पय मे नगण का रूप, देव, राशि, नक्षत्र, जाति, फल आदि समस्त बातों का पूर्ण रूप से परिचय दिया गया है। कवि ने जोधपुर के महाराजा को सम्बोधित करते हुए प्राचीन रीति-परपरा के अतर्गत पिंगल की गण-पत्री के सिद्धान्तो का प्रतिपादन अपने ढग से किया है। इसी प्रकार 'भगण भेद' का निरूपण भी प्राप्य है। आगे के पांचो गणो का भेद प्राप्त नहीं हो सका। 'पिंगल गण-पत्री' के सिद्धान्तो के अत मे अष्ट दग्धाक्षरो एव ८ शुभाशुभ गणो का सक्षिप्त व श्लिष्ट निरूपण भी किया गया प्रतीत होता है। इसका प्रायः भाग अब खडित हो चुका है केवल गणों से सम्बन्धित एक दोहा मुझे अपने पिताजी से प्राप्त हुआ, जो इस प्रकार है —

'आणौ मन भय आद मे, तज रस ऐही तत।
जसवत-पिंगल जोड मे, कवियण 'चिमन' कहत।।'

उपर्युक्त दोहे मे श्लिष्ट अर्थ है। कवि ने काव्य के श्रीगणेश के साथ शुभ फल वाले ४ गणों (म, न, भ, य) के प्रयोग का उल्लेख किया है। इसी प्रकार अन्तिम ४ अशुभ गणों (त, ज, र, स) को तजने की बात भी कही है। साथ ही यह अर्थ भी

ध्वनित होता है कि प्रारभ मे मन मे भय लाना चाहिये और त्याज्य तत्व वाले रस को तज देना चाहिये। दूसरी ओर यह भी सकेत है कि म न भ य से काव्य का आरभ शुभ तो है ही, किंतु उनमे भी मगरा को सर्व प्रथम प्रयुक्त किया जाना चाहिये, जिसका फल लक्ष्मी होता है। सासारिक सुख वैभव का एकमात्र कारण लक्ष्मी होने से इसके प्रदाता गरा को कवि ने सर्वप्रथम कहा है। तत्पश्चात् नगरा जो दीर्घायु का प्रतीक, भगरा कीर्ति का प्रतीक और अन्तिम यगरा भी वृद्धि का सूचक है। इस प्रकार चार शुभ गणो मे भी गुणो की मात्रा के अनुसार उनका क्रम रखने की चातुरी कवि ने दिखाई है। इसी तरह चार अशुभ गणो का क्रम भी इसी पद्धति के अनुसार रखा गया है। श्लिष्टार्थ के कारण दोहा चमक उठा है।

उपलब्ध सामग्री मे वयणसगाई का पूर्ण निर्वाह आद्योपान्त हुआ है, तथा गणों के भेद बडी सरलता व स्पष्टता के साथ व्यक्त किये गए हैं। यद्यपि 'रघुनाथ रूपक' एवं 'रघुवर जस प्रकास' मे उल्लिखित गणो के भेद मे और इसमे कुछ अन्तर अवश्य है, किंतु इन दोनो ग्रन्थो मे भी पारस्परिक विषमता प्रतीत होती है। किसका मापदड सही माना जाय यह कठिन समस्या है, किंतु चिमनजी कविया ने गणो के भेदादि मे 'पिंगल-गरा-पत्री' का ही अनुकररा किया है। 'पिंगल-गरा पत्री' की प्रतिलिपि स्वय चिमनजी के हाथ से लिखी स० १९२५ के श्रावण सुदि ५ के दिन को प्राप्त हुई है। मिलान करने पर वही भाव रूपान्तरित किया हुआ प्रतीत होता है।

'जसवत पिंगल' मे वर्ण-छद —

श्री चिमनजी कविया कृत 'जसवत-पिंगळ' ग्रथ मे अनेक वर्ण-छदों का विस्तार प्रकट किया गया है। छदों के नामो का क्रम, लक्षण तथा उदाहरण की रीति 'लखपत-पिंगळ' से मिलती-जुलती है। 'लखपत-पिंगळ' मे भी प्रारम्भ मे एक दोहे या चौपाई मे छद के विभिन्न रूपों की सख्या बताई है और फिर उसके लक्षण बताये हैं, तत्पश्चात् छद का उदाहरण दिया है। ठीक यही क्रम 'जसवत-पिंगळ' मे भी दृष्टिगोचर होता है। लक्षरा व उदाहरण के निमित्त आये हुए अनेक छदो की पक्तियो मे भी इतना साम्य पाया जाता है कि 'जसवत पिंगळ' को 'लखपत पिंगळ' का अनुवाद कहने मे कोई शका नहीं रह जाती। 'लखपत-पिंगळ' मे सर्वप्रथम वर्णछदों का विस्तार प्रकट हुआ है जिसका अनुकरण 'जसवत-पिंगळ' मे किया गया है। प्रारभ मे 'अनूप' और 'सुभकर' दो छदो के लक्षण एव उदाहरण खंडित हो चुके हैं, किन्तु 'लखपत पिंगळ' के तीसरे छद 'विमळ' से 'जसवत पिंगळ' मे समानता पाई जाती है। 'विमळ' 'लीलविलास' एवं 'रसरग' के पश्चात् तीन छद 'मोतीमाळ' 'पदम' और 'दूरा भुजगी' फिर अप्राप्य है। नवम छद सेलार' से प्रारम्भ होकर २२ वें छद 'सफळ' तक जो शृ खला 'लखपत पिंगळ' मे है, उसी क्रम से वह इस ग्रंथ मे भी प्रयुक्त हुई है। इनमे 'प्रेमल' 'आणद', 'कल्याण' 'केवळ' [१४ वाँ 'सुदर' छद अप्राप्य है], 'माणक' 'सारस', 'उत्तम', 'ततसार', किनक', 'मंगळ', 'सरस' और 'सफळ' आदि हैं। इसके पश्चात् २३ वें छद से लेकर ३० वें तक पुन खडित अश है जिसमे 'पहप', 'निकेवल', 'कीरती', 'उग', 'सवामोतीदाम', 'विणोद 'उदार' और 'नवरग' छद थे। आगे ३१ वें छद 'जसवास'

से लेकर ३८ वें छद रमणीक' तक का अश प्राप्य है, जिसमे 'रसाळ', 'पावन', 'भुजगी', 'त्रोटक', मोतीदाम' 'रतन' आदि छद हैं। फिर ३९ वें छंद से ५४ वें छद तक का भाग पुनः खडित है जिसमे 'धाइक', 'भमर', 'काइम', 'कपूर', 'सिणगार', 'सुघड', सघर', 'परबोध', 'फदम', 'अगर', 'हरिख', 'सरबग', 'सप्रवीत', 'प्रगट', 'सोभण', और 'दीप' नामक छद थे। इसके पश्चात् ५५ वें छद 'सोभाग' से लेकर ५९ वें छद 'मोहण' तक का भाग क्रमपूर्वक मिलता है जिसमे वरियांन', 'वांणक', 'घणसार' आदि छद हैं। अतिम दो छद 'प्रहास' और 'पूरण' अप्राप्य हैं। इस प्रकार 'लखपत पिंगल' मे वर्णित ६१ प्रकार के वर्णछदों को सरल एव सुबोध डिंगल-भाषा मे चिमन कवि ने अपने 'जसवत-पिंगळ' ग्रथ मे भावानूदित किया है।

उपर्युक्त ६१ प्रकार के वर्णछदों की नामावली हमीरजी रतनू ने 'लखपत-पिंगळ' मे छप्पयों द्वारा प्रस्तुत की है। इस पद्धति का अनुकरण चिमनजी ने भी अवश्य किया होगा; क्योंकि एक तो उन्होंने उक्त ग्रथ का पूरा अनुवाद अपनी भाषा मे किया है तथा दूसरे में आगे मात्रिक छदो की 'छंद नाम सुचनका' नाम से सूची पद्धरी छदों मे रची है। 'सूचनिका' शब्द भी 'लखपत-पिंगळ' से तत्सम रूप मे ग्रहण किया गया है। वर्णछदों की सूची के पश्चात् प्रस्तुत ग्रथ मे वर्ण-प्रस्तार, वर्ण नष्ट, वर्ण उद्दिष्ट, वर्णमेरु और वर्णपताका का चित्रण भी किया गया है। यद्यपि यह भाग समुचित रूप से उपलब्ध नहीं होता हैं, किंतु प्रसग के शीर्षकों एव प्राप्य सामग्री से यह स्पष्टत प्रतीत होता है कि 'लखपत पिंगळ' का आद्योपान्त अनुवाद किया गया है। ये शीर्षक इसी उपर्युक्त क्रम से 'लखपत-पिंगळ' मे प्राप्त होते है वर्ण छंदों की प्राप्त सामग्री के आधार पर दो तीन उदाहरण देखिये:—

१ कल्याण छन्द :

'भेद सहत त्रेवीस भणीजै। सो बे साठ सप्रमाण गिणीजै।
दाख सगण त्रण जगण दोय। किल्याण छद कहै सब कोय॥'

अर्थात्-कल्याण नामक छद के प्रत्येक चरण मे कवि ने ३ सगण और दो जगण का प्रयोग आवश्यक माना है। निम्नलिखित उदाहरण के चारो चरणों मे इस नियम का आद्योपान्त पालन हुआ है —

'छद कल्यांण'

। । ऽ। । ऽ । । ऽ । ऽ । । ऽ ।
'धर रूप सदा रणधीर सूर सधीर।
। । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ । । ऽ ।
निज वंस चढावण नीर हेल हमीर।
जुध जीपण खाग जुधार जैत जुवार।
वसु राखण क्रीत अपार आंकण वार॥'
- (स स स ज ज)

२ छद भुजगी :[1]

'छावी वाधै पाचसौ, च्यार अगरण कर चंद।
राजा कमधा रूप रा, दखू भुजगी छद ॥'

अर्थात् भुजगी छद के प्रत्येक चरण में ४ यगण एवं १२ वर्ण होने आवश्यक हैं। निम्नलिखित उदाहरण मे उपर्युक्त रीति का पूरा पालन हुआ है:—

छद भुजगी (भुजग प्रयात) :

I S S I S S I S S I S S
महा तेज धारी अरा माण मोडै।
I S S I S S I S S I S S
जला बोल फौजां जयच्चद जोडै।
I S S I S S I S S I S S
कला सोल धारी चखा रोस कीधा।
I S S I S S I S S I S S
लडै एम जाणैं विया देस लीधा ॥'

[य य य य]

३. मोतीदाम :

'वे हजार नव सौ वधै, तिम छावीस तमाम।
प्रगट जगण चत्र पाय मे, दीसै मोतीदाम ॥'

अर्थात् मोतीदाम छद के दो हजार नौ सौ छब्बीस रूप होते हैं और प्रत्येक चरण में ४ जगण होने आवश्यक हैं। निम्नलिखित उदाहरण में उपर्युक्त गण-रीति का पूर्ण रूपेण पालन् हुआ है—

छंद मोतीदाम :

I S I I S I I S I I S I
'बखांण जसौ भड लाख बरीस।
I S I I S I I S I I S I
सदा छत्र हेम विराजत सीस।
जिसौ भड और न ओपम जोड।
रहै थह सीह स मीढ रठौड़ ॥'

(ज ज ज ज)

---

[1] भुजगप्रयात छंद को ही डिंगल मे भुजंगी छद कहते हैं।

इनके अतिरिक्त ६१ प्रकार के वर्णछदो मे से जो छद प्राप्य हैं, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब हम मात्रिक छदो पर दृष्टिपात करेंगे।

"जसवंत-पिंगल' मे मात्रिक छद:—

यह संतोष का विषय है कि प्रस्तुत ग्रंथ में मात्रिक छदों का प्रारंभिक भाग उपलब्ध है, जो कई छदों तक क्रमपूर्वक चलता है। इन छदों मे भी रीति एव क्रम का अनुकरण 'लखपत-पिंगल' से ही किया हुआ प्रतीत होता है। 'लखपत पिंगल' मे 'त्रिभगी' छद से रीति प्रारंभ होकर 'सारसी', 'चद्रायणा' आदि के माध्यम से सततरूपेण वृद्धि को प्राप्त होती गई है। श्री चिमन कवि ने भी उसी क्रम का आद्योपान्त निर्वाह किया है। प्रारभ मे ही '॥अथ मात्रीक छदा भेदश' शीर्षक दृष्टिगोचर होता है,तत्पश्चात् 'त्रिभगी' और सारसी' छदो के लक्षण एव उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। तीसरा छद 'चद्रायणा' अनुपलब्ध है और चौथा 'पद्धरी' छद प्राप्य है। पाँचवा 'चौपाई' छद भी अप्राप्य है तथा छठा 'वेअक्खरी' छद सुरक्षित है। आगे सातवें से लेकर १३ वें छद तक का अंश खडित है जिसमे उक्त ग्रथ के अनुसार क्रमश 'आटको', 'ऊधोर', 'सहूर', 'रगमाळ', 'भ्रमर', 'विहद' और 'मेर' जाति के छंद थे। इसके पश्चात् १४ वें छंद से १७ वें छद तक का क्रमपूर्वक अश सुरक्षित है जिसमें 'मकरद', 'निगम', 'मधुर', और 'दिनकर' नामक छद हैं। आगे १८ वें छद से लेकर २९ वें छद तक का अश दुर्भाग्यवश पुन खडित हो चुका है जिसमे 'लखपत-पिंगल' के अनुसार क्रमशः 'कंवार', 'मयंक' 'सोभ', 'रुकम', 'सुथल', 'सुरंग', 'ब्रहम', 'सजगीस', 'प्रेम', 'प्रमोद', 'श्रीकार', और 'सुथिर' नामक छदों का विस्तार था। इसके बाद ३० वें छंद से लेकर ३५ वें तक का भाग पूर्ण रूप से क्रमपूर्वक उपलब्ध है, किंतु उसमे एक तेतीसवाँ छद 'कमल' खडित है। शेष के नाम क्रमशः 'प्रसाद', 'कळस', 'मल्हार', 'चमर', और 'कुसुम' हैं। तत्पश्चात् मात्रिक छदों का भाग प्रायः विनष्ट हो चुका है जिसमे उक्त प्रेरक ग्रथ के अनुसार क्रमश 'किसोर', 'अवदात', 'वारण', 'महारस', 'गुहिर', और 'जसमाळ' नामक छद थे। इस प्रकार कुल ४१ प्रकार के मात्रिक छदों का कवि ने इस ग्रन्थ मे विस्तार दिखाया था, ऐसा 'लखपत पिंगल' के आधार पर हम मानते हैं। साथ ही मात्रिक छदों का अतिम अश मिला है जिसकी संख्या कवि ने ८२ लिखी है। प्रत्येक छद के लक्षण एक दोहे या चौपाई मे, तत्पश्चात् छद का एक उदाहरण दिया गया है। एक छद के लिये दो सख्या अकित करने की इस प्रणाली के अनुसार ४१ प्रकार के मात्रिक छदों की कुल सख्या स्वतः ही ८२ होती है।

उपर्युक्त ४१ प्रकार के मात्रिक छदों की रीति प्रतिपादित करने के पश्चात् कवि ने उनके नामो की सूची पद्धरी छदों मे उसी क्रम से गिनाई है,जिस क्रम से वे छंद 'लखपत-पिंगळ' मे प्रयुक्त किये गये हैं। सूची का थोड़ा ही अश उपलब्ध हो सका है। अब 'जसवत-पिंगळ' से के मात्रिक छदो के कतिपय उदाहरण अवलोकित कीजिये —

१. त्रिभगी छन्द के लक्षण ·

'दस ग्रठ ग्रठ रस मात दखीजे।
च्यार वार विसराम चवीजै।
ग्रावै त्रिभगी तो गुर ग्रत।
ते समजै राजा जसवत ॥'

ग्रर्थात् प्रत्येक चरण में क्रमशः दस, ग्राठ ग्राठ ग्रौर षट् (रस) पर यति होकर कुल ३२ मात्राएँ होती हैं। चरण के ग्रन्त मे दीर्घ मात्रा होनी ग्रावश्यक है, उदारणार्थ —

त्रिभगी छद ·

'राजा रोसालौ, कुल किरणालौ, विरद वडालौ, विरदालौ।
रजवट रोमालौ, परजा पालौ, इल रखवालौ, ग्रवभालौ।
वणियौ वरसालौ, दान वडालौ, कमध सिघालौ, क्रोधालौ।
कठोर पटालौ, रोस रढालौ, मौजां चालौ, मतवालौ ॥'

२ सारसी छद :

'रिख दध सर ग्रह मातरा, दीरघ ग्रते देह।
वार च्यार ग्रावै विरत, कवी सारसी केह ॥'

ग्रर्थात् इसके प्रत्येक चरण में कुल २८ मात्राएँ ग्रौर क्रमश ६ (ग्रह), ७ (सरोवर), ७ (समुद्र), ग्रौर ५ (ऋषि) पर यति होती है। इस दोहे मे संख्या सूचक शब्द विपरीत गति मे ग्राये हैं, जैसी कि प्राचीन ग्रथों मे प्रणाली थी। चरण का ग्रतिम वर्ण दीर्घ होना ग्रावश्यक है।

उदाहरण :—

'ग्राणदकारी, छत्रधारी, रीत भारी, रक्खणा।
सोभागधारी, ऐणधारी, दै हजारी, दक्खणा ॥
ऊमग ग्रंगा, ग्राप रगा, दान चगां, दीपसै।
सूभ्रात सगा, रीज रगा, जोध जगा, जीपसै ॥'

३ सुन्दर छन्द :

लक्षण—

'दस हजार नवसौ दरसाई।
विगत रूप तेवीस वताई।

गरू लघू चवदै कर ग्यान।
तिण पर करण तेवीसा तांन।
आखर सोलै करी उपाई।
मात पचीसां सकल मिलाई।
वदू महीपत तणा वखाण।
सुदर छद एण सैनाण॥'

उदाहरण :—

'सूरवीर साच वाच कमधा उदोत राजा।
पारका दबावै देस अनमा नमावै राजा।
नखत्तेत नेतबध मारवा समद राजा।
दूसरौ गगेव मान रूप तेर साख राजा॥'

इसी प्रकार उपर्युक्त अन्य प्राप्त छदों के लक्षण सोदाहरण चित्रित किये गये हैं।

मात्रिक छदों के अतिरिक्त कवि ने मात्रा-प्रस्तार, मात्रा-उद्दिष्ट, मात्रा-नष्ट, मात्रा पताका-विस्तार, मात्रा-मरकटी, गाहा-विचार और गाहा-मेरु आदि अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यागों का सरल एव सुबोध रीति से निरूपण किया था। दुर्भाग्यवश अब उनका अत्यन्त खडित एवं विनष्ट रूप प्राप्त होता है, जो उदाहरण देने योग्य नहीं कहा जा सकता। ये विषय रीति के महत्त्वपूर्ण अग पर प्रकाश डालने वाले हैं, तथापि इनका समुचित रूप अप्राप्य होने से केवल उल्लेख मात्र से पाठकों को सन्तोष करना पड़ेगा। इसके पश्चात् २६ प्रकार के गाहा लक्षण सोदाहरण थे, वे भी अब केवल नमूना मात्र शेष बचे हैं। इनसे आगे कवि ने डिंगल के प्रमुख गीतो की रीति का भी उल्लेख किया है। यद्यपि 'लखपत-पिंगळ' मे गीतों की रीति के पश्चात् प्रत्येक का उदाहरण भी दिया गया है तथापि चिमन कवि ने अपने इस ग्रन्थ मे छप्पयों द्वारा मुख्य डिंगल गीतो के नाम एव लक्षणो का ही प्रतिपादन किया है। गीतों के क्रम मे भी प्रायः उक्त ग्रन्थ का ही अनुकरण किया गया है। अन्त में कवि ने प्रारंभ की तरह कुछ सामग्री अपनी ओर से देकर ग्रन्थ की मौलिकता के अंश का महत्त्व बढा दिया है। अन्तिम भाग का सूचक एक पन्ना हस्तगत हुआ है, जिसमे दो छप्पय बड़े काम के मिले हैं, जो इस प्रकार हैं :—

उदाहरण :—

'प्रथम कयौ गणपत्र, विगत सारी विगताए।
वरण छंद वरणिया, रूप सख्या परचाए।
मात्रा छद मलूक, तिकौ गुण पिंगल तवियौ।
जसवत रौ जसवास, कहै कव 'चिमनौ' कवियौ।

बिराई गाम सासण बसै, लुदरासुत दत लोडियो ।
कवियाण जात दादौ करन, जथा सुणी ज्यू जोडियौ ।।'

प्रस्तुत छप्पय मे कवि ने इस ग्रन्थ मे वर्णित मोटी-मोटी वातों का उल्लेख किया है, जैसे सर्व प्रथम तो 'पिंगल की गण पत्री का भेद-निरूपण कर गणादि की व्याख्या की गई है। तत्पश्चात् वर्ण-छदो का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमे उनकी रूप सख्याओ का उल्लेख है। फिर मात्रिक छदों निरूपण किया गया है जो 'पिंगल' के नाम से शास्त्रो में वर्णित है। इस पद्धति के द्वारा श्री चिमनजी कविया ने जोधपुर नरेश जसवन्तसिंहजी (द्वितीय) का गुणगान किया है। आगे कवि ने अपना पूरा पता भी इसी छप्पय में दे दिया है जिसके अनुसार कवि का ग्राम विराई है जो चारणो की शासन जागीर है। पिता का नाम श्री लुद्रदानजी, जाति (गोत्र) कविया और पितामह का नाम श्री करनीदानजी था। उस चिमन कवि ने जैसी छद-शास्त्र की 'जथा' या रीति सुनी उसी के आधार पर यह रचना सम्पन्न की है। आगे दूसरा छप्पय और है, जैसे .—

'पिंगल छद प्रमाण, सेस कहिया अणसख्या।
मथै कमण मैं'राण, समज घण जाण असख्या।
भाल सीख तुछ भेद, कछू बुध माफक कहियौ।
बाल लघू गुण बहल, राज जस अवचल रहियौ।
मैं कह्यौ सुजस जोधामुगट, प्रगट मुरधरा पत्त रो।
सीखता भेद पावै सकव, जस नामौ जसवत रो ।।'

इसमे कवि ने कहा है कि पिंगल छदो के प्रमाण तो शेषनाग ने बताये हैं। उनका सपूर्ण सग्रह एक महार्णव वन जाता है जिसका मंथन करना बडा कठिन कार्य है। उस शेष के वचनों से बने पिंगल के छद शास्त्र को पढ कर व सीख कर अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने अपनी भाषा मे कहा है। आकार यद्यपि इसका बहुत बडा नहीं है, किन्तु छोटा भी उस बालक की तरह है जिसमे अनेक गुण होते हैं। साथ ही एक योग्य एव विद्या प्रेमी राजा का यश अमर रह गया। अन्त मे कवि कहता है कि मैंने तो मरुधरापति एवं जोधवशियो के मुकुट श्री जसवतसिहजी (द्वितीय) का सुयश गान ही किया है, किंतु यदि कोई सुकवि इसका अध्ययन करेगा तो इसमे से काव्य के भेद अवश्य सीखेगा। ग्रथ के अन्त मे एक दोहा भी प्राप्त हुआ है, जो इस प्रकार है —

'जसवत पिंगल जोड मा. फेर नही को फार।
सकवी जो पावै समज, आवै अरथ उदार ।।'

इससे आगे और दोहा था, जिसकी एक अर्द्धाली ही मिली है किन्तु उसमें भी कवि ने 'बुध छोटी मोटा वचन" कहते हुए विषय की गम्भीरता एव अपने ज्ञान की तुच्छता की ओर सकेत किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'जसवंत पिंगळ' मे ६१ प्रकार के वर्ण-छंदों की रीति एवं उदाहरणों मे प्राय हमीर रतनू कृत 'लखपत पिंगळ' का साम्य यत्र तत्र सर्वत्र झलकित होता है। छदो का विस्तार हमारे यहाँ ग्रन्थो मे इतना अधिक मिलता है कि उसको इकट्ठा करना भी बडा कठिन कार्य है। कवि जयकृष्णदास कृत 'रूपदीप-पिंगळ' मे ५२ प्रकार के छदों के भेद दिये गये हैं। इसी प्रकार किसनो आढ़ा ने 'रघुवरजस प्रकास' मे डिंगल गीतो के साथ अनेक छंदो के भी लक्षण सोदाहरण व्यक्त किये हैं। किन्तु 'लखपत-पिंगळ' एवं उपर्युक्त अन्य दोनो ग्रन्थो के प्रायः छद एक दूसरे से अलग हैं। हाँ, कुछेक छद ऐसे भी हैं, जिनके लक्षणों में समानता होते हुए भी केवल नामों का ही अन्तर है। जैसे वैताल छद जो महात्मा ईशरदासजी एवं गणेशपुरीजी ने अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया है उसी को रूपदीप पिंगळ' मे 'शकर' छद कहा गया है। फिर भी कुछ प्रमुख छद जो डिंगल व पिंगळ में अधिक प्रयुक्त होते हैं, उनका उल्लेख उपर्युक्त सभी रीति-ग्रन्थो मे समान रूप से पाया जाता है। उदाहरणार्थ मोतीदाम, भुजगी, त्रोटक, त्रिभगी, पद्धरी आदि-आदि। 'लखपत-पिंगल', के 'चन्द्रायणा' एवं 'उद्धोर' छद 'रघुवरजस-प्रकास' मे भी मिलते हैं। श्री चिमनजी ने तो केवल हमीरजी रतनू कृत 'लखपत पिंगळ' के छदो का भावानुवाद ही किया अतः रोमकद' और रेंणकी' जैसे डिंगल के प्रमुख छदों तक का उल्लेख नहीं किया गया, जिनकी चिमनजी के काव्य मे भरमार है। 'कडषा' छंद जिसे 'कड़खा' भी कहते हैं, का भी इस ग्रन्थ मे चिमनजी प्रयोग नहीं कर सके जो 'रूपदीप-पिंगल' मे है और साथ ही स्वयं कवि ने 'हरीजस मोख्यारथी' ग्रन्थ मे एक जगह प्रयुक्त भी किया है, जैसे :—

'अला अल्लेक सो एक इवराास है, भ्रम भीना जिके दोय भाखै।
कहै 'चिमनेस' निज नाम ताको गहै, ररौ ही ररौ हो कठ राखै॥'

इसके अतिरिक्त डिंगल एव पिंगल का प्रसिद्ध छद 'नाराच' की भी चिमनजी ने चर्चा नहीं की, यद्यपि उनकें हाथ से लिखे 'नाराच छद' प्राप्त होते हैं। इन सबका एकमात्र कारण यही था कि उनका ध्येय छदो के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लखपत-पिंगळ का सरल व सुबोध डिंगल भाषा मे केवल भावानुवाद करना था। यद्यपि कवि ने इस ग्रन्थ मे अनुवाद की वह अपूर्व एव अनूठी शैली अपनाई है जिससे कृति मे स्वतत्र एव मौलिक रचना का सा आभास दिखाई देता है। ग्रन्थ के अधिकाश भाग का तथाकथित भावानुवाद ही हुआ है, किंतु फिर भी दो एक स्थलों पर हमीर कवि और चिमन कवि मे थोडा सा अन्तर दिखाई देता है।

'लखपत-पिंगल' के प्रारम्भ मे ही वर्ण छदों का विस्तार शुरू हो जाता है जिसके अतर्गत् 'पावन' छद के लक्षण व उदाहरण आते हैं। लक्षणों का अनुवाद चिमनजी ने वैसा ही किया है, यथा —

'तीस आण एको तजो, हुवै पचाण हजार।
नवसौ रूप निरक्खता, दाख बतीस उदार॥
सहत लघू गुर सगण सत, पाये ऐह प्रमाण।
राजा श्री जसवंत रा, ध्रद पावन वाखाण॥'

छद पावन :

'जसवत बडो नग, देस मडोवर, रीत दवापर, नीत रखै।
धर सीस कलाधर, जीतण सम्मर, दान सरोवर, क्रन्न दखै।
लख दान समापण, दालद कापण, ऐह वडापण, मौज अपै।
जुध वार अरा हण, साजव जोसण, जास जणो जण, नाम जपै।।'

इस छंद के लक्षण से प्रत्येक चरण मे सात सगण और अन्त मे ह्रस्व एग दीर्घ का आदेश है। श्री चिमनजी कृत उपर्युक्त उदाहरण मे प्रत्येक चरण के अन्दर ८ सगण आ गए हैं, जिससे दुर्मिला छद या ८ सगण का सवैया बन जाता है। इस छंद की रीति के अनुसार हमीर कवि ने 'लखपत-पगळ' मे सही रूप मे उदाहरण दिया है। उन्होंने इसी प्रकार से ७ सगण लाकर अन्तिम शब्द 'रक्खणा', 'दक्खणा', 'भूपती' और 'दौलतो' प्रयुक्त कर रगण वनाते हुए अन्तिम वर्णों का निधिवत् लघु और दीर्घ बना दिया है। साथ ही अन्य छदो मे भाषा एग कला की दृष्टि से चिमनजी पीछे नहीं बलिक कहीं-कहीं तो आगे भी बढ़ गये हैं। मात्रिक छदो मे चिमनजी ने अपनी प्रतिभा से उदाहरण इतने सुन्दर रचे हैं, जो 'लखपत-पिंगळ' से अधिक आकर्षक प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ हमीर कवि ने 'त्रिभगी' छद के ४ चरणो के प्रत्येक दो मे से एक से अनुप्रास प्रयुक्त किये हैं जब कि चिमन कवि चारो चरणो मे एक से १६ अनुप्रास लाने मे सफल हो सका है। अन्य सभी प्राप्त छदो मे पूर्णरूपेण भाव साम्य प्रतीत होता है, किन्तु एक 'मकरंद' छंद का उदाहरण अपवाद स्वरूप कहा जा सकता है। 'मकरंद' छद के लक्षण तो दोनो में एक से चित्रित किये गये हैं, यथा चिमनजी कृत।—

'पनरै खट मात्रा परख, एक चरण मे आंण।
कवियण छदा कीजिये, विध मकरद वखाण।।'

अर्थात् इसके प्रत्येक चरण मे २१ मात्राएँ होनी आवश्यक हैं।

छद मकरद :

'अवि गज इणवार दीपियौ वडौ दतार।
जोधहरौ जसवार सरावै ससार।
कमधा उदोतकार कीरत तण कुठार।
भुजां सोहै व्रद भार प्रसध्ध अपार।
जस रस स्रव जाण मता छता मौज मांण।
भडा रूप वस भाण ऊगौ अवसाण।
अरँदा जुटै अराण कस चपला केवांण।
मुगला उतारै माण हसै हिंद वाण।।'

[जसवंत-पिंगळ]

अब 'लखपत-पिंगल' का उदाहरण देखिये :—

पाये मात्रा खट पनर, रूडा गुण मकरद।
कुंअर तणी कीरत करा, लखपत वखत विलद॥

छद मकरद :

'इल पुडि अवतार, सुयण मिलि साख सिंगार।
असिमर आचार, भलै भुजि खत्रवट भार।
गढ़पति गहगीर, हद विहद हेल हमीर।
धरपति लखधीर, वडमि धण बावन वीर॥'

[लखपत पिंगल]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि श्री चिमनजी ने 'मकरद' छन्द के प्रत्येक चरण मे 'लखपत-पिंगळ' की भांति मात्राएँ तो २१ ही मानी हैं किन्तु एक पक्ति मे दो चरण रच डाले हैं। इस प्रकार हम उपर्युक्त उदाहरण मे दो 'मकरंद' छन्द कह सकते है जबकि उदाहरणार्थ सर्वत्र एक ही छन्द की आवृत्ति की गई है। यह चिमन कवि ने भूल से किया या जानबूझ कर एक नई रीति प्रतिपादित करने की इच्छा से किया होगा इसका सही अनुमान लगाना कठिन है। इस एक छन्द के अतिरिक्त पूरे उपलब्ध अंश मे शेष कहीं भी खटकने वाली बात दृष्टिगोचर नहीं होती है। इस ग्रन्थ मे प्रयुक्त छन्दों का उद्गम संस्कृत के प्राचीन शास्त्रादि हैं जिनसे भावानुवाद होता हुआ वह रूप डिंगल मे भी उसी साज-सज्जा के साथ समाहित हो गया।

मात्रिक एव वर्ण-छदों के अतिरिक्त मात्रा पताका, मात्रामर्कटी एवं मेरु आदि का वर्णन करने के पश्चात् चिमनजी ने एक स्थल पर लिखा भी है कि यह केवल परपरागत रूढ़ो के पालनार्थ चित्रित किया जाता हैं, वरन् व्यावहारिक जीवन मे इनके रचने व कहने की आवश्यकता ही कहाँ है? इसी भाव को व्यजित करने वाली उनकी एक दोहे की पक्ति बड़ी मार्मिक हैं, यथा:—

'मेर पताखा मरकटी, कहण तणा की काम।'

तत्पश्चात् गाहा के २६ भेदो का वर्णन जो 'लखपत-पिंगल' एवं 'रघुवर जस प्रकास' आदि मे उल्लिखित नामो के अनुसार ही हुआ होगा। उदाहरण के योग्य स्पष्ट अश प्राप्त होने के अभाव में इसकी चर्चा मात्र ही पर्याप्त होगी। इस प्रकार यह 'जसवंत पिंगळ' ग्रन्थ 'लखपत-पिंगल' के अनुवाद के अतिरिक्त भी कुछ महत्वपूर्ण अशों से युक्त एक सुन्दर राजस्थानी कृति है किंतु पूर्ण रूपेण प्राप्त नहीं होने का दुःख अवश्य है। 'डिंगल भाषा में इतना सरल, सुबोध और इतने अधिक छदो की रचना का अन्य ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं होता। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। ऐसा सुनने मे आया है कि 'जसवंत-पिंगळ' ग्रन्थ तैयार होने के कुछ ही दिनो पश्चात् अकस्मात चिमनजी का देहान्त हो गया था। इस प्रकार यही उनका अन्तिम ग्रन्थ माना जा सकता है।

स० १६४० वि० के आषाढ वदि १३, शनिवार को लिखे गये 'लिछमरण विलास' ग्रन्थ मे यह उल्लेख है कि, 'जाचू पत जोधाण री, इसौ नहीं आंकूर।' इससे यह प्रकट होता है कि तब तक जोधपुर महाराजा से इनकी भेंट नहीं हुई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ 'जसवंत-पिंगळ' सम्भवत स० १६४३-४४ के बीच लिखा प्रतीत होता है। इस प्रकार यह प्रति खडित होते हुए भी डिंगल-साहित्य मे अपना अनूठा स्थान रखती है।

(२) भाखा-प्रस्तार

श्री चिमनजी कविया ने एक ग्रथ 'भाखा-प्रस्तार' भी रचा जिसमे काव्य की रीति के ही भेदादि वर्णित हैं। 'जसवन्त पिंगळ' और 'भाखा-प्रस्तार' दोनो लगभग एक से ही रीति-ग्रन्थ हैं। 'जसवत-पिंगळ' मे जहां मुख्यतया छदो का विस्तार है वहां 'भाखा प्रस्तार' मे गणो से सम्बन्धित विवेचन ही मुख्य है। साथ मे छप्पयो, दोहो एव नीसाणियो के विभिन्न प्रकार आदि का भी वर्णन अवश्य किया गया है। भाखा-प्रस्तार ग्रन्थ भी बहुत कम मात्रा मे उपलब्ध हो पाया है। लगभग ⅓ हिस्सा तो प्रारभ का ही लुप्त है; फिर भी कुछ ऐसे आधार मिले हैं जिनसे लुप्त सामग्री के विषयो का ज्ञान हो जाता है।

कुछ हस्तलिखित पुस्तको की छानबीन करने से ज्ञात हुआ है कि श्री चिमनजी ने 'काव्य-प्रकास' नामक एक छोटे से पिंगल के रीति ग्रन्थ की प्रतिलिपि स्वय के हाथ से की थी। वह प्रतिलिपि उन्होंने स० १६३४ वि० के मार्गशीर्ष कृष्णा ५ के दिन पूरी की थी। 'काव्य-प्रकास' की भाषा १८ वीं शताब्दी के आसपास की प्रतीत होती है। मगलाचरण के पश्चात् प्रशस्तिपूर्ण एक छप्पय है, जिसके अन्त मे 'सदा राज सुलतांन जय' शब्द मिलते हैं। इसी प्रकार अन्तिम अश के एक दोहे के दूसरे चरण मे लिखा है :—

'बोध पिछानौ सुमति अब कहै राज सुलतान।'

लगभग ८-१० पृष्ठो के लघु आकार मे ही इस 'काव्य-प्रकास' की इतिश्री स्पष्ट हो जाती है। इसके पश्चात् चिमनजी के द्वारा लिखी हुई रस के विवेचन पर कुछ महत्त्वपूर्ण कविता अवश्य प्राप्त होती है, जो अपूर्ण रूप मे ही छोडी जा चुकी प्रतीत होती है। कवि ने उपर्युक्त 'काव्य-प्रकास' के गण-वर्णन और अन्य रस-निरूपण आदि विषयो को डिंगल मे 'वयण सगाई' अलकार से विभूषित कर एक स्वतन्त्र रचना तैयार कर दी। फिर भी निस्सकोच यह कहा जा सकता है कि चिमनजी ने इस ग्रन्थ की सामग्री को पूर्णरूपेण पिंगल के काव्यो से ग्रहण कर रूपान्तरित किया है। यद्यपि 'भाखा-प्रस्तार' का प्रारम्भिक अश अनुपलब्ध है तथापि 'काव्य-प्रकास' की पक्ति के प्रत्येक शब्द का साम्य कवि के उक्त 'भाखा-प्रस्तार' ग्रन्थ मे दृष्टिगोचर होता है। इसके आधार पर हम खडित अश के विषयो का सही अनुमान लगा सकते हैं। 'काव्य-प्रकास' के आधार पर प्रारम्भ से निम्नलिखित गण-भेद थे :—

(१) गण रूप भेद वर्णन।
(२) गण के वर्ण वर्णन।

(३) गण देव वर्णन ।
(४) गण वश वर्णन ।
(५) गण कुल वर्णन ।
(६) गण फल वर्णन ।
(७) गण पिता वर्णन ।
(८) गण माता वर्णन ।
(९) गण वार वर्णन ।

यह ग्रन्थ प्राय पद्धरी छदो मे ही रचा गया है। गणो के ९ वें भेद 'वार' एव 'कोण' के विषय मे दो चार चरण ही उपलब्ध हुए हैं, जैसे—मगण का वार शुक्र है जबकि सूर्य दक्षिण की दिशा मे रहता है। (मगणाद सुक्र दिखणाद भांण)। इसी प्रकार 'तव सात वार अठ कूण तास' से यह प्रतीत होता है कि आठों गणो के लिये ७ वार एव ८ दिशोपदिशाएँ आदि होती हैं। फिर आगे 'गण तिथि नखत्र वरनन' का प्रसग है।

उदाहरणार्थ :—

गण तिथि नखत्र वरनन ·

'चवदसमी रोहणि चौथ सोय।
जद सूर प्रगट भरणी स जोय।
तै वार कहै कव छद तांन।
दातार मगण देवै सु दान ॥'

अर्थात् चौदहवीं तिथि के दिन रोहिणी नक्षत्र हो या चतुर्थी के दिन भरणी नक्षत्र हो तो उस समय कोई कवि यदि मगण से कविता का शुभारम्भ करे तो निश्चय ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार पडवा तिथि को मृगशिरा या कृत्यका नक्षत्र होवे तो प्रहर दिन चढ़ने पर यगण से रचना का श्रीगणेश करना चाहिये, जिससे वह शुभफल प्रदाता बन जाता है। इसी प्रकार अन्य गणो की भी तिथियां एव नक्षत्र व्यक्त किये गये हैं। इसके पश्चात् 'गण जोग वरनन' मे गणो के शस्त्र, वस्त्र, भोजन, तिलक आदि का वर्णन है।

उदाहरणार्थ —

गण सस्त्र नाम :

'मगणा कर चक्कर हस्त मूल।
तै वार यग्गणा है त्रसूल।
वै रगण लेत है रगतवान।
तै वार सगण तरवार तांन।

पोलीस बांन तगणा प्रहार।
धिन जगण हाथ मा गुरज धार।
भगणास हाथ फरसी सभाय।
नगणेस नगन बाहू निभाय ।।'

उपर्युक्त पद्धरी छ दो मे बडी सरल भाषा मे ८ गणो के शस्त्रो के नाम गिनाये हैं, जैसे मगण के हाथ मे चक्र है, यगण के त्रिशूल, रगण के रक्तवान, सगण के तलवार, तगण के बाण, जगण के गुरज, भगण के परशु तथा नगण नग्नबाहु है। इसी प्रकार गणो के वाहनो का वर्णन है।

गण वाहन वरनन :

'जो चढै मगण हाथीस जोग।
मानौ स यगण चढ चलै मोर।
रगणास पालखी चडत राण।
कर कोड सगण चढियौ केकाण।।'

अर्थात् मगण का वाहन हाथी, यगण का मोर, रगण का पालकी तथा सगण का वाहन घोडा है। इसी प्रकार आगे तगण के लिये कच्छप, भगण के लिये सिंह, नगण के लिये ऊट आदि वर्णित किये गये हैं। आगे शरीर के विभिन्न अवयवों पर गणों का निवास बताया है।

गण गात वासौ वरनन :

'विध मगण करै उतबंग वास।
यगणेस नेत्र ऊपर उजास।
रगणेस कठ असथांन रास।
सगणाध करत उर माय वास।।'

अर्थात् मगण का वास शीश पर, यगण नेत्रों पर, रगण कठ मे, सगण उर में और इसी प्रकार आगे तगण का सीने मे, जगण का हृदय मे, भगण का नाभि मे तथा नगण का लिंगनाद पर स्थान बताया है। आगे गणो की आयु के विषय मे लिखा है।

गण वेस [वयस्] वरनन .

'मगणास वरस वीसा प्रमाण।
जो यगण अठारै वरस जाण।
सो रगण जाणिये वरस सात।
वाचा सगणा दस्सा विख्यात।।'

इस प्रकार आठो गणों की आयु बताई गई है। आगे कवि ने फिर बताया है कि किन-किन गणों के आपस मे कैसा मेल रहता है, जैसेः—

'मगणास प्रामणा नगण मान।
यगणा मिल भगणा उन्नमान।
सो च्यार भला गण कहू सुद्ध।
अब कहू च्यार कवता असुद्ध।
रगणा मिल सगणा एण रीत।
तगणास जगण है बेपरीत।
ऐ च्यार आद नह कोय आण।
'चिमनेस' कवी दाखै पछाण।।'

अर्थात् मगण एव भगण परस्पर एक दूसरे को सस्नेह अतिथि-सत्कार प्रदान करते हैं। यगण एवं भगण भी ठीक ही रहते हैं। रगण व सगण तथा तगण व जगण, ये परस्पर विरोधी गण हैं। इनको कविता के आदि मे कभी नहीं लाना चाहिये, ये अशुभ सूचक हैं। तत्पश्चात् नव रस-वर्णन किया गया है, यथा :—

नव रस वरनन :

'सिनगार नवी वरनन कवेस।
सो पात होय बुध्धी प्रवेस।
ऊपजै मिटै वरनन्न देव।
भाखू स ताय को छद भेव।
सिनगार रस्स है वरन साम।
उतपत क्रिसान मिट अगन धांम।
सज हास रस्स को वरन सेत।
कव आद देव ताको कहेत।।'

इस प्रकार कवि कहता है कि नौ रस-वर्णन के शृङ्गार से ही कवि की बुद्धि का कपाट खुलता है। रसों के वर्ण एव उद्भव के विषय मे कवि का कथन है कि शृङ्गार रस का वर्ण श्याम है तथा उत्पत्ति कृशानु से हुई है। हास्य रस का वर्ण श्वेत तथा उद्भव आदि देव से है। आगे कवि ने इसी प्रकार के वर्णन क्रम मे कहा है कि करुण रस का देवता यम, रौद्र का रुद्र, वीर का इंद्र, वीभत्स का काल तथा शान्त का महेश और अद्भुत का काल आदि-आदि हैं। अन्त मे नव रस-वर्णन की समाप्ति पर कवि शान्त रस के विषय मे कहता है कि :—

'हव स्वात रस्स सुर है महेस।
चद्रास वरन ताको चवेस।

परखना अत्यत हितकर होगा। जो कवि इसके अर्थों से पूर्ण भिज्ञ होगा, वही अच्छे कवि की प्रतिभा को परख कर उसका समुचित आदर कर सकेगा। श्री चिमन कवि कहते है कि यह भेद चतुर एव विद्वान कवि ही अपने काव्य मे पूर्णरूपेण समझ कर प्रयुक्त कर पाते हैं, अन्य लोग नहीं।

इसके पश्चात् एक और छप्पय प्राप्त हुआ है, जिसमे कवि ने स्वय के निवास-स्थान, वश, शिक्षक आदि का परिचय दिया है।

'मारवाड थल मद्ध, इडग थानक विराई।
जात सु कवियौ जाण, सकत मालण सरणाई।
वसू आथमणौ वास, धड सिवदाना सद्धर।
दादौ 'करनीदान', पिता 'लुदरेस' वडै पर।
सीखियौ भेद जुढियै सकव, करनाणी 'जीवण' कनै।
तिण माय मदत खेतलां[1] तणी, महा बुद्ध दीधी मनै॥'

अर्थात् मारवाड मे थळी कहलाने वाले क्षेत्र (शेरगढ तहसील) मे स्थायी निवास ग्राम विराई। जाति या गोत्र कविया तथा आराध्य शक्ति श्रीमाल्हणदेवी। आथूणात्रास मे शिवदानोतो का धडा तथा पिता का नाम श्री लुद्रदानजी एवं पितामह का श्री करनीवानजी। काव्य का भेद जुढिया गांव (विराई से ४ कोस दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित) के निवासी श्री करनीदानजी के पुत्र श्री जीवणदासजी लाळस (कवि के मामा) से सीखा, जिसमे खेतसीजीं[1] (लाळस) का भी पूरा सहयोग रहा।

सबके अत मे कवि ने इस ग्रन्थ के परिचायक सवत् मिति से युक्त कुछ महत्त्वपूर्ण दोहे लिखे हैं।

उदाहरणार्थ—

'गोमद वाहण गुरड ना, समझ वताई सेस।
दुयवी सो गुण देख नै, चित्र लिख्या चिमनेस॥१॥
ग्रथ लघू अणपार गुण, सिसु भ्राता सीखाण।
कवियौ 'चिमनीदान' कै, मम वुध्धी परमाण॥२॥
समत उगणीसै समै, पंतीसै वैसाख।
तिथ पाचम नै सोम तद, भाखै पूरण भाख॥३॥
किसन पवग्र दूजौ कहू, आखा तीजा अग्र।
कवियौ 'चिमनीदान' कै, निकट जोधपुर नग्र॥४॥'

---

[1] ऐसी किवदती है कि चिमनजी के नाना को क्षेत्रपाल (खेतपाल) देव का वरदान हुआ था कि तेरे पोत्रो व दोहित्रो तक विद्या का पूर्णरूपेण अधिकार रहेगा। चिमनजी कृत 'मदत खेतल तणी' का शायद यही आशय हो।

अर्थात् शेषनाग ने जो काव्य का भेद गरुड को बताया था, उसी के आधार पर चिमनजी ने भी गुणकारी वस्तु समझ कर उसे पुनः चित्रित किया है। आगे फिर कवि कहता है कि ग्रथ तो छोटा है, किंतु गुणो की तादाद बहुत बडी है। अपने शिष्य या अनुज को सिखाने के उपयुक्त बनाने मे कवि ने यथा-बुद्धि काफी प्रयास किया है। स० १९३५ वि० के वैशाख वदि ५, सोमवार के दिन यह ग्रथ सपूर्ण किया गया था। 'निकट जोधपुर नग्र' से प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अपनी जन्मभूमि बिराई मे ही की थी। अततोगत्वा कवि ने अपने हस्ताक्षरो के साथ पुष्पिका मे लिखा है—

"सुभवस्तु किल्यांणमस्तु समत १९३५ वैसाष वद ५ दा. चिमनै लुदरदानोत रा छै वाचै विचारै ज्या नै जै श्री मालाजी री वाचज्यो जीः सुष सुभ सत इति श्री माषा प्रस्तार ग्रथ संपुरण समापते कवियै चिमनदान रो कहियौ बुध प्रमाणं कयौ दोस न देयते षमा करज्यो ××××× ।"

श्री चिमनजी ने गणो की रीति परिचायक कृति 'भाखा-प्रस्तार' मे अनेक सुन्दर तत्वो का सम्मिश्रण किया है। गणो के विभिन्न अगो, क्षेत्रों और प्रभावो की जैसी विस्तृत एव प्रामाणिक व्याख्या इस छोटे से ग्रन्थ में की गई है, वैसी डिंगल के किसी भी ग्रन्थ मे आज तक नहीं की गई। यह इसकी सबसे बडी विशेषता है। डिंगल के अन्य रीति-ग्रथों-'रघुनाथरूपक', 'रघुवर जस प्रकास' तथा पिंगल के भी कई ग्रथों मे गणो का भेद-निरूपण किया गया है, किंतु उसकी मात्रा तुलनात्मक दृष्टि से अत्यत ही कम है। पिंगल ग्रथ की बहुमूल्य सामग्री को सरल भाषा, सुबोध छदो और 'वयणसगाई' अलकार से सुसज्जित कर डिंगल-काव्य को एक नई देन दी है। 'नीसाणी' छद के १२ भेदो के जो नाम हैं, वे 'रघुवर जस प्रकास' मे वर्णित 'नीसाणियो' से भिन्न हैं। इनका अपना पृथक अस्तित्व है। दोहो के २३ भेद तथा 'अजय' छप्पय के ८२ भेद 'रघुवर जस प्रकास' मे प्रयुक्त भेदो से पूर्णतया मेल खाते हैं। इस प्रकार सक्षेप मे इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि 'भाखा-प्रस्तार' जैसी रीति-परिचायक कृति डिंगल-साहित्य को अपने प्रकार की एक नवीन और महत्त्वपूर्ण देन है। इसका खडित रूप भी द्वितीया के चद्रमा की भांति साहित्य-लोक में सम्मान्य गिना जा सकता है।

——

जोगासरभ उतपन्न जाण।
ह्वै जात मोह के साथ हाण॥'

अर्थात् शान्त रस का देवता महादेव, वर्ण चन्द्र तथा योगारम्भ से उत्पत्ति है, अत: सासारिक मोह का नाश हो जाता है। आगे कवि ने रस मन्दिर का वर्णन किया है, जैसे :—

रस मदर वरनन :

'जे कज पुज मनि मध्य जाग।
पढियेस अस्ट मडल पिराग।
तिनकेस नाम देहू बताय।
अनभै सु रस्स जागै उपाय॥'

अष्टमडलीय पराग मे से आठ रस स्वत: ही निस्सरित हुए। अब पराग के नाम देखिये :—

पिराग नाम कथन .

'सिर नैन श्रवण तें भयो सिंगार।
विध कवी कैत उपजत विचार।
हासादि करण द्रग बुद्ध होय।
जे कहू तीन परकार जोय॥'

अर्थात् शिर, नेत्र व श्रवण से शृङ्गार की उत्पत्ति तथा हास्य भी कर्ण, दृग एवं बुद्धि से आविर्भूत हुआ है। इसी प्रकार आगे करुण नेत्रों से तथा वीर बुद्धि से उत्पन्न हुआ, जिसका प्रभाव चित्त मे हर्ष, शोक व कान होता है। वीभत्स मन से तथा भय अत्यन्त भय के कारण ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार रस की उत्पत्ति का चित्रण करते हुए कवि ने वडी पेचीदी समस्या को सुलझाने की चेष्टा की है। आगे कवि 'रसभाव कथन' की वात कहता हुआ उत्तम, मध्यम व अधम तीन प्रकार के काव्य का निरूपण करता है, यथा :—

'उत्तम्म फेर दाखू अधम्म।
मरजाद फेर तीजी मधम्म।
कायव्व होत तीना प्रकार।
वरणेस पात कीजे विचार॥'

इसके पश्चात् का काफी अश अप्राप्य है, जिसमें कवि द्वारा की गई प्रतिलिपि के अनुसार सम्भवतः 'रसभाव कथन' का वर्णन था, जिसमे 'हेत रस कथन', 'दीप रस कथन', 'नयमुक्त रस कथन' और 'मोहयुक्त रस कथन'—इन चार प्रकारों का उल्लेख था। तत्पश्चात्

'रस बंधव कथन' के प्रसंग मे ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणो का वर्णन था। फिर 'काव्य वर्णन' के अन्तर्गत ध्वनि तथा लिंग का चित्रण किया गया था। इसके पश्चात् 'काव्य प्रकास' की सामग्री तो समाप्त हो जाती है और कवि द्वारा सग्रहीत किसी अनाम काव्य-शास्त्र की अनुपम रीति का उद्घाटन रूप-परिवर्तन के साथ प्रकट किया गया है।

'काव्य प्रकास' की सामग्री की संपूर्णता के साथ ही कवि ने दोहा छद के २३ भेद बताये हैं, जिनमे 'भमर', 'भामरो', 'सारभसेनु', 'मंडुवो', 'मर्कट', 'करभ', 'पग्रोधर', 'शार्दूल', 'मत्स्य' आदि-आदि हैं। इसके आगे 'अजय' नामक छप्पय के ८२ भेद बताये हैं, जिनमे 'अजय', 'विजय', 'बळ', 'वीर' 'बैताळ', 'ब्रहजळ', 'मरकट', 'हरि', 'हर', 'ब्रहम', 'इद', 'चंदण', 'सुभकर', 'स्वांन', 'सिंघ', 'सारदूळ', 'कूरम', 'कोकिल', 'खर', 'कुजर', 'मदन', 'मछ' आदि-आदि हैं। साथ ही उपर्युक्त दोहों एवं छप्पयों की पृथक-पृथक रीति का भी उल्लेख किया गया है। इसके बाद मे 'नीसांणी' छद के १२ भेद प्रकट किये गये हैं, जिनके नाम 'कीला', 'लीला', 'जुगतीथिरा', 'कुमार', 'बीनारगी', 'चातुर' 'चगी', 'वामरूप' आदि-आदि हैं। इसके अन्त मे कवि कहता है:—

'द्वादस नाम कया दरसाई।
विधी गुरड ना सेस बताई।
लघू वधै ज्यू नांम लिखाया।
'चिमनीदान' कहै चित चाया॥'

इसके पश्चात् 'अथ-गण मत्री. अत' दासी सत्रुः ××× ' नामक शीर्षक है और फिर गणो के पारस्परिक बर्ताव का स्पष्टीकरण छप्पयों द्वारा किया गया है। ये दो छप्पय थे जो खडित रूप मे प्राप्त हैं। इसके बाद मे अंतिम ग्रंथ के सूचक दो छप्पय प्राप्त हुए हैं, जो बडे काम के हैं। एक छप्पय इस प्रकार है:—

'जंथा सुणी मैं जेम, विगत कर अकल बताई।
प्रगल बुधी उतपन्न, सकव समजै सिगलाई।
पढै बाल बुध प्रीत, रीत इण सायद राखै।
गूढ छद घण गीत, भेद ले पीछै भाखै।
सुग्यान अरथ समझै सहू, कवियण आदर सो करै।
चातुरी भेद जाहर 'चिमन', वीदग कवता विस्तरै॥'

अर्थात् कवि कहता है कि काव्य भेद की जैसी रीति मैंने सुनी है, उसमें अपनी बुद्धि का योग देकर उसे पुनः दूसरे ढग से प्रस्तुत की है। जिन कवियों की बुद्धि का विकास हो चुका है, वे ही इसके पूरे मर्म को समझ सकते हैं। यदि कोई काव्य-शास्त्र का विद्यार्थी बालक इसे पढ़े, तो उसे चाहिये कि इससे रीति के प्रमाण ग्रहण करे। सभी प्रकार के छदों एव गीतों की रचना करने से पूर्व और उन्हें प्रचारित करने से पहले इस ग्रथ के मापदड से

(ख) धर्म-दर्शन-ग्रथ

(१) हरीजस-मोख्यारथी

श्री चिमनजी कविया ने अपने जीवन मे जितने भी ग्रथ रचे हैं उन सब मे बडा ग्रंथ 'हरीजस-मोख्यारथी' है। ज्ञान की निधि एव भारतीय दर्शन का सार-रूपी धर्म प्रतिनिधि यह ग्रथ 'हरीजस-मोख्यारथी' स० १६४० वि० की वैशाख सुदि १० को रचा गया है। इस ग्रथ मे चिमनजी ने अनेक मत-मतान्तरो के सिद्धान्त प्रदर्शित करते हुए, सबके अंत मे अपनी विवेकपूर्ण सम्मति देकर, उसे जनसाधारण के लिए उपयोगी बना दिया है। कवि ने अधिक आयु तो नही पाई, किंतु फिर भी उनके जीवन मे हम भारतीय आश्रम धर्म का पूर्ण आदश पाते हैं। आजीवन कौमार्य व्रत रखते हुए भी उन्होने पहले तो काव्य का पूरा भेद समझा, तत्पश्चात् वैभवशाली नरेशों की सभाओं मे नाना प्रकार के आनदोपभोग किये। फिर ससार से उन्हें विरक्ति-सी होने लगी और उन्होंने सन्यास ले लिया। यद्यपि वे दो-ढाई वर्ष ही सन्यासी रहे, तथापि उस अल्पावधि मे उन्होने अपने पूर्व सचित ज्ञान के अतिरिक्त अनेक परमज्ञानी साधु-सन्यासियों के विविध मत मतान्तरों को समझा और उनमे से सार ग्रहण कर इस ग्रथ का सृजन किया। यह ग्रन्थ सृष्टि की उत्पत्ति के वर्णन से आरम्भ होता है। बीच मे अनेक मत मतान्तरों का निरूपण करते हुए कवि ने व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले शुभाशुभ कृत्यों व तदनुकूल फलाफल आदि का वर्णन किया है। अत मे ईश्वर के निर्गुण रूप का निरूपण करते हुए ग्रन्थ-महात्म्य के साथ इस ग्रथ का समापन होता है।

यह ग्रन्थ बडे-बडे २४ विश्रामों मे विभाजित है। प्रत्येक विश्राम के प्रारम्भ एवं अत मे विश्राम का नाम तथा अथ एव इति का स्पष्टीकरण है। मूल के चार विश्राम प्रति की जीर्णशीर्ण दशा के कारण प्राय लुप्त से हैं, फिर भी प्रथम, द्वितीय एव तृतीय विश्रामों के कुछ अश प्राप्त हुए हैं, जिनमे विश्रामों के नाम तो नहीं, किंतु सख्या का स्पष्टीकरण हो जाता है। चतुर्थ विश्राम के पन्ने पूर्णरूपेण नष्ट हो चुके हैं, जो बहुत ढूढने पर भी प्राप्त नहीं हो सके। उसमें कितने छद थे, इसका तो पता लग जाता है, क्योंकि श्री चिमनजी के स्वय के हाथों से लिखे एक बडे पन्ने पर प्रथम से लेकर चौबीसवें विश्राम तक के छदो की सख्या की जोड लगाई हुई प्राप्त हुई है। इस पन्ने पर लिखी गई कुल छद सख्या की जोड चिमनजी ने ४७७ लगाई है और उसका एक दोहा भी लिखा है जो इस प्रकार है—

> 'दुहा कवत छद दाखिया, दिल सुध चिमनोदान।
> सरब सितंतर च्यार सौ, इतौ ग्रथ उनमान॥'

किंतु वस्तुत छदों के लिखित आंकडों की जोड़ लगाने से कुल सख्या ५७२ होती है। श्री चिमनजी काव्य के तो अनुपम ज्ञाता एव निर्माता थे, किन्तु गणित के बहुत कम जानकार थे। ४७७ की सख्या को दोहे मे तो 'सरब सितंतर च्यारसौ' कह दिया, किंतु

लिखते समय ४०७७ तक लिख गए हैं। ऐसे साधारण पढे-लिखे व्यक्ति ने 'हरीजस-मोरयारथी' जैसे गहन ग्रन्थ का सृजन कर दिया, यह एक आश्चर्य की बात है। ऐसे अनेक डिंगल के कवि हो गए हैं, जिनको लिखना तक नहीं आता था, तथापि अनूठे गीतों व छदो की शुद्ध रचना किया करते थे। इसे सरस्वती का वरदान ही समझना चाहिए। इस प्रकार दोहो, छप्पयो, सवैयों एव विविध छदो मे लिखित यह विशाल ग्रन्थ आज भी साहित्य-प्रेमियो के लिए सुरक्षित है। अब इसके प्रत्येक विश्राम का सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

विश्रामो के नाम व विषय :

पहला विश्राम

प्रथम विश्राम मे केवल २८ दोहे थे, जिनमे २३ वें से लेकर २७ वें तक न्यूनाधिक खंडित रूप मे प्राप्त हो सके हैं, तथा अन्त मे 'इति श्री प्रथम विश्राम' ये शब्द भी स्पष्ट हैं। इसमे कवि ने बताया है कि विश्व मे सर्वत्र ब्रह्म की सत्ता है—'वडौ सवळ है व्रम।' ब्रह्म और माया के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हुए इस विश्राम के २४ वें दोहे मे कवि ने लिखा है :—

'ग्रच्छ बीज हूता वनै, निज ग्रच्छा विन नांय।
विन माया को व्रंम है, माया व्रम के माय॥'

अर्थात् वृक्ष की उत्पत्ति बीज से होती है और बीज भी बिना वृक्ष के नहीं हो सकता। ठीक इसी प्रकार संसार मे सर्वत्र ब्रह्म का आभास है, किन्तु माया साथ मे लगी हुई है, यद्यपि माया ब्रह्म को प्रभावित नहीं कर सकती। यह विश्राम महत्त्वपूर्ण होते हुए भी आकार मे बहुत छोटा है।

दूसरा विश्राम

इस विश्राम का शीर्षक गायब है। यह प्रथम दोहे से प्रारम्भ होकर खडित रूप मे २३ वें दोहे तक प्राप्त है। बीच-बीच मे कई पक्तियाँ लुप्त अवश्य हैं। सूची के अनुसार कुल संख्या २६ दोहो की थी, जिनमे से २३ वें दोहे तक करीब १८ दोहे तो प्रायः पूर्ण ही प्राप्त हुए हैं, शेष बिलकुल क्षतावस्था मे हैं। इसमे सृष्टि के आरम्भ का वर्णन है। अविगत ब्रह्म से लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति के विविध सोपानों का वर्णन किया गया है। ब्रह्मा को त्रिगुण से सृष्टि की रचना का कार्य सौंपा जाने के प्रसंग के साथ ही इस विश्राम की समाप्ति हो जाती है, उदाहरणार्थ :—

'वेद दिया ब्रहमांण कू, विध सुध करी विचार।
त्रिग्गुण सेती तुम रचौ, सिस्ट इस्ट संसार॥'

तीसरा विश्राम

इस विश्राम का भी नाम तो प्राप्त नहीं होता, किन्तु प्रथम दोहे से ही कविता अवश्य प्राप्त होती है। सूची के अनुसार इसमे २७ छंद थे, जिनमे से दो छप्पय प्राप्त हुए हैं। एक छप्पय मे ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न चतुर्वर्ण एव चारों आश्रमो का वर्णन है, तथा दूसरे मे १४ लोको के नाम चित्रित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त २-४ खडित दोहे अवश्य मिलते हैं। शेष भाग दुर्भाग्यवश नष्ट हो चुका है। चौदह लोको के नाम इस प्रकार गिनाए हैं :—

'अवल वितल उतपन्न, महातल दुत्तिय मडै।
त्रितिय थापियौ सतल, चतुर पाताल प्रचडै।
अहि पचम खट असुर, सपत मानव×× अस्टी।
गो नवमौ दस देव, सभु एकादस सस्टी।
वैकुठ बार तेरह व्रहम, चत्रादस सत वेद ही।
'चिमनेस' धन्य' चेतन्नता, सकल लोक मडे सही ॥१॥'

चौथा विश्राम

दुर्भाग्यवश यह पूरा विश्राम ही अप्राप्य है। प्राप्त सूची के अनुसार इसमे केवल १२ छद थे, किन्तु उन १२ छदो मे कितनी ज्ञाननिधि समेटी हुई थी, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

पाँचवाँ विश्राम

इस विश्राम का प्रारम्भिक अश तो प्राप्त नहीं हो सका, किन्तु अन्तिम भाग मे इसके नाम का उल्लेख अवश्य मिलता है। इसका नाम 'दोरघ अवतार वरनन' है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण विश्राम है। इसमे राम, कृष्ण, परशुराम, बुद्ध, वामन, मच्छ, वाराह आदि १० बडे अवतारों का वर्णन है। प्रत्येक अवतार का परिचय एक दोहे मे दिया गया है और उसके बाद डिंगल के प्रसिद्ध छद रोमकंद के एक दुहाले मे अवतार की लीलाओं का वर्णन किया गया है। दश ही अवतारों के १० दोहे और १० छद पाठ करने योग्य स्तुति-स्वरूप थे, किन्तु दुर्भाग्यवश ३ छद और ५ दोहे ही प्राप्त होते हैं। सूची में इसकी कुल छद-सख्या २२ होने का उल्लेख है। प्राप्त अश मे सर्वप्रथम परशुराम का वर्णन है, जिन्हे कवि ने छठा अवतार माना है। ऊपर का परिचयात्मक दोहा तो नष्ट हो चुका है, किन्तु छद इस प्रकार है :—

'पित वैर सकाज अकाज प्रथी पुड, क्रोध अती दुजराज कियौ।
कर धार कुठार अपार कुघगिय, दैत हजार भुजा दहियौ।
तद भोम समाप दुजा रत त्रप्पण, वक जोधार खगा विढयौ।
भगतां दुख ताप निवारण भूधर, जारण पाप अनत जयौ।
जी जारण पाप अलेख जयौ ॥'

छठा विश्राम

यह विश्राम अन्य छोटे अवतारो का परिचयात्मक एव भक्ति-प्रधान कीर्तन है। कवि की सूची के अनुसार इस विश्राम मे कुल २६ छद थे। प्रारम्भ का अश तो अप्राप्य है, किन्तु बीच के अनेक अश सुरक्षित हैं। इसमे पहले प्रत्येक अवतार का एक परिचयात्मक दोहा और तत्पश्चात् एक छप्पय मे उसका विस्तृत गुणगान किया गया है। इस विश्राम का नाम 'कारज्या अवतार वरनन' है। यह विश्राम कवि के पौराणिक ज्ञान एव भक्त-हृदय का परिचायक है। हयग्रीव अवतार के प्रसग मे कवि ने भगवान् के प्रति भक्त का विश्वास प्रकट करते हुए लिखा है :—

'हरी प्रगट यहँ विध हुवा, सुन हु जथा मति सार।
कठण सु वेला भगत की, परभू सुनत पुकार॥'

सातवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'मनु इद्र अवतार वरनन' है। इसमे केवल १२ छद हैं। मनु के १४ नाम तथा इद्र के भी १४ नाम छप्पयों मे वर्णित कर कवि ने अपने पौराणिक ज्ञान का परिचय दिया है। अत मे इन नाना अवतारो को एक ही जगदीश्वर की परम सत्ता मे मिलाते हुए कवि ने ईश्वरीय अनत रूप की चर्चा इस प्रकार की है :—

'दस दीरघ लघु है चवद, इता इता मनु इद।
सता सकल जगदीस री, मध्य सिद्ध गोमद॥
मेघ बूंद अरु पात द्रुम, रूम गात अणपार।
रैण कणूका गिण रहै, अनत अनत अवतार॥'

आठवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'भक्तो अवतार-वरनन' है। इसमे कुल १६ छद हैं, जिनमे भक्तो की गुणमाला चित्रित की गई है। किसी युग मे कहीं भी कोई भक्त जन्मा है, तो वह भक्त अवतार माना गया है। भक्त अवतार की परिभाषा स्वय कवि ने इस प्रकार दी है :—

'सतजुग त्रेताजुग समर, द्वाजुग कल॒ उदार।
जिन ही मे हरि गुण जपै, एहि भक्त अवतार॥'

इसके पश्चातु पद्धरी छदों मे भक्तों के प्रमुख कृत्यों सहित उनका स्मरण बडी श्रद्धा के साथ किया गया है। अत मे कवि सभी भक्त अवतारो की चरणरज को अपने ललाट से वदित करने की कामना करता हुआ सर्वत्र ही विश्वरूप-वैराट का आभास पाता है, यथा:—

'चरणारज 'चिमनेस' कवि, ले व्रत चाढ लिलाट।
रह्यौ छह्यौ सब ऊपरा, विस्व रूप वैराट॥'

नवमाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'चराचर अवतार वरनन' है। इसमे कुल १५ छद है। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कवि की दृष्टि ईश्वर के सही रूप का साक्षात्कार करने मे सिद्ध हो गई। अम्बर एव धरती के बीच मे दृष्टिगोचर होने वाले समस्त उपकरणो का सचालन उस एक ही ईश्वर के द्वारा होता है, जो अगम्य एव अलक्ष्य है। इसमे कवि ने वह मर्म समेट कर रख दिया है कि पाठक ईश्वर के सृष्टि-व्याप्त रूप का स्पष्ट अनुभव कर सकता है। स्वय कवि के शब्दो मे।—

'अथ चराचर अवतार वरनन'

दुहा

'अबहि चराचर व्रम इक, कहत 'चिमन' कवियान।
उनहि विचारत ऊपजै, भक्ति श्रेय भगवान ॥१॥
अबर धर ससिवर अरक, पवन र पाणी पेख।
व्रहम गिनानी सत वड, लेखत एक अलेख ॥२॥

छद त्रोटक

लगनीवत सत अनत लखै।
दुनियान चराचर व्रद दखै।
धर अबर व्यापक एक धणी।
तिहँ माय कला सब राम तणी ॥१॥
सस सूर उडग्गण व्रच्छ सबै।
अतुली बल भ्यासत एक अबै।
तर देवत डूगर रूप तेता।
जल वाय उतो परमाण जेता ॥२॥
रिख जिक्ख सन्यासिय देह नर।
करतार अपार पैदास कर।
पसु पख असख निसक्क पुणै।
गुनवान सबै व्रम हेक गिणै ॥३॥
जलचार थलाचर जीव जिद।
पद एक उभै र अनेक पद।
अहि प्रेत अचेत सुचेत अभा।
पह लोक अलोक सुलोक प्रभा ॥४॥

गुणवांन सुग्यान अग्यान गती।
मह ध्यान उद्यांन निध्यान मती।
मछ कच्छ वाराह नाराह मुदै।
ऽवांह मांय व्रह्मादक छाह उदै ॥५॥
दिगपाल भुवाल एकौ दरसै।
वरसाल तेजाल मही वरसै।
तरपात जिता तुम रूप तही।
सरजात अग्यात मे नाथ सही ॥६॥
धर ऊपर इदर नीर ध्रवै।
हरियाल इला भर पान हुवै।
धर धूल कणू काय रूप धरै।
परतीत अनंत अनंत परै ॥७॥
महि माज समाज जितौ मन को।
अनथाह सराह क्रिया उनको।
घर तीरथ धाम अनेक धरा।
खट च्यार अठार छतीस खरा ॥८॥
नव आठ रु सात इता अमलं।
वर मार अपार सही विमलं।
हम खोज लहैं सब सोज हरी।
प्रभु तेज कला सब मे पसरी ॥९॥
सह दीसत रूप अनूप सदा।
जगदीस सता अत आप जुदा।
किरतार औतार किता कहियै।
लख वार सिलाम नमै लहियै ॥१०॥
जिनही जिन देह धरी जग मे।
मर जीव लगे भगनी मग मे।
जिन दास 'चिमन्न' लखै जब मे।
सब अस चराचर है सब मे ॥११॥
उनको 'चिमनेस' आदेस इता।
जगजीत सु सत अनत जिता।

इनको नित सेवत है जु अर्जे।
भय रोर संताप को ताप भजे ॥१२॥

दुहौ

'चराचरी 'चिमनेस' कहि, यहि खोजत अवतार।
भजै भरम उपजै भगति, पौहचे भव जल पार ॥१॥'

दसवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'वैराग कठणता वरनन' है। इसमें कुल २८ छंद हैं। जगत और भगत' के पारस्परिक विरोध का वर्णन एक भक्त के जीवन-प्रसग के उदाहरण द्वारा चित्रित किया गया है। आरभ मे एक दोहा है :—

'कमावै भगती कोई, नारायण जप नाम।
जगत करत है जेण मे, इता कठण इतमाम ॥'

आगे उन सभी कठिनाइयों का भुजगप्रयात छदो मे विस्तार पूर्वक वर्णन है। परीक्षा मे खरा उतरने पर भक्त पर भगवान पुन प्रसन्न होते है, और उसको सांसारिक दु खों से मुक्ति प्राप्त होती है। जगत की पद्धति का चित्र प्रस्तुत करने के पश्चात् अत मे कवि भक्त की एकनिष्ठा की दृढता का महत्व प्रकट करता है। निम्नलिखित दोहा पठनीय है :—

'सोही दुख एता सहै, रहै एक ही रग।
कहै 'चिमन' उन सत की, भगती पडै न भग ॥'

ग्यारहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'वरणाश्रम-धरम विचार' है। इसमे कुल २९ छंद हैं और भारतीय सस्कृति के मुख्य स्तंभ 'आश्रम-धर्म' का विवेचन किया गया है। 'आश्रम-धर्म' जीवन के चारो पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष को प्राप्त करने का ढांचा है, जिस पर वर्ण व्यवस्था एव पुरुषार्थों का भव्य भवन खड़ा किया जाता है। जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के सोपान स्वरूपी 'आश्रम-धर्म' के अतर्गत् कवि ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एव सन्यास चारो धर्मों पर पूर्ण प्रकाश डाला है। उदाहरणार्थ कवि ने अष्ठ मैथुन त्यागी को ही सच्चा ब्रह्मचारी माना है :—

'ब्रह्मचार साजै व्रती, सोइ जती मन सुद्ध।
उथपै मिथुन प्रकार अठ, ब्रहम विचारै बुद्ध ॥
दिस्ट वात चितवन गुदा, निज श्री परसत नाय।
श्रवण हास सपरस सपन, मछया रहै न माय ॥'

बारहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'अक्रिया भोग्य वरनन' हैं। इसमे कुल २९ छंद हैं। यह पातकी लोगो को उनके कुकृत्यों से मिलने वाले दड का विधान सुनाता है। जो व्यक्ति इस

लोक में अधर्म एवं अत्याचार करता है, उसको धर्मराज के दरबार में विविध यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। लोक-कल्याण की भावना से रत यह विश्राम व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में बड़ा सहायक हो सकता है। क्रिया-धर्म के पालन का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए ज्ञान-गर्भित इस विश्राम को स्वयं कवि के शब्दों में देखिये:—

'अथ अक्रिया भोग्य वरनन'

दुहा

'क्रिया धरम पालै न को, जकौ जाय जड जूण।
नारायण भजिया विना, कौ अब तारै कूण ॥१॥
जोण जोण भुगतै जबर, पापस्ठी दुख पूर।
हर गुण विन जावै विहृद, देवलोक सै दूर ॥२॥

छद त्रोटक

भुगतै अत जोण अनंत भय।
कहि भात गिणावहु वात कय।
तन मद भया जम आंन तकै।
थल जोवत है कब सास थकै ॥१॥
जब सास थक्यौ तब जोर दियौ।
लज पाड पछाडव घेर लियौ।
जमदूत डरावत है जुलमां।
पौहचे ध्रमराव खनै पल मा ॥२॥
ध्रमराय बुलाय कयौ ध्रम रौ।
करियौ अत काम तैही क्रम रौ।
पुन पाप दपत्तर जोय पछै।
इन काम हराम कियौ कै अछै ॥३॥
क्रम जोय दरोगैय एम कयौ।
भगतो नह प्राण इन्याव भयौ।
हम जोय नियाव कियौ हक रौ।
परगै सव ऊठ इन्है पकरौ ॥४॥
सुन वायक दूत अपार सजै।
चल ही वल मार गुरज्ज वजै।
अव बाध लयौ ध्रमराज अगा।
भगवान के नाम से दूर भगा ॥५॥

ध्रमराय कयौ कुड माय धरौ।
खलियार गेवार कु बाध खरौ।
कुड माय लियौ रत ऊकलतै।
वहकाय रयौ सो पगां बलतै ॥६॥
पिंड तास घणी अरणपार पीड़ा।
कुड माय रसी अत खाय कीडा।
केइ वीछुअ साप अती करडै।
जमदूत हि मार अपार जड़ै ॥७॥
इहँ भात अठाइस कुण्ड इसा।
कहिया दुख जाय न और किसा।
लपटाय इसा फद बार लियौ।
दुसटी अत जोणिय मेल दियौ ॥८॥
जड जोण अपार विकार जठै।
तन तास भोगाय जठै र तठै।
भुगतै नित जोणिय नाय भलौ।
पछताय रयौ क्रम ही पछलौ ॥९॥
जिण ही जिण जूणिय मांय जवै।
हरि नांम विनां इम ह्वाल हवै।
निरधन रहै सुख होय नही।
किरिया विन भोगत जूण केही ॥१०॥
अतलोक तजै अत दुक्ख महा।
कहियै जिनको वरणाव कहा।
भुगतै अत दैत कै प्रैत भय।
न मिलै जल पान अहार नय ॥११॥
विललात फिरै भख भोग विनं।
ध्रम होत कहा ढिग नाय धनं।
पछतात रहै की हाथ पड़ै।
जगदीस विना सुख नाय जुडै ॥१२॥
कर त्राह अत्राह पुकार करै।
भजिया विन पेट न कोय भरै।

विखमा दुख जाय तठै वरतै।
हितयाकर वेध हियौ हर तै ॥१३॥
जड स्वान मजार अपार जिकै।
तपसा विन भोगव जूण तिकै।
उदरादिक आवत है उरधौ।
किरतार विसार हि खून किधौ ॥१४॥
जठरा खिम आवत बार जदे।
करतार उचार करी न कदे।
भव ही भव सगठ एम भमै।
रुलियार गवार स काम रमै ॥१५॥
भुगतै पण सायब नाय भजै।
गफलायत माय रयौ गरजै।
तन को हुय जाय विछोह तबै।
जमराण डराय धकाय जबै ॥१६॥
जमरापुर जोध सक्रोध जिता।
इनको उठ मारण काज इता।
अत भाल विहाल कियै उनको।
गुणियौ तुम नाय हरी गुन को ॥१७॥
फरियाद करै तन मास फटै।
लख जीव हि काग कुता लपटै।
अत लोहिय राध अपार उठै।
भय लागत दूत अनेक भुठै ॥१८॥
केइ स्वान मुखाक मुखा खर का।
जबुवा मुख जोध करै जरका।
ब्रखभा मुख मारण वाण वकै।
बकरा मुख भोट हजार वकै ॥१९॥
घडसूर हि सूरमुखा क घणा।
जवरेल हि दुस्ट अपार जणा।
केइ मास जवूर सै दूर करै।
भुगतै थभ ताताय वाथ भरै ॥२०॥

इह लोक वुवा त्रिय सै अकला।
तपिश्रा जिहँ नाभ फिरै तकला।
कितना यक खून भूलोक करै।
पडिया धड सूखत सूलि परै॥२१॥
त्रियमार विराजत लाल तवा।
भुगतै अत छूटत नांय भवा।
जगनिंदक और महा जुलमी।
तिहँ ठौर हि मास विकै तुलमी॥२२॥
धन चोरत चोर इयै धर मे।
सोइ खावत मेख लोहा सिर मे।
भुव मे परनार केडै भटकै।
लपटी व्रछ वाधविया लटकै॥२३॥
कितनाक भणू नह जाय कया।
दखते अत आवत मोहि दया।
भव ही भव संगठ माय भमै।
गधवा जिम ऐल जमार गमै॥२४॥
न छुटै हर नाम विनां नरय।
किरिया इहलोक पैला करिय।
'चिमनेंस' कवी भज चेतन कू।
जगदीस उवारत है जन कू॥२५॥

दुहा :

सगठ भव एतो सहै, आपै रहै अजांण।
सतगुर सूं समजै नही, जे नर चौपद जांण॥१॥
क्रिया विहूणां क्रप्पणां, देखाया भव दुक्ख।
जो 'चिमनी' कहै सत जन, सुरगा पावत सुक्ख॥२॥'

तेरहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'सुक्रिया धरम भोग्य वरनन' है। इसमे कुल २६ छद हैं। जो व्यक्ति इहलोक मे सुकृत्य और धर्म का आचरण करता है, उसके लिये स्वर्ग मे होने वाले स्वागत की विविध तैयारियो का सुखद एवं सम्मोहक चित्रण इस विश्राम मे किया गया है। धर्म एवं ज्ञान के सदेश को भूलकर पाठक का मन-मयूर इन छदो की सुरम्य वाटिका मे रमण करने लग जाता है। रग-बिरगे सुखद वातावरण की काल्पनिक झाँकी स्वय कवि के शब्दों मे ही द्रष्टव्य है :—

'अथ सुक्रिया धरम भोग्य वरनन'

दुहा

करत जगत मे सुभ क्रिया, भजत एक भगवांन।
उवे नर पावत है अवस, अमरलोक अस्थान ॥१॥
जलूसिया मुख जेण की, कहत संत सब कोय।
धरम किया इह लोक धन, हाजर सुरपुर होय ॥२॥
करै धरम पोखै सकव, सामी पिंडत साध।
अभ्यागत दत ऊधमै, उनका मता अगाध ॥३॥
जो नर पोखै सत जन, हरी निमत अत हेत।
सो नर पावत सायबी, बौहलै सुख सरबेत ॥४॥
तन छूटै नर पुर तजै, जन हि अमरपुर जाय।
सत पधारत सामहा, लेत वधाय ववाय ॥५॥

छद त्रोटक

लख संत अनत वधाय लियै।
विमला अत वाजत्र वाजवियै।
सुखपाल निवाण बैठाण सही।
कवियाण न जावत वात कही ॥१॥
अत रग गुलाल अबीर उडै।
गह डोर चलावत केक गुडै।
पग मडत रेसम थान पथै।
मनवार हलावत जेण मथै ॥२॥
गुण गावत गीत गध्रप्प गुणी।
सखिया सुरनार मिलै सुगणी।
नवछावर केक करै नग यू।
पसरै बिहु पाण वदै पग यू ॥३॥
धिन धिन्न कहै सुरलोक धुनी।
अत लोक सुं आयौ है सत मुनी।
हरखै अत कोड करै हसही।
वसुधा तज संत अठै वसही ॥४॥

नग हीर जडाव ऐवास नवा।
मलपै सुर जुत्थ आवै मिलवा।
अत फूल व्रिखा जिरा ऊपरियू।
धिन सोवन छत्र सिरै धरियू ॥५॥
वड जाजम रंग सुरग विछै।
पथरै जरतार गिलम पछै।
बैहठार हिडोलय खाट बिचै।
रभियादक नाटक खेल रचै ॥६॥
चहु पास हुलास करै चमर।
अजसै मन माय सबै अमर।
केय भोजन थाल तैयार करै।
धन भोगसु लायक आरा धरै ॥७॥
सुरकामरा रभाय वेस सजै।
वल ही वल दुदभ गैरा वजै।
सुरनाथ कहै कर सेज सुख।
दटिया भव का सब दोर दुख ॥८॥
अेह राज वरौ तुम दीह इता।
जुडियौ ध्रम रैहिय साथ जिता।
ध्रम खीरा भया फिर जूरा धरौ।
किरिया ध्रम फेरुय जाय करौ ॥९॥
अमरापुर सताय सुक्ख इसौ।
कहियौ नह जावत मीढ किसौ।
जिहँ पावत सो सत जारात है।
वीजौ कहा वात वखारात है ॥१०॥
किवलास विलास हि सत करै।
पौहचै नह आगोय जोत परै।
इहँ भात सवै ध्रम भोग उठै।
अवनी पर पावत जूरा अठै ॥११॥
नर देह धरै कुछ रोग नही।
सिरजै धनवान जवान सही।

सुत वित्त मिलै परवार सबै।
जगदीस सभारत फेर जबै ॥१२॥
म्रतलोक निवास विलास मुदै।
उनके फिर होवत भाग उदै।
परतीत वैपार करै पुन रौ।
उनसू नित लाभ रहै उन्न रौ ॥१३॥
इहलोक क्रिया ध्रम पाल अती।
सुरलोक पधारत साध सतो।
विधलोक तथा गउलोक वसै।
......खेध निवास धणौ विलसै ॥१४॥
धिन देव कहै नर यू धरजो।
किरिया सुरलोकन की करजो।
नर देह जिसी कोइ देह नही।
लख पुन्य किया जिन हेर लही ॥१५॥
विध इद्र कहै हम सू न वणै।
धर भूम वसै सोहि लाभ घणै।
सस सूर कहै पुन पूर सदा।
जगदीस व्रवै नरलोक जदा ॥१६॥
इण लोक मे देह धरी अबही।
तपसा धन्न पूर कियौ तबही।
हर सतन की कर सेव हमै।
दुबजा अगियान सबै हि दमै ॥१७॥
गुरदेव की सेव किया गत है।
महाग्यान किल्यान की ऐ मत है।
धन माल हरी पथ देहु घणी।
भगवान पुरान मे एह भणी ॥१८॥
सिमरौ हरि नाम मिलौ सुख मे।
मत जावहौ काल हु के मुख मे।
इतनौ सुन चेत अचेत अधा।
धर ध्यान निवारहु आन धधा ॥१९॥

जिन चेत भया हर नै जप ही।
अमरापुर राम जिनै अप ही।
'चिमनेस' कहै उन देस चलौ।
महवेस कै श्रम विसन्न मिलौ ॥२०॥

दुहौ

सुख दिखलायौ सुरग को, महा नरक मैदान।
'चिमन' कहै मन चेत रे, अजहूं मूढ अग्यान ॥१॥

चौदहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'प्रतमादी पूजन वैरागी मत वरनन' है। यह कुल २७ छदों से आवृत्त विश्राम है। इसमे कवि ने प्रतिमादि-पूजन की सही एवं पौराणिक विधि बताई है, जो गुरु के आदेश से सपन्न होनी चाहिये। स्नानादि से शुद्ध होकर अष्ट प्रकार का प्रतिमा-पूजन हो सकता है, जिसको कवि ने इस प्रकार कहा है:—

'नित प्रत नेम सिनान नित, सज्या त्रपण सवार।
प्रवत हुवे नित पूजिये, प्रतमा अस्ट प्रकार॥
पीपल जल रवि पूजिये, धेन मत्र इल धाय।
धातु कास्ठ पाखाण सुध, विध सुध चित्र वणाय॥'

इसी प्रकार आगे पूजन विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। अत मे कवि कहता है कि यदि शुद्ध भाव से प्रतिमा-पूजन करता हुआ व्यक्ति सुकृत्यों मे रत रहता है, तो उसका परिणाम निश्चय ही सुखात्मक होगा। इसी भाव से ओतप्रोत यह अतिम दोहा भी अवलोकनीय है :—

'प्रतमा इहै विध पूजिये, करिये सुक्रत कांम।
हाथा रा पग ना हुवै, सुखी नरा विश्राम॥'

पद्रहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'ग्यांन उदीपन खटमत चतुर वेदा सिधांत' है। इसमे कुल २५ छंद हैं। इसके अतर्गत् कवि ने षट्मत एव चतुर्वेदों के मुख्य सिद्धान्तों का निरूपण किया है। षट् वेदांगो के सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए कवि ने किसी को भी सदसद नहीं कहा है और यह निर्णय पाठकों की बुद्धि पर छोड दिया है। कहा भी है :—

'खट मत तू मे अग खट, उपजै अरथ अनूप।
समज विचारे सोजियै, तेल छाछ पय तूप॥'

आगे साख्य मत का निरूपण करते हुए कवि ने मानव-मन को बड़ी युक्ति से समझाया है। उदाहरणार्थ एक छप्पय द्रष्टव्य है :—

'समर नाम सचियार, वार मत लाव विचमा।
भज रे मन भगवान, नाथ विन आन निकमा।
पड़ जासी पाखांण, हवेली साथ न हालै।
काया रौ कमठाण, च्यार दिन जुग मे चालै।
जड देह जाण आसा तजौ, भजौ मेवासा भ्रम है।
'चिमनेस' स्याख मत कू उचर, विस्व चराचर ब्रम है ॥१॥'

इस प्रकार यह विश्राम वडा महत्त्वपूर्ण एवं ज्ञानगर्भित है।

सोलहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'जोगाभ्यास अस्ट अग वरनन' है। इसकी कुल छंद संख्या २२ है। इसमे अष्टाग योग का वर्णन करते हुए उसकी विविध शाखाओं पर प्रकाश डाला गया है। योग के ८ अगो के अतिरिक्त दश प्रकार के पवन, उनके स्थानों, इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियो आदि योग की अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख इस विश्राम मे किया गया है। अंत मे जगत से विपरीत रीति की चर्चा करते हुए मनुष्य की बिना पैरों की पहुँच का वर्णन वडी विचित्रता से किया है। उदाहरणार्थ एक सवैया अवलोकनीय है —

'स्रवणा बिन राग छतीस सुनै, नित मेघ त्रिखा बिन माचत है।
सस भान विना उजियास रहै, नित नार विना पद नाचत है।
विन तेल वती विन दीप जगै, बिहूँ रैण दिहा नह राचत है।
हर धम्म की नाव 'चिमन्न' कहै, नर पाव विनां कहु पौचत है ॥'

सत्रहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'इस्टोध्यांन पल मे समाधी वरनन' है। इसमें कुल १९ छंद हैं। योगी के अपने इष्ट मे ध्यान केन्द्रित करने की विधि का वर्णन इस विश्राम मे किया गया है। प्रारंभ के एक दोहे मे ही कवि ने ध्यान का महत्त्व इस प्रकार व्यक्त किया है —

'ध्यान इस्ट अपनौ धरै, अपनी रुच उनमान।
जो 'चिमना' चेतन जपै, उन पूगै असथान ॥'

इसके पश्चात् ध्यान के विविध रूपों एव मुद्राओं का वर्णन है। अत मे कवि ररकार के ध्यान का महत्त्व प्रकट करता हुआ बिना पैरों के ही ब्रह्माड तक पहुँच जाने की चर्चा इस प्रकार करता है :—

'ररकार रटता रहै, आठू पौर अखड।
'चिमन' कहै सो चढ गया, बिना पाव ब्रहमंड ॥'

अठारहवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'प्रगट समाधी निरूपण वरनन' है। इसकी कुल छंद-संख्या २५ है। इसमे योग की उस समाधि विशेष का वर्णन है, जिसमे योगी अपनी शुद्ध क्रिया

एव समाधि द्वारा ईश्वर के सगुण रूप का दर्शन करने लगता है। ईश्वरानुभूति के पश्चात् निरतर उसी ध्यान मे लीन रहने का कवि सकेत करता है, यथा —

'उर तजै वासना सकल ओर। भगवान धियावै निसा भोर।'

इसके पश्चात् साधना के परिपाक के साथ अग्रिम स्तर पर वैराट और निरजन तक के ध्यान का वर्णन किया गया है। अत मे ब्रह्म के आभास का वर्णन है, जैसे—

'आतमा रूप व्रमकर अनूप। चेतन्न अखडी लखै चूप।'

अत मे आत्मा की ज्योति उस सच्चिदानद की परम ज्योति मे पुन विलीन हो जाती है। इसकी उपमा कवि ने उस पतग से दी है, जो अग्नि से ही उत्पन्न हुआ और पुनः अग्नि मे ही समा गया। उदाहरणार्थ :—

'अगन से पतगा झड्या आय। सो गया फेर अगनी समाय।'

उन्नीसवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'सिधी त्याग समाधी जोगाभ्यास वरनन' है। इसमें कुल छद सख्या ४७ है। इस विश्राम के अतर्गत् सिद्धि-त्याग-समाधि नामक योग की एक विशिष्ट समाधि का वर्णन है। ईश्वर-भक्त या हरिजन की परिभाषा देते हुए कवि ने कहा है कि —

'भरमाया भूलै नही, धरै एक ही ध्यान।
साम्रथ कू सिमरै सदा, जको हरीजन जान॥'

इसके पश्चात् ८ प्रकार के प्रमुख सिद्धो का वर्णन किया गया है तथा आगे इस योग-साधना के द्वारा ब्रह्म के आभास एव तीन लोको के दर्शन की चर्चा है। अत मे कवि ने भागवत के मत को आधार स्वीकृत करते हुए यह कह दिया है कि :—

'भागवत मत सै भनी, वडी सिधो की वात।
कवी 'चिमन' सब त्याग कर, निरभै सिमरो नाथ॥'

वीसवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'जोगाभ्यास निरभै समाधी वरनन' है। इसमे कुल २० छद हैं, जिनमे योग की निर्भय समाधि की रीति का उल्लेख किया गया है। इसको कवि ने सर्वोत्कृष्ट समाधि कहा है। शरीर की नश्वरता और स्मरण की महत्ता पर कवि कहता है कि :—

'काया काचो कोट, मोट मसती तज मन की।
चलौ सवद की चोट, तोट पड जासी तन की।
ऊ तौ नाम अवोट, खोट विन घट मे खेलै।
लोट पोट हुय लगन, अह दे दोट उथेलै।

मरजाद छोट तजिये मछर, होठ कठ विन हेरिये।
घेरिये 'चिमन' श्राद्व सु घर, पर विन पछी पेरिये॥'

आगे कवि ने इस समाधि का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए कहा है कि तीनों अवस्थाएँ, दश तत्त्व, दश पवन, चौदह इद्रियाँ और पच्चीस चेतनाएँ सभी इसके आगे वट गई। फिर ब्रह्म के अगम्य स्वरूप का वर्णन करते हुए उसकी सत्ता से अनभिज्ञ व अज्ञानी व्यक्तियो के वारे मे दुःख प्रकट करता हुआ कवि कहता है कि'—

'देखै व्रतत देह रा, देखै नी जगदीस।
भरमा सू भूला भ्रमै, करमा तणा कलीस॥'

इक्कीसवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'जग अत सम पती वरनन' है। इसमे कुल २३ छंद हैं। सृष्टि के लिए कितने कल्प हैं, सृष्टि का सृजन कैसे हुआ तथा इस दृश्य जगत की समाप्ति कैसे होगी आदि कई सारमरे प्रश्नों का हल इस विश्राम मे किया गया है। साधारण भौतिक पदार्थों से होता हुआ जगत समाप्ति का विलीनीकरण अनेको सोपान पार करता हुआ अन्ततोगत्वा प्रेमशून्य मे आकर मिलता है। प्रेमशून्य के विषय मे कवि कहता है —

'प्रेम सुन्न को पार न पायौ। सकल पसारौ उहां समायौ।'

अत मे कवि उस 'अलखधाम' की चर्चा करता हुआ कहता है कि वह तो वर्णनातीत है। उसका प्रसग कथन एव श्रवण के योग्य नहीं है वलिक अनुभव करने की बात है। इसी भाव को स्पष्ट करने वाली निम्नलिखित पक्तियाँ विशेष पठनीय हैं —

'वा घर की गम कूण पिछाणै।
जो पूगा सो जन ही जाणै।
कही सुणी मे कछू न आवै।
पावै सो लगनी मे पावै॥'

बाईसवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'अदेस्टो खड वरनन' है। इसमे कुल २७ छद हैं। इस विश्राम के अतर्गत कवि ने ईश्वर के निर्गुण रूप का वर्णन वडी भव्यता से किया है। साथ ही एक भक्त की उस उच्चतम अवस्था का भी चित्रण किया गया है, जिसमें उगे परमेश्वर की ब्रह्ममय सत्ता का पूर्णाभास होता है। प्रारभिक दोहे में ही कवि ने कह दिया है कि —

'दिस्ट विहूणौ देखणौ, जीभ विहूणौ जाप।
क्रोडा माही सत को, पूगै भजन प्रताप॥'

आगे कवि ने उस अगम्य स्थल में इहलौकिक पदार्थों के सर्वथा अभाव की ओर सकेत करते हुए कहा है कि —

'उहा पसारौ है न ऐ, तर गिर नर हि तमाम।
सर सागर सरिता सबै, नही उहा धर नाम॥'

इसी प्रकार आगे भुजगी छदो में सृष्टि के प्रत्येक क्षेत्र के समस्त मुख्य पदार्थों के नाम गिना कर 'नहीं' शब्द की सज्ञा से चित्रित किया है। अंत में कवि ईश्वर का महत्त्व प्रकट करता हुआ कहता है कि:—

'वेद थकै बाणी थकै, सुरता थाकत सोय।
'चिमन' उवै घर जो चडै, कलमत रहै न कोय॥'

तेवीसवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'सुरगुण नुरगुण निमसकार नित्य दीसत नांम वरनन' है। इसमें कुल २४ छद हैं। इस विश्राम में कवि हमारे सम्मुख एक सच्चे एव निर्विवादी भक्त के रूप में आता है। सगुण एवं निर्गुण ईश्वर के दोनो रूप मान कर ससम्मान विनम्र भाव से नमस्कार करता है। सर्वप्रथम दो दोहो में कवि कहता है —

'मेल दिया निज मानखै, अह निस देत अहार।
चराचरी 'चिमनेस' कव, करज्यो नीमसकार।
निमो निमो अविगत अनत, निमो निरजण नाथ।
नारायण परभू निमो, सता करण सुनाथ॥'

इस विनम्र एव सादर वदना के पश्चात् कवि ने ईश्वर की महिमा का भुजंग प्रयात छदो में ऐसा अथग गान किया है, जिसमें सगुण एव निर्गुण दोनों ही रम्य रूप सरिता वत् समाहित हो गये हैं। अन्त मे नमस्कार करता हुआ कवि ईश्वर के सर्वव्यापी शाश्वत रूप का चित्रण इस प्रकार करता है —

'नमो फूल मे वास ज्यू वास देवा।
नमो दूध मे घृत्त ऐसा विदेहा।
नमो काठ पाखाण मे जेम जोती।
नमो ऊजल' नंमल' तेज मोती॥'

चौवीसवाँ विश्राम

इस विश्राम का नाम 'सुणते फल प्रापती वरनन' है। यह इस ग्रथ का अतिम विश्राम है। इसमे कुल १७ छद हैं। इसमे प्रस्तुत ग्रथ के पठन एव श्रवण का महात्म्य चित्रित किया गया है। यह महात्म्य-पद्धति कवि ने परंपरागत धर्म ग्रंथो से अपनाई है। पृथ्वीराज राठौड रचित 'वेलि क्रिसन-रुकमणि री' मे भी इसी परपरागत रूढि का पालन किया गया है। महात्म्य के साथ और भी कई अनुभवपूर्ण सूक्तियाँ कवि ने चित्रित की है। सर्वप्रथम ईश्वर महिमा का एक दोहा है :—

'अगम अगोचर है अलख, खलक रचावण खेल।
पलक निवाजण है प्रभू, आपण मोख उभेल॥

आगे कवि इस ग्रंथ के अनुसार आचरण करने के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहता है :—

छप्पय

'सुणै कथा सुभियाण, ताण मसताई त्यागै।
जुगत अरथ लै जाण, भाण ज्यू तम भ्रम भागै।
कथा माय विध कही, सही अपणै घट सोजै।
अणभै होत उजास, खट्ट चक्रादल खोजै।
सत चढै गग उलटो सदा, राम रग रातौ रहै।
'चिमनेस' दास सतगुर वचन, लाख पदारथ गुण लहै॥१॥'

अंत मे कवि ने ग्रंथ का रचना-काल एक दोहे मे वर्णित किया है, यथा :—

'संमत उगणीसै समै, वरस चालीसै वहत।
सुद वैसाखा री दसम, मुणियौ ग्रथ महत॥'

ग्रंथ समाप्ति के पश्चात् कवि ने अपना पता एवं रचना-काल गद्य मे इस प्रकार लिखा है :—

"इतीश्री हरीजस मोष्यारथी सुणतां फळ प्रापत नांम कविया चिमनदास री कर्यो चतुरवीसमो विश्राम समापत। सुभवस्तु कल्यांणमस्तु सुष समत १९४० वैसाष सुद १० दिने लिषतु कवियौ चिमनदास लुदरदानोत रांम रांम राम छै सही गांम विराई वास आथमणै घडै सिवदांनोतां है. चिमनदास लुदरदानोत लुदरदांन करनीदांनोत री पोथी छै सही॥"

कवि के दार्शनिक विचार —

१ ब्रह्म —

श्री चिमनजी कविया को ब्रह्म के विषय मे यद्यपि वेदान्त एव उपनिषदों का मत ही मान्य है, तथापि उनकी आध्यात्मिक मान्यताओ पर नाथपथ और कबीर के विचारो का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। कई विश्रामों मे उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या करने की चेष्टा की है। दूसरे विश्राम मे कवि कहता है —

'अविगत ब्रम उतपन किया, सुता एक दोय सुत्त।
इछ्या सक्त अनाद है, ताको नांम प्रकत्त॥'

यहां पर ब्रह्म को आदिपुरुष के रूप मे व्यक्त कर उसके दो पुत्र—कच्छप और निरंजन तथा एक पुत्री इच्छाशक्ति या प्रकृति का उल्लेख किया गया है। आगे कवि ९ वें विश्राम मे चराचरी के वेदान्तिक सिद्धान्तों की चर्चा करता हुआ ब्रह्म को सर्वव्यापी एवं बहुरूपी मानता है। उदाहरणार्थ .—

'लगनीवत संत अनत लखै।
दुनियांन चराचर ब्रद दखै।

घर अंबर व्यापक एक धणी।
तिहँ माय कला सब राम तणी ।।'

संसार जिसे चराचरी कहता है, उसी सृष्टि मे परमज्ञानी साधु ब्रह्म का आभास पाते हैं। विश्व मे सर्वत्र एक ही ब्रह्म छाया हुआ है, यथा—

'अंबर धर ससिवर अरक, पवन र पाणी पेख।
ब्रम गिनानी सत वड, लेखत एक अलेख ।।'

इसी प्रकार कवि कहता है कि पृथ्वी के धूलिकणों की भाँति ब्रह्म के अनेक अंश हैं। ज्ञान-दृष्टि से खोजने पर सर्वत्र ईश्वर की सत्ता व्याप्त मिलती है :—

'धर धूल कणूकाय रूप धरै।
परतीत अनत अनत परै।
हम खोज लहै सब सोज हरी।
प्रभु तेज कला सब मे पसरी ।।'

इसी प्रकार पन्द्रहवें विश्राम में षट्मतों के अन्तर्गत् वेदान्त का मत प्रतिपादित करते हुए कवि एक ही ब्रह्म के अनेक रूपो की चर्चा इस प्रकार करता है :—

'पीतल एक पछाण, जाण घट लोटा झारी।
लोह एक गिण लेह, कसी समसेर कटारी।
अतका एक प्रमांण, कुंडाली कूंडी कूंडा।
जलहि एक कर जोय, उदध तरगा कुछ ऊडा।
इण तरै रूप दोसै अनत, औरू वुस्त अनेक है।
वेदत 'चिमन' कहियौ विवध, एकोइ रूप अलेख है।।'

आगे १८वें विश्राम मे कवि ने योगी के ब्रह्म-साक्षात्कार की चर्चा करते हुए अजन्मा, पाप-पुण्य रहित ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया है :—

'एकोस अजनमा आप आप।
पहुचे न उहा कुछ पुन्न पाप।
कुछ उहा न पूर्ग करम काल।
अवगति अखड निहचल अकाल ।।'

फिर बीसवें विश्राम में कवि ने ब्रह्म के निराकार, अगोचर एवं अवर्णनीय रूप का वर्णन उपनिषदों के समान ही किया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित दोहे अवलोकनीय हैं :—

'सता सरूपी सगम है, अगम अनूपी आप।
वृद्ध वाल, ना छोट वड, तत सीत ना ताप ।।१।।

रगत पीत ना स्त्री पुरख, सेत हरत नां स्यांम।
हलको भारी है नही, नां अचर मा नाम ॥२॥
पवना गिगना पाप पुन, लगै नही लवलेस।
दिस्ट विहूणौ देखणौ, नित मगल 'चिमनेस' ॥३॥
पाप पुन्न पूगै नही, रवि सस दिहा न रैण।
अरथा मे आवै नही, थाक विलावै वैण ॥४॥
मन थाकै मछ्या थकै, जाल सुबद थक जाय।
'चिमन' पगा चिन चालबौ, सुरता रही समाय ॥५॥'

उपर्युक्त अंतिम दो दोहो का भाव कठोपनिपद् के निम्नलिखित श्लोक मे देखिये :—

'यद् वाचाऽनुभ्युदित येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेद यदिदमुपासते ॥'

बाईसवें विश्राम मे ईश्वर के निर्गुण रूप का विस्तृत वर्णन ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। इसमे अंतिम दोहा अवलोकनीय है, यथा —

'वेद थकै वाणी थकै, सुरता थाकत सोय।
'चिमन' उवै घर जो चडै, कलमत रहै न कोय ॥'

इसी प्रकार तेवीसवें विश्राम मे ईश्वर के ब्रह्म स्वरूप का महत्व गान करता हुआ कवि उसकी अव्यक्त सत्ता को निम्नलिखित शब्दो में चित्रित करता है :—

'नमो फूल मे वास ज्यू वास देहा।
नमो दूध मे घ्रत्त ऐसा विदेहा।
नमो काठ पाखाण मे जेम जोती।
नमो ऊजल अम्मल तेज मोती ॥'

इस प्रकार ब्रह्म के बारे मे कवि के विचार शास्त्रों एवं पुराणों से सम्मत हैं। ब्रह्म के अनन्त रूपों का वर्णन करते हुए कवि इस ग्रथ के ७ वें विश्राम मे एक स्थान पर फिर कहता है —

'मेघ बूंद अरु पात द्रुम, रूमगात अणपार।
रैण कणूका गिण रहै, अनत अनत अवतार ॥'

ब्रह्म के बारे मे विभिन्न भारतीय मतों मे प्राय. साम्य पाया जाता है। कबीर ने भी इसे उपनिषद् के ब्रह्म के समान अनिर्वचनीय तत्त्वरूप ही माना है, यथा —

'जाके मुह माथा नही, नाही रूप कुरूप।
पुहुप वास तें पातरा, ऐसा तत्त अनूप ॥'

[कबीर-ग्रंथावली, पृ० ६०]

२. जीव.--

कवि ने जीव को कर्मों से प्रभावित व स्वभावत जड माना है। पुनर्जन्म मे कवि का विश्वास है। जब तक जीवात्मा ससार के शुभाशुभ कृत्यो मे उलझी रहती है तब तक उसका आवागमन-बधन नहीं टूटता। ज्यो ही सद्गुरु की कृपा से जीव को ज्ञान हो जाता है, वह परमज्योति मे मिल कर जन्म-मरण के जाल से मोक्ष पा लेता है। पाप-कर्मों के प्रभाव से ही जीव अनेक योनियो मे कष्ट पाता रहता है। कवि के शब्दो मे —

'जोण जोण भुगतै जब्रर, पापस्टी दुख पूर।
हरिगुण विन जावै विहद, देव लोक सै दूर।।'

इसी बात को कठोपनिषद् मे भी ठीक इसी प्रकार से व्यक्त किया है, यथा :—

'यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्क सदाऽशुचि ।
न स तत्पदमाप्नोति सँ्सार चाधि गच्छति ।।'

[कठोपनिषद् वल्ली ३ श्लोक ७]

जब जीव को ब्रह्म का भान हो जाता है, तो वह स्वर्ग की अस्थायी अवधि को उल्लघित कर परमज्योति मे लीन हो जाता है। कवि ने कहा भी है :—

'अगन से पतगा झड्या आय।
सो गया फेर अगनो समाय।।'

इसी प्रकार बीसवें विश्राम में जीव को पतगा मान कर ज्योति में प्रविष्ट होने की चर्चा के साथ अगम्यपद तक के सोपान को अभिव्यक्त कर दिया है। उदाहरणार्थ.—

दोहा

'मिलै पतगी जोत मा, जोत सता मिल् जाय।
सता मिलै परिब्रम सू, परिब्रम अगम पुजाय।।'

जीव को जाति, कुल आदि सांसारिक बंधनों से अप्रभावित बताते हुए कवि कहता है कि जो ईश्वर की भक्ति करता है, उसी का उद्धार निश्चित है, यथा.—

'ध्यावै सोई ऊधरै, नीच ऊच कुल नांय।
कहा आस इण देह की, मिलौ वैग सत माय।।'

इस प्रकार कवि ने वेदान्त एव उपनिषदो की परंपरा के अनुकूल जीव को कर्मों से प्रभावित बताया है। कुकृत्य-रत जीव के लिए नरक का भयानक दृश्य कवि ने १२वें विश्राम मे प्रदर्शित किया है। साथ ही अच्छे कर्म करने वाले के लिये स्वर्ग की मनोहर झांकी भी १३ वें विश्राम मे प्रस्तुत है। जो सदसद् की परिधि को लांघ कर ब्रह्म के ध्यान मे लीन हो जाता है, वह अततोगत्वा ज्योतिस्वरूप का अग बन कर आवागमन के बधन से मोक्ष पा ही लेती है। इस अवस्था के लिये स्थितप्रज्ञ बनना आवश्यक है, जो सर्वत्र एक ही सत्ता का अस्तित्व देखता है। स्वय कवि ने कहा है —

'अगम अगम अविगत अखय, अणभै सगम उचार।
काल करम कुछ कोयनी, है सो सिरजणहार ।।'

कवि ने भारतीय दर्शन के अनुकूल जीव को अज्ञानावस्था मे तो जडस्वरूप ही माना है, किंतु ज्ञान होने से उसे मुमुक्ष और अन्त मे साधना का साफल्य होने पर मुक्त माना है।

३ (अ) जगत की उत्पत्ति.—

श्री चिमनजी ने जगत की उत्पत्ति का वडा विस्तृत वर्णन किया है। नाथ पंथ और कवीर मत मे भी लगभग इसी प्रकार की मान्यताएँ मिलती हैं। कवि ने मुख्य आधार भागवत की कथाओ को ही माना है। इस ग्रथ के दूसरे विश्राम मे सर्व प्रथम अविगत ब्रह्म का उदय माना है। अविगत ब्रह्म ने दो पुत्र एव एक कन्या को उत्पन्न किया। पुत्रो के नाम कच्छप और निरजन थे तथा कन्या इच्छाशक्ति थी, जो प्रकृति कहलाई। अविगत ने अपने ज्येष्ठ पुत्र कच्छप को सृष्टि-निर्माण की आज्ञा दी। कवि के शब्दों मे :—

दोहा

'अवगत ब्रम उतपन किया, सुता एक दोय सुत्त।
इछया सक्त अनाद है, ताको नाम प्रकत्त ।।१।।
कच्छप नामौ ब्रम के, जोग पुत्र है जेस्ट।
देव निरजण दूसरौ, कहियै तिकौ कनेस्ट ।।२।।
भ्रकुट सोल चवसठ भुजा, कच्छप को आकार।
अवगत तातैं ज्यू कयौ, सुत उपाय ससार ।।३।।'

अविगत ने कच्छप की आकृति वाले अपने पुत्र को सृष्टि उत्पन्न करने को कहा, किंतु सोलह भृकुटियों एव ६४ भुजाओं वाले कच्छप से यह कार्य नहीं हो सका। अविगत तो पुत्र को आज्ञा देकर शून्य मे समाधि लगा कर ध्यानस्थ हो गया। निरंजन ने देखा कि पिता की आज्ञा का पालन नहीं हो रहा है, तो वह क्रोधित हुआ और भाई से जा भिडा। निरंजन ने क्रोध की जम्हाई लेकर अपने धर्मभ्रष्ट भ्राता. की एक भुजा खडित कर दी। इसके साथ उसकी भगिनी का सारा गात्र ही गल गया, यथाः—

दोहा

'यह सुण निरजण ऊठियौ, विकल लगी यह वात।
क्रोध उबासी करत ही, गलयौ सगत को गात ।।
भुजा खडी या भ्रात का, बैहन गलयौ विवुद्ध।
अवगुन मे ××× न उभै, समझ न पायौ सुद्ध ।।'

जब निरंजन को अपने क्रोध का दु ख हुआ, तो प्रायश्चित करने के लिए वह शून्य मे समाधिस्थ बन गया। कई कल्प व्यतीत होने पर जब उसे पुन चेतना हुई, तो 'ओऽहं' शब्द की उत्पत्ति की, जिससे उसके समस्त पाप जल गए। कवि के शब्दों मे :—

'केते ही वीते कलप, चेतन भयौ सुचेत।
ओहु सबद उतपन कियौ, बलया पाप सरबेत ।।'

फिर 'ओऽह्' शब्द से महत् तत्त्व का आविर्भाव हुआ और उनके द्वारा त्रिगुणोत्पत्ति हुई। तीन गुणो के सम्मिश्रण से 'अहम्' का उदय हुआ और उसके फलस्वरूप जगत की उत्पत्ति हुई। सत, रज और तम गुणो से क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शकर उदय हुए। कवि के शब्दो मे :—

दोहा

'ऐसी विध से ऊपना, सत रज तम गुण सोय।
त्रविधो अह पुकार त, जग ऊपजिया जोय ॥१॥
सतोगुणी कहियै विसन, रज गुण ब्रंमा रूप।
तमगुण सकर कैत है, ओह देव अनूप ॥२॥'

त्रिगुणों से उदित त्रिदेव की बात वाली कवि की साक्षी भागवत के मत पर व्यक्त किये गए श्रीगोविंद त्रिगुणायत के शब्दो से भी होती है। वे लिखते हैं, "यही आदि पुरुष जगत की सृष्टि के रजोगुणी अश से ब्रह्मा के रूप मे व्यक्त हुए। उन्हीं के सतोगुणी अश से विष्णु का उदय हुआ, पुनः तमोगुण अश से रुद्र की सभूति हुई। इस प्रकार एक ही पुरुष गुणत्रय का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न नामो को धारण करता हुआ जगत की उत्पत्ति, रक्षा व प्रलय की व्यवस्था करता है।"[1]

फिर ब्रह्मा को वेद सौंप कर गुणत्रय से सृष्टि-निर्माण का भार सौंपा गया, यथा :—

'वेद दिया ब्रहमाण कू, विध सुध करौ विचार।
त्रिगुण सेती तुम रचौ, सिस्ट इस्ट ससार॥'

उत्तरदायित्व के अनुसार ब्रह्मा ने अपने मुख, भुजा, जघा व चरणो से क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों का निर्माण किया। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चारो आश्रमधर्मों को क्रमशः अपने हृदय, जघा, वक्षस्थल व मस्तक से उत्पन्न किया। फिर तीसरे विश्राम मे कवि ने ब्रह्मा के द्वारा रचित १४ लोको का वर्णन एक छप्पय मे इस प्रकार किया है .—

'अवल वितल उतपन्न, महातल दुत्तिय मडै।
त्रितिय थापियौ सतल, चतुर पाताल प्रचडै।
अहि पचम खट असुर, सपत मानव ×× अस्टी।
गो नवमौ दस देव, सभु एकादस सस्टो।
वैकुठ वार तेरह ब्रहम, चत्रादस सत वेद ही।
'चिमनेस' धन्य चेतन्नता, सकल लोक मडे सही॥'

इसी प्रकार २१ वें विश्राम मे कवि अलक्ष्य ईश्वर के द्वारा सृष्टि-निर्माण की बात को कुछ दूसरे प्रकार से कहता है। कवि का कथन है कि 'अलख' के द्वारा सृष्टि रची जा कर ५ कल्पों का निर्माण हुआ। पांचो कल्पों के नाम इस प्रकार हैं—परिब्रह्मकल्प,

---

[1] श्री गोविंद त्रिगुणायत—'कबीर की विचारधारा'।

शक्तिकल्प, शिवकल्प, विष्णुकल्प और मानुषीकल्प। फिर अविगत ने पुरुष और प्रकृति की उत्पत्ति की। प्रकृति के द्वारा त्रिगुणोत्पत्ति हुई।† फिर ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने क्रमशः मानव, देव और मुनादि की सृष्टि की। सब ने ब्रह्मा को कुम्भकार का कार्य सौंपा कि वे सृष्टि के खपने पर पुनः निर्माण कार्य मे रत रहें। कवि के शब्दों मे :—

'विध कू कहिया वारवारा। ह्वौ तुम जग के सिरजणहारा।
कांम कुभार तणा नित करजे। धर पर सिस्ट खपै जद धरजे ॥'

इस प्रकार जगत की उत्पत्ति के बारे मे कवि ने भागवत मे वर्णित कारणो को ही आधारभूत बनाया है। साथ ही राजस्थान मे नाथपथ का बहुत अधिक प्रचार होने से उस पथ की कतिपय मान्यताओ का समावेश भी इनके जगत की कहानी मे हो गया है।

३. (आ) जगत को समाप्ति.—

यह जगत, जिसमे निरंतर अनेक प्रकार की क्रीडाएँ एव हलचलें होती रहती हैं, एक दिन निश्चय ही समाप्त हो जायगा। इस पौराणिक कल्पना का चित्रण कवि ने इस ग्रथ के २१ वें विश्राम मे बड़े विस्तार के साथ किया है। ब्रह्मा अपनी रात्रि आने पर चारो वेदों को समेट कर सो जाता है। ऐसे अवसर पर जल उलट कर प्रलय दिखाता है और अंत मे चारों खानि के जीव उसमे समाप्त हो जाते हैं। फिर जब ब्रह्मा की आंख खुलती है, तो वह पुनः सृष्टि रचना प्रारभ कर देता है। नवसृष्टि मे बीते उस काल को प्रलय के नाम से सबोधित किया जाता है। जब स्वय ब्रह्मा खप जाता है, तो महाप्रलय होता है। सौ कल्प व्यतीत होने पर घोर प्रलय होता है, यथा :—

छद द्विग्रक्षरो

'जद ही ब्रम आप खप जावै।
महा प्रलौ उनकू कहवावै।
प्रलौ घोर आवै सत कलपा।
जब कछु रहै जीव ना जलपा ॥
पाच दूण तत दस ही पवना।
गूढ दिसा करही अत गवना।
एक एक मिल् चढही ऊचा।
पारविरम लग जाय पहूचा ॥'

जब समस्त कल्प समाप्त हो जाते हैं, तो लगातार सौ वर्षों तक वृष्टि नहीं होती। उस अवधि मे समस्त अकाल घटित हो जाते हैं। तत्पश्चात् पुनः मूसलाधार अतिवृष्टि होती है और सूर्य का प्रखर आतप व प्रचंड तूफान आविर्भूत होते हैं। सूर्य के ताप से समुद्र

† यहाँ साख्य मत का आधार लिया गया है।

का जल इतना खौल जाता है कि सभी जीव जन्तु उसमे जल कर भस्म हो जाते है। ऐसी दशा मे सभी वस्तुएँ असन मे जाकर विलीन हो जाती हैं और असन धरा मे मिल जाता है। पृथ्वी गंध मे और गध जल मे लीन हो जाती है। जल रस मे तथा रस पवन मे मिल जाता है। पवन स्पर्श मे विलीन हो जाता है और स्पर्श तेज मे मिल जाता है। तेज रूप मे तथा रूप गगन मे विलीन हो जाता है। गगन शब्द मे मिल जाता है तथा शब्द तमोगुण मे। तमोगुण का विलीनीकरण रजोगुण मे हो जाता है और दश इंद्रियाँ एवं दश पवनों को रजोगुण भक्षण कर लेता है। रजोगुण सतोगुण मे तथा सतोगुण महत्‌तत्त्व मे मिल जाता है। महत्‌तत्व प्रकृति मे और प्रकृति पुरुष मे लीन हो जाती है। पुरुष ब्रह्म मे एवं ब्रह्म परिब्रह्म मे मिल जाता है। इसी प्रकार परिब्रह्म अचर मे, अंचर शून्य मे, शून्य परिशून्य मे परिशून्य अविगत शून्य मे मिल जाती है। फिर अविगतशून्य अनिलशून्य मे और अलिलशून्य ऊर्ध्वशून्य मे लीन हो जाती है। ऊर्ध्वशून्य अमरशून्य मे और अमरशून्य का निवास अत मे जाकर प्रेमशून्य मे हो जाता है। यही प्रेमशून्य जगत समाप्ति की सीढी का अतिम सोपान है। इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है:—

छद द्विअक्षरी

'प्रेम सुन्न को पार न पायौ।
सकल पसारौ उहां समायौ।
वा घर की गम कुण पछाणै।
जौ पूगा सो जन हो जाणै ॥१॥
कही सुणी मे कछू न आवै।
पावै सो लगनी मे पावै।
सतगुर मिलै लखै सुख सैना।
'चिमन' दास पावै सुख चैना ॥२॥'

इस प्रकार जगत की समाप्ति का वर्णन कवि ने अनेक सोपान लांघते हुए पौराणिक ज्ञान के आधार पर बड़ी स्पष्टता एवं सुबोधता से किया है। सैकडो पदार्थों व तत्वों के विलीनीकरण का क्रम एवं ज्ञान कवि की अपूर्व विद्वत्ता तथा अनुभूति का परिचायक है।

४. अवतार:—

कवि ने अवतारों को ईश्वर की महान् विभूतियां समझ कर वदना की है। वैसे तो ७ वें विश्राम मे चराचरी का वर्णन करते हुए कवि ने प्रत्येक वस्तु को अद्भुत मय और ईश्वर के अवतरों को अगणित बताया है। स्वयं कवि के शब्दों मे:—

दोहा

'मेघ बूद अरु पात द्रुम, रूम गात अणपार।
रैण कणू का गिण रहै, अनत अनत अवतार ॥'

फिर भी भारत के प्रसिद्ध अवतारो का कवि ने भक्तिपूर्वक वर्णन किया है। पांचवें विश्राम मे १० मुख्य अवतारो का वर्णन किया है। प्रत्येक अवतार के माता-पिता, गुरु और नाम सहित एक परिचयात्मक दोहा कह कर आगे 'रोमकद' छद मे उसकी लीला का वर्णन किया गया है। दशों अवतारो के नाम इस प्रकार हैं :—

'मच्छ' 'कच्छ' 'वारा' 'मयद', 'दुज' 'वावन' 'रुघदेव'।
'किसन' 'बुद्ध' अरु 'नीकल क', 'सकल' 'चिमन' कव सेव ॥'

प्राय अश तो खडित हो चुका है, किंतु कुछ तथ्यपूर्ण उपलब्ध सामग्री के आधार पर उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। प्राप्य अश मे सर्व प्रथम परशुराम का वर्णन है, जिन्हे कवि ने छठा अवतार माना है। इसके ऊपर का परिचयात्मक दोहा तो नष्ट हो चुका है पर रोमकद छद इस प्रकार है :—

'पित वैर सकाज अकाज प्रथो पुड, क्रोध अती दुजराज कियौ।
कर धार कुठार अपार कुवगिय, दैत हजार भुजा दहियौ।
तद भोम समाप दुजां रत ऋप्पण, वक जोधार खगा विढयौ।
भगता दुख ताप निवारण भूधर, जारण पाप अनत जयौ।
जी जारण पाप अलेख जयौ ॥'

फिर सातवां अवतार श्री रामचंद्रजी को गिनाया है। ऊपर का परिचयात्मक दोहा ही प्राप्य है, जो इस प्रकार है —

'कौसल्या माता कहू, दासरथी पित दीह।
गिणिये ताय वसिस्ठ गुर, ऊ रुघ राम अबीह ॥'

इसी प्रका दवां अवतार श्रीकृष्ण को माना है। दोहा इस प्रकार है —

'कहियत माता देवकी, दिपत पिता वसुदेव।
गुर दरवासा ग्यान गुढ, सोहि किसन मन सेव ॥'

आगे का छद खडित है। फिर वामन अवतार का परिचयात्मक दोहा तो प्राप्त नहीं है, किन्तु छन्द इस प्रकार है —

'प्रगटे अवतार पगा विन पगुल, के जन बोध प्रवोध किया।
जगिया पाखड गमाय दिया जिग, भ्रातिय लोक निभ्रात भया।
अटका जगनाथ फटे अजहू लग, दैत खपा सुर मोख दयौ।
भगता दुख ताप निवारण भूधर, जारण पाप अनन्त जयौ।
जी जारण पाप अलेख जयौ ॥'

इसके पश्चात् कल्कि-अवतार का वर्णन है। परिचयात्मक दोहा प्राप्त हुआ है, जो इस प्रकार है :—

'मातगी निज मात है, तिनहि धूमरिख तात।
सैलरिक्ख है सत्तगुर, तप निकलंक इख्यात ॥'

इसके पश्चात् छठे विश्राम मे कवि ने 'कारज्यावतार' के प्रसग मे छोटे अवतारो का वर्णन किया है, जिन्होने कुछ अवधि के लिये ही अवतार लिया था। इसके अन्तर्गत् ब्रह्मा के ४ सनकादिक पुत्रो—सनक, सनदन, सेन और सनातन का वर्णन है। दत्तात्रेय का परिचयात्मक दोहा इस प्रकार है —

'अत्रीरिख पित आखिये, मात अनुसिया मान।
दत्तात्री दुज वस मे, भक्ति अस भगवान॥'

आगे का छप्पय खडित रूप मे है। फिर ऋषभदेव का वर्णन है। दोहा अवलोकनीय है :—

'निज पित है नाभी नपत, मेरगवा निज मात।
रिखभदेव तहाँ अवतरे, वसुधा करण विख्यात॥'

आगे के छप्पय मे ऋषभदेव द्वारा पुत्र को राज्य सौंपकर स्वय के तपस्या हेतु वन-गमन का वर्णन है। इसी प्रकार ध्रुव की तपस्या व भक्ति का वर्णन है और आगे प्रभु-अवतार का एक दोहा है, यथा :—

'भूप वैण के दाहिं भुज, प्रगटे प्रथू प्रथीप।
जगत अधारी मेट जिन, दरसायौ ध्रम दीप॥'

आगे हयग्रीव अवतार द्वारा ब्रह्मा के वेदोद्धार तथा मधुरकटक के सहार का वर्णन है। यह अवतार ८ प्रहर तक ही रहा। फिर ब्रह्मा के सनक पुत्रो को ज्ञानविषयक प्रश्न हल कराने हेतु हस अवतार हुआ। अत मे वेदव्यास का वर्णन है। केवल एक ही दोहा प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है :—

'पारासुर रिख है पिता, मच्छगध्या इहँ मात।
द्वैपायन उनके उदर, व्यास भये विख्यात॥'

आगे सातवें विश्राम मे इन्द्र और मनु को भी अवतार माना है। आठवें विश्राम के 'भक्ति अवतार वरनन' मे तो कवि ने भारत के समस्त भक्तो को अवतार मानते हुए उनकी स्तुति की है, जो कवि की उदारता की परिचायक है। इसके अन्तर्गत् प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र युधिष्ठिर अगस्त, वशिष्ठ, बृहस्पति, अगिरा, पिप्पलाद, कौशिक, सेन, पीपा, गोरख, रविदास, मल्लिनाथ, रामदेव, हरबू, दादू, ईशरदास, केशवदास आदि अनेक भक्तों की गुणमाला वर्णित की गई है।

इस प्रकार अवतारों एव भक्तों के प्रति कवि की अटूट श्रद्धा व्यक्त होती है, जिसकी पुष्टि के लिए उनका भक्ति-अवतार-वर्णन का यह अतिम दोहा बड़ा ही सुन्दर है :—

'चरणारज 'चिमनेस' कव, ले व्रत चाढ लिलाट।
रह्यौ छह्यौ सब ऊपरा, विस्व रूप वैराट॥'

५. भक्ति :—

श्री चिमनजी ने प्रस्तुत धर्म दर्शन-ग्रंथ मे अनेक स्थलों पर भक्ति के रूप और उसकी महत्ता का निरूपण किया है। पुण्य-कर्म को उन्होने भक्ति का ही रूप माना है। पितरों को श्राद्ध, देवताओं को अर्घ्य एव दीनहीन अवस्था के मनुष्य, पशु, पक्षी आदि को यथा शक्ति भोजनादि प्रदान करना भक्ति का ही एक स्वस्थ अग माना है। भक्ति के बिना व्यक्ति को अनेक योनियों मे जन्म लेकर अनेक सासारिक दु ख भोगने पड़ते हैं। कवि ने 'अक्रिया भोग्य वरनन' विश्राम मे इहलौकिक कुकर्मों के फलस्वरूप मनुष्य को यमराज के दरबार मे मिलने वाली विविध यातनाओ का चित्रण किया है। इसी प्रकार 'सुक्रिया योग्य वरनन' विश्राम मे शुभ कर्मों से प्राप्त होने वाले हृदयोल्लासक सुख का चित्र प्रस्तुत किया है। अमरलोक की प्राप्ति का कारण एक भगवद्-भक्ति ही है—इस बात को कवि इन शब्दो मे कहता है :—

'करत जगत मे सुभ क्रिया, भजत एक भगवान।
ऽवे नर पावत है अवस, अमरलोक अस्थान॥'

इसी प्रकार कवि शुभाशुभ कर्मों के फल का चित्रण करता हुआ मन को इस प्रकार समझाता है :—

छंद त्रोटक

'इतनौ सुन चेत अचेत अधा।
धर ध्यांन निवारहु आन धधा।
जिन चेत भयां हर नै जप ही।
अमरापुर राम जिनै अप ही।
'चिमनेस' कहै उन देस चलौ।
मह वेस कै व्रम विसन्न मिलौ॥'

कवि ने इस प्रकार ईश्वर-भक्ति के सभी मार्गों को पवित्र ही माना है। सगुण भक्ति मे अष्ट प्रकार की प्रतिमा-पूजन को भी ग्राह्य रूप दिया है। स्नान-ध्यान से पवित्र होकर पुजारी को अष्ट प्रकार के प्रतिमा-पूजन का आदेश इस प्रकार दिया गया है :—

'पीपल जल् रिव पूजिये, धेन मत्र इल धाय।
धातु कास्ठ पाखाण सुध, विधसुध चित्र वणाय॥'

कवि ने आडंबरहीनता को श्रेष्ठ भक्ति माना है। भक्त के लिये शुद्ध हृदय से ईश्वर का स्मरण और सासारिक विषयो से अप्रभावित रहना ही श्रेयस्कर है। स्वय कवि के शब्दो मे :—

छद भुजगी

'न को कुच्छ मागै न को त्याग नेमा।
पुजा नित्त साजै ग्रतो हेत प्रेमा।
भजै राम नाम रिदा सू न भूलै।
डिगै नाह व्रत्ती न को जीव डूलै।
महीमा न फूलै निंद्या सू न मूझै।
सही सत ऐसा त्रभूवन्न सूझै।।'

कवि का विश्वास है कि भक्ति मे किसी जाति या वर्ण का भेद विघ्न नहीं डाल सकता। जो ईश्वर की भक्ति करेगा, उसी का उद्धार होगा, यथा :—

'ध्यावै सोई ऊधरे, नीच ऊच कुल नाय।
कहा ग्रास इण देह की, मिलौ वेग सत माय।।'

ग्रागे तेवीसवें विश्राम मे कवि ने ईश्वर के सगुण एव निर्गुण दोनो रूपो को भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हुए ग्रपने भक्त हृदय का परिचय दिया है। इसी के साथ उन्होने ईश्वर को 'नमो पिंड नै खड ब्रहमडवासी' कह कर भक्ति के विस्तृत क्षेत्र का प्रदर्शन कराया है। ग्रत मे कवि भक्ति को ही वह साधन मानता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति ईश्वर के ब्रह्मरूप का ग्राभास पाता है, यथा —

'दिस्ट विहूणा देखणा, जीभ विहूणा जाप।
क्रोडा माही सत को, पूगै भजन प्रताप।।'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्ति का महत्त्व एव भक्त-हृदय का परिचय कवि के ग्रथ मे यत्र तत्र सर्वत्र झलकता है।

६ योग :—

प्रस्तुत ग्रथ मे कवि ने योग का वडा विस्तृत वर्णन किया है। सोलहवें विश्राम से २०वें विश्राम तक कवि ने योग के विविध ग्रगो तथा समाधियों का चित्रण किया है। १६वें विश्राम मे योग के ग्राठ ग्रगो—यम नियम, ग्रासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा ग्रौर समाधि—का निरूपण किया गया है। कवि की योग-धारणा पर पतंजलि के मत के साथ भागवत के योग का पर्याप्त प्रभाव है। "योगसूत्र मे यम-नियमो के क्रमशः पांच-पांच भेद वताये हैं, जहाँ भागवत मे उनकी सख्या वारह तक पहुँच गई। वैष्णव धर्म सदाचारो पर विशेष जोर देता है। शील, क्षमा, उदारता, सतोष धैर्य, दीनता, दया, सत्यता ग्रादि का उपदेश स्थान स्थान पर है।' † श्री चिमनजी ने भी यम-नियमो को भागवत के ग्रनुसार माना है। ग्रासन प्राणायाम, ध्यान ग्रौर समाधि इन योगांगो पर कवि ने वडा विस्तृत विवेचन किया है। ग्रासन लगा कर ध्यान मे लीन होने की क्रिया

†श्री गोविंद त्रिगुणायत— कवीर की विचारधारा'।

के प्रसग मे मूल, नाभि, हृदय और कठ के चक्रों की पवन, देवता व कमल-दल सहित स्पष्ट व्याख्या है। इडा, पिगला एव सुषुम्ना नाडियों के अतिरिक्त १० प्रकार के पवन का स्थान सहित वर्णन भी कवि ने किया है। प्राणायाम की विधि से त्रिकुटी मे ध्यान केन्द्रित करने पर झिलमिल ज्योति का वर्णन स्वय कवि के शब्दों मे देखिये :—

'इहँ रीत नीत सात्रत उठै, झिलमिल जोत प्रकास ही।
'चिमनेस' वकनाली चढै, हसौ करत हुलास ही॥'

इस प्रकार की 'उलटी साधना' नाथ-सप्रदाय एव कबीरपंथ दोनो से मिलती है। चिमनजी पर कबीर से अधिक प्रभाव नाथ-सप्रदाय का दृष्टिगोचर होता है। मेरुदड के नीचे अवस्थित कुण्डलिनी मस्तिष्क मे स्थित सहस्रार तक पहुँचने पर शक्ति एव शिव का मिलन हो जाता है और योगी को अमरत्व प्राप्त हो जाता है। कुण्डलिनी अधोमुखी है, उसको उलटी साधना से सहस्रार मे पहुँचाया जाता है। सहस्रार के नीचे चन्द्र से लेकर तालू तक 'वंकमाल' नामक स्थान है। इसी मे होकर चन्द्रमा से स्रवित 'महारस' या अमृत का मार्ग है। इसका मुंह दशमद्वार कहलाता है, जहाँ से होकर अमृत तालू मे आता है। वहाँ पर योगी जिह्वा को उलट कर अमृत का पान करता है। उपर्युक्त वर्णन कवि ने बड़े सरल एव सुगम्य ढग से प्रस्तुत किया है, जहाँ कबीर एव नाथो की विचारधारा मेल खाती है।

मुद्राओ द्वारा अमृत-पान की यौगिक क्रियाएँ मुक्ति की दात्री कहलाती हैं, अतः चिमनजी ने खेचरी आदि पाँचों मुद्राओं का वर्णन भी किया है, यथा —

'चाचरि भूचरि खेचरी, जिम अगोचरी जाण।
महा गिगन की उनमनी, पचहि मुद्रा प्रमाण॥'

इसके अतिरिक्त कवि ने अनहद-नाद का भी चित्रण किया है, जिसमे समुद्र, मेघ, भेरी, झाझ आदि का शब्द पहले तथा शख, घंटा, वीणा आदि का बाद मे सुनाई पडता है। आत्मा स्थिर होते ही ये शब्द सुनाई नहीं पडते हैं। इस प्रकार की साधना के लिये कवि ने गुरु के ज्ञान को परम आवश्यक माना है, यथा —

'इहँ तरै सत पूगै उठै, प्रेमा डोर पछाणियै।
गिनानी वात 'चिमना' गुपत, जुगत गुरा सू जाणियै॥'

पतंजलि ने योग द्वारा अष्ट सिद्धियो की प्राप्ति की बात कही है। उन सिद्धियों व ८ प्रमुख सिद्धो की चर्चा भी कवि ने इस ग्रंथ मे की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका यौगिक ज्ञान बडा ही विशद एव परिपूर्ण था, जिसमे पतजलि, नाथ-सप्रदाय तथा कबीर आदि का गहरा प्रभाव है। अन्य सिद्धान्तों मे भले ही विषमता हो, पर योग मे इनका प्राय एक ही मत है। कवि ने अष्टाग योग के अतिरिक्त 'इस्टोच्यांन पल मे समाधी', 'प्रगट समाधी निरूपण,' 'सिद्धो त्याग समाधी जोगाभ्यास' और 'निरभै समाधी' का वर्णन

किया है। चार प्रकार की समाधियों मे कवि ने 'निर्भय समाधि' को सर्व श्रेष्ठ माना है। इसमे समस्त प्रलापो व प्रपचों को त्याग कर आत्मा से परमात्मा तक पहुँचने का ज्ञान मार्ग ही चित्रित किया गया है। इसकी साधना के लिए होठ और कठ के बिना 'अजपा जाप' जपना ही कवि ने श्रेष्ठ माना है। उदाहरणार्थ एक छप्पय देखिये :—

'काया काची कोट, मोट मसती तज मन की।
चलौ सबद की चोट, तोट पड जासी तन की।
ऊ तो नाम अबोट, खोट बिन घट मे खेलै।
लोट पोट हुय लगन, अह दे दोट उथेलै।
मरजाद छोट तजियैं मछर, होठ कठ बिन हेरियै।
वेरियै 'चिमन' आदू सु घर, पर बिन पछी पेरियै॥'

कवि ने उपर्युक्त समाधियो एव सिद्धियो की बात भागवत के मतानुसार वर्णित की है, जिसे स्वयं कवि ने कहा भी है। इसके अतिरिक्त पतंजलि मत के मानने का भी सकेत है। इस प्रकार सक्षेप मे हम यह कह सकते हैं कि श्री चिमनजी का योग के क्षेत्र में अपूर्व ज्ञान था और वह नाथ सप्रदाय तथा कबीरपथ आदि मे साम्य परिलक्षित करने वाला है।

७ आश्रम धर्म :—

प्रस्तुत ग्रथ के ११ वें विश्राम में भारतीय संस्कृति के स्तमस्वरूप आश्रम-धर्म के प्रति कवि के विस्तृत ज्ञान का दिग्दर्शन होता है। आश्रम-धर्म जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँचने का एक सोपान है। कवि ने इसी महत्व को बड़े सरल व सुबोध ढग से समझाया है।

(१) ब्रह्मचर्य :—

ब्रह्मचर्याश्रम २५ वर्ष तक कठोर व्रत और संयम का जीवन है। कवि ने ब्रह्मचारी को ८ प्रकार के मैथुन से बचने का आदेश दिया है, यथा :—

'दिस्ट बात चितवन गुदा, निज श्री परसत नाय।
स्रवण हास सपरस सपन, सछा रहे न माय॥'

ब्रह्मचर्याश्रम को आदर्श, नैतिक व चरित्रसम्पन्न मानते हुए कवि ने सच्चे ब्रह्मचारी को अष्ट मैथुन त्यागी होने के साथ शौच, क्षमा, सतोष, अल्पाहार, स्नान, ईश्वरीय ध्यान आदि सद्वृत्तियों मे संलग्न रहना नितान्त आवश्यक बताया है। स्वय कवि के शब्दों मे :—

छप्पय

'ब्रह्मचार व्रत धार, निगम तज अन्ट प्रकाश।
शौच छिमा सतोष, करत नाही अलकास।

डरत जाल की दिस्ट, हरत भोजन दिन ही दिन।
धरत ब्रहम को ध्यान, नीर नावत छिन ही छिन।
दुज धाम असन लेवत दुचत, मुचत पाप पूरब जनम।
'चिमनेस' ब्रहमचारी चिहन, विन धावत आदू धरम ॥'

कवि की मान्यता है कि ब्रह्मचर्य के कठिन व्रत को जो व्यक्ति सतत रूपेण ग्रहण नहीं कर सकता, उसे गृहस्थाश्रम बनाकर ईश्वर का गुणगान करना चाहिए।

(२) गृहस्थ —

गृहस्थी के लिये कवि ने उत्तम कुल मे विधिवत् विवाह करने का धर्म बताया है। आवास की स्थापना पवित्र वातावरण मे होनी चाहिए। पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम एव कर्त्तव्य निष्ठा के प्रति कवि कहता है —

छप्पय

'ग्रस्त धरम की रीत, सुनहु नर नार सबै ही।
असत न बोलत्त बोल, तोल सत्त भाखत वे ही।
त्रिये पुरस इक तोल, कोल नहिं इमथा काढै।
देखत मे तन दोय, गहर हेको मन गाढै।
त्रिय पुरख जीव पुरसा त्रिया, एकमेक उद्दम करिय।
'चिमनेस' ग्रस्त को धरम चव, हेत प्रीत गावत हरिय ॥'

स्त्री पुरुष के समान अधिकार का उपदेश कवि की उदार मनोवृत्ति का परिचायक है। इस प्रकार हेत-प्रीति से तादात्म्य अनुभव करते हुए आनन्द-पूर्वक रहकर भी चिमनजी ने पति पत्नि के सयम पर अधिक बल दिया है। आगे कवि गृहस्थों को शिक्षा प्रदान करता हुआ कहता है —

छप्पय

'जब लग रहै सरीर, चाल तब लग नह चूकै।
नित आनदित रहै, सोच न करै वित सूकै।
द्वार खडौ को दीन, ताय पोखै मन तन सूं।
दिन पित्तर कुल देव, आसका पावै इन सूं।
इहँ भात धरम पालै अटल, ऊजल चित्त हरी उरै।
सो ग्रस्तलोक 'चिमनेस' कव, तीन पक्ख लेनै तिरै ॥'

इस प्रकार ५० वर्ष की आयु पर्यन्त व्यक्ति गृहस्थ जीवन यापन कर सकता है। तत्पश्चात् पुत्रो को उत्तराधिकार देकर ईश्वर-प्रणिधान मे लीन होना चाहिए। स्वयं कवि के शब्दो मे :—

'वीत पचासा वरस, जितै ऐसी विध साधै।
समझवान सुत होय, अलख सामी आराधै॥'

(३) वानप्रस्थ —

इसे कवि ने सबसे कठिन आश्रम कहा है :—

'बाणप्रस्थ को धरम, कठण सब ही त कहिये।'

५० से ७५ वष की आयु तक पति-पत्नी का वन मे सहवास होते हुए भी स्पर्श पूर्ण वर्जित है। स्वय कवि के शब्दो मे :—

छप्पय

'रात दिवस ढिग रहै, सहै वैराग समाना।
पत स्त्री परसै नाय, गरब सब तजै गुमाना।
धूल सिनाना धरै, करै नह निरमल काया।
अनफल तुच्छ अहार, मेटै सब इद्री माया।
नरनार काम परसै नही, वसै सग पण जूजुवा।
कव 'चिमन' सजै ऐसी क्रिया, हरवल्लभ वल्लभ हुआ॥'

वानप्रस्थाश्रम के लिये कवि ने सयम पर अधिक बल देते हुए शरीर की स्वच्छता व सावधानी के प्रति सर्वथा उदासीन भाव व्यक्त किया है। कवि ने तो यहाँ तक कह दिया है कि :—

छप्पय

'करै न दतण कोय, नही मुख धोवत नीरा।
वधी जटा नखवाल, साभ नह करत सरीरा।
वरस पिचतर लगं, इसौ वनवास कमावै।
पूगे निज ब्रमलोक, जोण निस्टी नह जावै।
तप करै जुगल ऐसी तरह, काम जीत इद्री कसै।
'चिमनेस' सोही जन चेतिया, ब्रह्मलोक निरभै वसै॥'

इस प्रकार वानप्रस्थ के कठोर व्रत का यदि पूर्णरूपेण पालन किया जाय, तो कवि का विश्वास है कि पति पत्नी का वह जोडा सीधा ब्रह्मलोक का वासी होता है।

(४) सन्यास :—

७५ वर्ष की आयु के पश्चात् दुर्बल देहा स्त्री का परित्याग कर वानप्रस्थ ी सन्यास को धारण करता है। कवि ने कहा भी है :—

'वरस पिचतर वालिया, सजै पछै सन्यास।'

सन्यासाश्रम मे व्यक्ति पूर्णत निवृत्त होकर मोक्ष एव ईश्वर की प्राप्ति मे लीन हो जाता है। वह सब प्रकार के दु खो से मुक्त होकर वर्ग व वर्ण की परिधि को पार कर देता है। डॉ० राधाकृष्णन् ने कहा है —

"चार-पुरुषार्थों मे 'आध्यात्मिक मुक्ति (मोक्ष)' सर्वोच्च है, चार-वर्णों में आध्यात्मिक अनुकरण मे लीन 'ब्राह्मण' सर्वोच्च है और चार आश्रमों में 'सन्यास' सर्वोच्च है ।"

कवि ने पद्धरी छंदो के माध्यम से सन्यासी के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला है। त्याग की भावना का प्राचुर्य सन्यासी के लिए अनिवार्य है। सांसारिक वस्तुओं एव सुख-सुविधाओं से पूर्णतया विरक्त होना पड़ता है। स्वय कवि के शब्दों मे —

'जल पात्र हेक चहिये जरूर। दूसरो सब्ब राखत दूर ।'

इसके अतिरिक्त सन्यासी को भूमि-शयन तथा वल्कल पहनने का आदेश है। फल-फूल व कदमूलादि के द्वारा क्षुधा शान्त करनी चाहिए। आहार की निश्चित मात्रा होनी चाहिए, उससे कम या अधिक होना धर्म के विरुद्ध है। यदि कभी अन्न की भिक्षार्थ नगर मे जावे, तो केवल सात घरों से ही सतुष्ट होना चाहिए। नगर से चूनादि लेकर सन्यासी को दूर जगल मे जाकर किसी जलाशय के समीप मंत्रादि से स्थल को पवित्र कर फिर आचमन करना चाहिए। भिक्षा से प्राप्त अन्न आदि मे से स्वयं केवल चौथाई भाग ही ग्रहण करे। प्रत्येक दिशा में संयमी होना सन्यासी का परम धर्म है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां देखिये:—

छंद पद्धरी

'जल जुगत करत्त आसरण सु जाय।
खुध्यास दमत फल फूल खाय।
गिर गुफा जोय सर तर गिनान।
महि म्रिगछाल सेज्या समान ॥१॥
गुर सिखा पक्ष राखै न गोढ।
पिलँगास जेम भूचक्र पौढ।
फिर पता तरू के फलहि फूल।
महि विचर खात है कदमूल ॥२॥
इह करत रहत अपनो अहार।
हक बांध लेय इधको न हार।
जो कदा नग्र अन लेन जाय।
सप्त दुज घरां न फिरै सवाय' ॥३॥

ऐसी शुद्ध क्रिया के द्वारा पदार्थों की आसक्ति एव देह का मोह त्याग कर शून्य में लीन होने से सन्यासी की स्थिति गीता मे कथित स्थितप्रज्ञ के समान हो जाती है, यथा:—

'दु.खेषु अनुद्विग्नमनः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतराग भय क्रोधः स्थित धी मुनिरुच्यते ॥'

ऐसी उच्चतम दशा प्राप्त हो जाने पर ज्ञानी पुरुष की आत्मा मुक्त हो जाती है। शाश्वत एव चिरतन परमज्योति मे आत्मा के अतर्द्धान का यही रहस्य एव मार्ग है। स्वयं कवि ने कहा भी है:—

छद पद्धरी

'इहँ तरै करै तज देह आस।
निज सुन्न वोच बांधै निवास।
तन पड़ै तौहि नह करै तोख।
महाराज भजन सू होत मोख॥'

कवि ने आश्रम-धर्मों को भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही चित्रित किया है। इस वर्णन मे कवि के अपूर्व ज्ञान तथा भारतीय आदर्शों के प्रति उसकी श्रद्धा परिलक्षित होती है।

८. षट्दर्शन व्याख्या.—

इस ग्रन्थ मे कवि ने ६ दर्शनों का सिद्धान्त-प्रतिपादन भी किया है। इसे षट्मत भी कहा जाता है। वेदान्त, योग, न्याय, वंशेषिक, मीमांसा और सांख्य—ये ही ६ अग या षट्मत कहलाते हैं। इनके अन्दर भारत का समस्त दर्शनशास्त्र सन्निहित है। कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ के १५वें विश्राम मे षट्मत का निरूपण करते हुए 'ग्यान उदीपन खटमत चतुर वेदा सिधोत' शीर्षक रखा है। इसमें केवल ज्ञानोद्दीपक मुख्य सिद्धान्तों का ही सक्षिप्त चित्रण है। षट्मत मे कौनसा सिद्धान्त अच्छा है और कौनसा बुरा—इसका निर्णय कवि पाठकों पर ही छोड़ देता है। कहा भी है:—

दोहा

'खटमत हूं मे अगं खट, उपजै अरथ अनूंप।
समझ विचारै सोजियें, तेल छाछ पयं तूप॥'

आगे कवि ने षट्मत-निरूपण इस प्रकार किया है—

(१) मीमासा·—

इसमें कर्म को सर्वोच्च माना है। महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देव कर्म से प्रभावित हैं। कवि के शब्दों मे.—

दोहा

'मीमसा की एह मत, सुनो सकल संसार।
विधविध करनै वरणियो, करमन को इधकार।।'

(२) वैशेषिकः—

इसमे समय को ही सबसे बड़ी शक्ति माना है। मनुष्य के समस्त कर्म समय के अनुसार ही फलीभूत होते हैं। कवि कहता है.—

दोहा

'मत वसेख सासत्र मा, कयौ एह इधकार।
समै होत है सिद्धता, वहियै समै विचार।।'

आगे शकर का भस्मासुर के आगे भागना, श्रीकृष्ण का काल-यवन पर जोर नहीं लगना, अर्जुन का काबो से हारना, ब्रह्मा का वेदध्वनि भूलना आदि दृष्टान्त देकर कवि ने समय की प्रबलता की पुष्टि की है।

(३) न्याय —

इसके अनुसार ईश्वर ही एक ऐसी परमसत्ता है, जो बिना सेवा के संसार का भरण-पोषण करती रहती है। ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि का नियन्ता, प्रह्लाद आदि भक्तों का वत्सल एव युगों का परिवर्तक एक ही ईश्वर है, जो परम दयालु है। न्याय कहता है कि ईश्वर का रूप अगम्य एव अलक्ष्य है, यथाः—

दोहा

'न्याय कहे जाणत नहीं, कै देख्यौ किरतार।
स्रुती बखाणै समझ के, अगमे अगम अपार।।'

उपर्युक्त वर्णन कवि ने न्यायमत के आधार पर किया है।

(४) योगः—

इसमे कवि आत्मा से परमात्मा के मिलन को योग मान कर उसकी महत्ता का गुणगान करता है। योग मे पतंजलि के मत को आधार मान कर कवि उसका महत्त्व इस प्रकार व्यक्त करता है, यथा।—

छप्पय

'नारायण तप कियौ, कपल मुनि जोग कमायौ।
सज्यौ दत्त सन्यास, धूह परण उनकूं धायौ।
अहिपत जपत असेस, सिद्ध सिनकादक सेवै।
नारद सारद नाम, लोभ तज उनको लेवै।

जमदगन रुसी अरु अप जिनक, सयभु मनु सभारियौ।
कवि 'चिमन' पातजल मत कहै, ध्रू प्रैहलाद उधारियौ ॥'

(५) साख्य—

साख्य मत के आधार पर कवि कहता है कि मन का विभ्रम मिटाने से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। मन को नश्वर वस्तुओं की आसक्ति से हटा कर ईश्वर-स्मरण की प्रेरणा कवि के शब्दो मे ही देखिये.—

छप्पय

'समर नांम सचियार, वार मत लाय विचम्मां।
भज रे मन भगवान, नाथ विन आन निकम्मा।
पड जासी पाखाण, हवेली साथ न हालै।
काया रो कमठाण, च्यार दिन जुग मे चालै।
जड देह जाण आसा तजौ, भजौ मेवासा भ्रम है।
'चिमनेस' स्वाख मत कू उचर, विस्व चराचर क्रम है ॥'

(६) वेदान्त—

इसके अनुसार जगत मे दिखाई देने वाली सभी वस्तुएँ एक ही ब्रह्म के अनेक रूप हैं। जिस प्रकार पीतल, लोहा, मिट्टी, जल आदि के अनेक रूप हमें दिखाई देते हैं, उसी प्रकार चराचर सृष्टि भी एक ही ब्रह्म के विविध रूपो का प्रतिबिंब मात्र है। स्वयं कवि के शब्दों मे—

छप्पय

'पीतल एक पछांण, जाण घट लोटा झारी।
लोह एक गिण लेह, कसी समसेर कटारी।
म्रतका एक प्रमाण, कुंडाली कूडी कूडा।
जलहि एक कर जोय, उदध तरगा कुछ ऊडा।
इण तरै रूप दीसै अनंत, औरू वुस्त अनेक है।
वेदत 'चिमन' कहियौ विवध, एकोइ रूप अलेख है ॥'

अंत मे कवि षट्मत के विविध सिद्धान्तों की आलोचना करता हुआ कहता है कि इनका अन्तिम लक्ष्य तो एक ही है, जैसे:—

दोहा

'षट्मत यू ही खटपटै, कर कर वाद करूर।
ईसर सबको एक है, जाणत वेद जरूर ॥'

इस प्रकार कवि ने इस ग्रन्थ मे भारतीय दर्शन के स्तम्भस्वरूपी षट्मत के प्रमुख धर्मों का उल्लेख बड़ी स्पष्टता से किया है।

(ग) स्तुति-काव्य.—

श्री चिमनजी कविया पर भारतीय सस्कृति की पूरी छाप थी। यही कारण था कि उनमे भक्ति भावना एव आस्तिकता कूट-कूट कर भरी हुई थी। चाहे उनका ग्रन्थ प्रशस्ति-काव्य हो या ऐतिहासिक, किसी न किसी पावन प्रसग मे स्वय अथवा किसी पात्र के मुख से कवि ने देवी-देवताओं की स्तुति तो करवा ही दी। 'सोढायण' मे युद्ध के अद्भुत दृश्यो के बीच-बीच मे श्री देवलबाई एव माल्हणदेवी जैसी चारणी शक्तियों का स्तव-गान सुनाई पड़ता है, तथा पियोरा पीर के छदो की मधुर झकृति भी अपना विशेष स्थान रखती है। मंगलाचरण, आशीष तथा पात्र की विकट परिस्थिति आदि प्रसगो मे तो स्तुति-गान निश्चित रूप से मिलेगा ही, किन्तु कविवर श्री चिमनजी ने स्वतत्र रूप से भी कुछ स्तुति-काव्यों की रचना की है। छोटे-छोटे ४-५ स्तुति-काव्य तो प्राप्त भी हुए हैं, जो कवि की आस्तिक प्रकृति, प्रकाण्ड पांडित्य तथा कमनीय कवित्व के सूचक हैं।

श्री चिमनजी कविया ने राजस्थान के पश्चिमी भाग तथा सिन्धु-प्रदेश मे जन्मे कुछ ऐसे दिव्य पुरुषो का स्तुति-काव्य रचा है, जो राजस्थान तथा सिंध मे तो जन्मे, किन्तु भारत भर की पिछड़ी जातियो द्वारा देवता अथवा पीर के रूप मे पूजे जाते हैं। इनमे रामदेव मल्लिनाथ, पाबूजी, पिछमीपीर जमियल्लशाह आदि मुख्य हैं। श्री चिमन कवि ने निम्न-लिखित कृतियां ऐसी रची हैं, जिन्हें स्तुति-काव्य माना जा सकता है:—

१. रांमदे-चरित
२. सनीसरजी रा छद
३. पिछमी पीर रा छद
४ गुमान भारती री वेल

१. (क) रांमदे-चरित

पश्चिमी राजस्थान मे पोकरण के पास रूणेचा नामक गांव मे श्री रामदेव बाबा (जन्म स० १४६६ वि०—समाधि स० १५१५ वि०) का मन्दिर बना हुआ है, जहां उन्होंने जीवित समाधि ली थी। इस मन्दिर मे श्री रामदेवजी के 'पगलिये' तथा उनके पवित्र स्थल के दर्शनार्थ प्रति वर्ष हजारों यात्रीगण दूर-दूर से आया करते हैं। भाद्रपद शुक्ला द्वितीया से एकादशी तक बड़ा भारी मेला लगता है। वर्ष भर मे माघ एव भाद्रपद दोनों महीनों के शुक्ल पक्ष मे यह मेला लगता है। श्री रामदेवजी को हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही समान रूप से पूजते हैं, अत इन्हें 'रामसापीर' भी कहा जाता है। इनकी चमत्कारपूर्ण जीवनी का श्री चिमनजी कवियां ने एक छोटा-सा स्तुति काव्य रचा था। यह ग्रंथ आंशिक रूप मे ही उपलब्ध हो सका है। मगलाचरण के आगे सर्वप्रथम दिल्लीपति तुवर रैणसी का वर्णन है। रैणसी का पुत्र अजयमाल हुआ, जिसके समय मे दिल्ली तुंवरों से छूट गई

थी। वह एक भक्तहृदय क्षत्रिय था, अतः अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को साथ लेकर द्वारिका जा पहुचा। वहाँ पर अजयमाल (अजमाल) को अपनी अटूट भक्ति के फलस्वरूप श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन प्राप्त हुए। भक्त द्वारा दु:खहरण करने की विनय सुन कर भगवान ने कहा—'जो इच्छा हो सो मांग'। इस पर निःसतान अजयमाल ने पुत्र की कामना प्रकट की।

भगवान ने अजमाल के घर पुत्र रूप मे स्वयं अवतार लेने की बात कहते हुए 'रूरोचा' पर राज्य स्थापन का वरदान भी दे दिया। मनोवांछित वरदान प्राप्त कर अजमालजी मारवाड़ मे मालानी के राव मल्लिनाथ के पास पहुँचा और गुजारे के लिये कुछ भूमि मांगी। राव मल्लिनाथ ने पोकरण के पास की वह धरती इनायत की, जहाँ भैरव नामक नरभक्षी राक्षस रहा करता था और वह भूमि भय के आतंक से सर्वथा निर्जन व उजाड पडी हुई थी। श्री अजमालजी ने उस भय-स्थल पर पहुँच कर अपने आराध्य भगवान श्रीकृष्ण के नाम की एक कार (रेखा) खींची और अपने परिवार को भयमुक्त बनाया। सच्चे हृदय से ईश्वर का गुणगान करते हुए जीवन के दिन व्यतीत कर रहे थे कि ईश्वर के अनुग्रह से उनके पालने मे रामदेव बालक का जन्म हुआ। उस शुभ वेला की पावन घडियो मे विभिन्न प्रकार के आनन्दोत्सव मनाये गये। श्री रामदेव ने बचपन मे ही कई चमत्कार दिखाये थे। पालने से उतर कर आँगन मे चले, तो उनके पीछे कुंकुम के पगलिये (पद-चिह्न) मड गये। इसी प्रकार उनकी माता के द्वारा चूल्हे पर दूध का बर्तन रखा हुआ था और सहसा वह दूध उफनने लगा, तो इन्होंने बर्तन की कोर पर आये हुए दूध को रोक दिया। वह दूध न तो उफन सका और न पुन. नीचे बैठा, जिसके फलस्वरूप अधभरा बर्तन पूरा भर कर रह गया। एक दिन बालक रामदेव गेंद खेलता हुआ पोकरण से कुछ दूर एक पहाड़ी पर बालनाथ नामक योगीश्वर के पास जा पहुँचा। बालनाथ द्वारा पूछे गये परिचय का उत्तर देने के साथ ही रामदेव ने शिष्य बन कर बाबा के पास रहने का मन्तव्य प्रकट किया। श्री बालनाथ सिद्ध ने कहा कि वहां एक नरभक्षी राक्षस रहता है, अतः उस (रामदेव) का रहना खतरे से खाली नहीं। इस पर रामदेव ने कहा कि वह किसी राक्षस या छलछिद्र से डरने वाला अथवा घबरा कर पीठ फेरने वाला बालक नहीं है। इतना कह कर बालक रामदेव बालनाथ सिद्ध की चादर ओढ़ कर वहीं सो गया। उसी समय वह राक्षस भी वहाँ आ पहुँचा। यह कथा यहीं तक चली और आगे का काव्यांश प्राप्त नहीं हो सका। सरल व सुबोध भाषा में रचित 'रामदे-चरित' की कविता का नमूना इस प्रकार है—

दोहा

'सुध बुध दीजे सुरसती, अंचर उकत उदार।
दीया परचा रामदे, वरणू ग्रन्थ विचार ॥१॥

छंद पद्धरी

सुरसनो मात कर सुप्रमान।
गुणपती देव विद्या निधान।

ईसरी दान दीजे उकत्त।
पढ नांम लेउ त्रिभुवन्नपत्त ॥१॥
रैंणसी पातसा दिली राज।
महपती तपै साजा समाज।
धिन धिन्न तुवर कुल् तणा ध्रम्म।
जिण घरे रामदे लै जलम्म ॥२॥
रिणसी सुत अजमल वस रूप।
पौह दिली छूट कर कूच भूप।
गज बाज सुभट के तूल अग्र।
निज गयौ तुवर द्वारा सु नग्र ॥३॥
वप हेत धार भगती विसन्न।
कर मैहर दीध दरसण किसन्न।
भड अजन कयौ मो दुक्ख भाग।
महाराज कयौ मुख माग माग ॥४॥

अजमालोवाच—

अजमाल तुवर कै "मैं अहूत।
परसिया तूज पग अवे पूत"।

भगवांनोवाच—

मुख वचन भाखिया चट मुरार।
"तुज घरे जागसी अवत्तार" ॥५॥
हर प्रसन होय दीधौ हुकम्म।
तद कयौ रुणेचै राज तम्म।
घर पथ खडे लसकर सधीर।
आवियौ देस मिणियर अमीर ॥६॥
मिणियर धर पूगत रावमाल।
मिल्वा तद आयौ अजैमाल।
गाढैस हेत मिल् भीड गात।
तद समाचार कैह कुस्सलात ॥७॥
अजमाल भोम मांगीस आय।
राठौड़ मुज्ज धरती दिराय।

सुरियन्द माल कमधजा सूर।
जिण भोम पोकरण दी जरूर ॥८॥
उज्जाड भाय राकस अमाम।
नह कोय जीव पखीस नांम।
तिण ठौड गुफा भैरव दईत।
नित नित्त हीण करहै अनीत ॥९॥
वीरधै गउ अरु मीन व्रिद्ध।
गैणाग भमत छोडै न ग्रिद्ध।
कीनीस जहा अजमल पुकार।
मो वचन पाल क्रिस्सन मुरार ॥१०॥
द्वारकापती रिणछोड़ देव।
सुर नाग मानवी करत सेव।
राकसा निकन्दण चित विचार।
तुवरा घर लेसी अवत्तार ॥११॥
जोधार निसचरा करण जेर।
महाराज अवतरै कासमेर।
सुभ नखत वार वेंला सुजग।
अजमाल घरे वाधै उमंग ॥१२॥
जलम्यै जद वीरम कुल उजाल।
थित अणद वाजिया किनक थाल।
सुभियाण दैत भाजण सरीर।
पौढिया पालणै आय पीर ॥१३॥
सूता सु पालणै धार सुक्ख।
दुनियान तणा मेटवा दुक्ख।
दीठौ सु रांम उफणत दुध्ध।
सू दियौ प्रथम परचौ क' सिध्ध ॥१४॥
पगलिया माड कुकुम्म पीर।
सोव्रन्न रूप दीसत सरीर।
मन हरख होय दीठौ सु मात।
निज कवर आप त्रभुवन्न नाथ ॥१५॥

सुत अजन साथिया सग सांम।
रामत्त दड़ी खेलत राम।
जपतौ जोगेसुर ध्यान जाप।
आवियौ रमतौ रांम आप ॥१६॥
सिधराज पयपै वचन सून।
कहियौ सिध बच्चा तुमह कून।
कर जोड करे नेमस्सकार।
कहियौ मैं अजमलसुत कवार ॥१७॥
महाराज करौ चेलौ स मोय।
तौ करू बदगी टैल तोय।
जोगेसुर कहिया वचन जोड़।
इह ठौड दैत रहसै अरोड ॥१८॥
तेंह दैत भक्खे जावेस तोय।
मरावै केम बच्चास मोय।
हर कहियौ मोनै डर न होय।
महाराज बीह उपजे न मोय ॥१९॥
प्रेतांण निरख फेरू न पीठ।
डरपू न कोय छल छिद्र दीठ।
सूतौ सिध आसण कथा सोड़।
इत्तैक दैत आयौ अरोड़ ॥२०॥

(ख) व्याहलो

महाकवि श्री चिमनजी कविया ने 'रांमदे-चरित' के अतिरिक्त एक रामदेवजी का 'व्याहलो' भी रचा था, जिसकी खडित प्रति स्वयं कवि के हाथ से लिखित प्राप्त हुई हैं। श्री रामदेवजी की जीवनी के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को दो-दो चार-चार दोहों में चित्रित करने के पश्चात् गेय पद के रूप मे व्याहलो की रचना की गई है। प्रथम पर्व मे श्री रामदेवजी के विवाह का वर्णन करते हुए पूर्व जन्म की प्रीति का उल्लेख किया गया है। प्रथम पर्व का एक ही दोहा उपलब्ध हुआ है, यथा.—

दोहा

'हुसी सगाई हेत सू, पूरब वाली प्रीत।
रांमकवर परणीजसी, राजवस छक रीत ॥१॥'

दूसरे पर्व मे 'तुरी खेलवै ताकडा' का दृश्य प्रस्तुत करते हुए बारात की तैयारी मे उद्यत घोडो की घूमर का वर्णन है। तीसरे पर्व मे घोडों की जातियां, आकृति व जोश का प्रदर्शन करते हुए कवि ने अत्यत ओजस्वी वर्णन किया है, जैसे —

दोहा

'हैवर के वर्ग हुवा, खास ˙˙र खुरसाण।
धाटी काछी धसलता, कोडीधज केकाण ॥१॥
करडा हरडा कागडा, माणक मजीठल मोर।
गुरडा सेरडा रुणगता, चचल वडा चकोर ॥२॥'

आगे एक दोहे मे कवि अपनी श्रद्धा व प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ कहता है कि: —

दोहा

'घुरै दमामा भेर घण, निज फरकै नीसाण।
'चिमन' पात कीरत चवै, वाचै वीद वखाण ॥१॥

इसके पश्चात् रामदेवजी का दूल्हा के रूप मे तोरण पर जाते समय का चारु-चित्रण चतुर्थ पर्व मे किया गया है। स्वय कवि के शब्दो मे: —

दोहा

'तोरण आगल तेडिया, मिलिया थट घमसाण।
रामकवर दीसै रती, झलहल ऊगा भाण ॥१॥
मीठौ कठ महेलिया, गावै मगल गीत।
निरखै रामै कवर ना, ऊगा वारै अदीत ॥२॥'

इसके पश्चात् कवि कहता है कि इस अनुपम विवाह मे स्वर्णिम एव जवाहरात के नगीने न्यौछावर किये गये। पावन पाणिग्रहण की प्रशस्त प्रभा को अवलोकित करने के लिये दुनियां उमड पडी। इसी भाव की रगीन झांकी एक दोहे मे विशेष द्रष्टव्य है, यथा: —

'कडा किलगी कठिया, निछरावल व्है नग्ग।
वणियै सोवर्न व्याव ना, जोवण आयौ जुग्ग ॥१॥'

इससे आगे भजन की तर्ज में 'व्याहलो' है, जिसमे विवाह के प्रसंग से लेकर वैशाख शुक्ला ३ के दिन रामदेवजी के लग्न तक का सुन्दर वर्णन है। 'व्याहलो' की टेर 'सिमरथ' शब्द से प्रारम्भ होती है, किन्तु पूर्ण पक्ति नहीं मिलने से केवल प्रथम शब्द से ही सन्तोष करना पडता है। बीच-बीच मे जहाँ भी पूर्ण पक्तियां मिलीं, उन्हे एकत्रित कर ली गई हैं। रामदेवजी एव उनकी धर्मपत्नी नेतल के बीच जन्म-जन्मान्तर के प्रेम-सम्बन्ध का सम्पूर्णत चित्रण मिल गया है। उदाहरणार्थ नेतल के कथनस्वरूप कुछ दोहले द्रष्टव्य हैं. —

'धरती आभ कछू नां हूता, पाणी पवन पसारा।
आद सगत मैं हुती उवै दिन, राम पुरस ततसारा ॥१॥
सतजुग थपियौ विसनू सामी, आप जगत मे आयौ।
हू अरधग्या जिण दिन हुत्ती, कमला नाम कहायौ ॥२॥
रामचद दसरथ राजा सुत, तेताजुग अवतारा।
जिनक घरे हू सीता जलमी, राम कथ सुपियारा ॥३॥
कुल जादव मे किसन कहाणा, द्वापर माय उदारा।
हू भीसमक राजा धी हूंती, रुकमण नाम हमारा ॥४॥
राजा सुणे हुवौ मन राजी, परखे वात पछाणी।
तुवर सगा सदाई तीखा, पौढोराज प्रमांणी ॥५॥
पूछी वात भाया परधाना, जोसी वैग बुलायौ।
सोनी तेड नालेर सोवना, मौहरा पात मढायौ ॥६॥
कुल घर जोसी कर ताकीदं, सूधै पथ सिधावौ।
मौहरत जाय चढो वड मैंगल, सैहर पोकरण जावौ ॥७॥
लाख भलामण कागद लिखिया, सुद वैसाखा सावौ।
तुवर पधारै तीज तणौ दिन, इद छटा विण आवौ ॥८॥'

उपर्युक्त पक्तियों मे बाबा रामदेवजी की धर्मपत्नी नेतल कहती है कि सर्वप्रथम रामदेवजी पुरुष रूप मे प्रकट हुए थे, तब वह प्रकृति के रूप मे थी। सतयुग में विष्णु-अवतार के साथ लक्ष्मी तथा त्रेतायुग मे राम के साथ सीता बनकर अवतरित हुई थी। द्वापर युग मे श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी तथा कलियुग मे रामदेवजी के साथ नेतल बनकर प्रकट हुई है। इस प्रकार इस दम्पत्ति का भव-भवान्तर का अटूट प्रेम-सम्बन्ध है। यह बात नेतल के पिता (उमरकोट के स्वामी) को मालूम हुई, तो उन्होंने सहर्ष एव शीघ्रातिशीघ्र स्वर्णपात मे नारियल मढ़ा कर लग्न तय करने के लिये पडित को पोकरण की ओर विदा किया। वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन लगन का मुहूर्त निश्चित हुआ। इस पावन दिवस की प्रसन्नता के उपलक्ष मे देवराज इन्द्र भी उमडते-घुमडते बादलों की घटा से सज-धज कर वातावरण को सुखद एवं सुभग बनाने लग गया।

इस प्रकार श्री रामदेवजी की स्तुति व गुणगान से युक्त कवि की दो-तीन खण्डित प्रतियों से ही उनकी भक्ति तथा काव्य-प्रतिभा का भान हो जाता है।

२. सनीसरजी रा छंद

कविवर श्री चिमनजी कविया ने शनिश्चर की महिमा मे एक छोटा-सा स्तुति-काव्य रचा था, जिसको येनकेनप्रकारेण एकत्रित करने की चेष्टा की है। मगलाचरण के दोहे के

पश्चात् अलकृत भाषा के 'रोमकद' छंदो मे श्री शनिश्चर देव की अतुल महिमा का स्तवगान किया गया है। प्राय: सभी देवी-देवता, यती-सती आदि के सप्रभु रूप में श्री शनिश्चर देव को चित्रित किया गया है। इन छदो मे कवि का दृष्टिकोण इतना विशाल बन गया है कि वह शनिश्चर को ब्रह्मस्वरूप ईश्वर का प्रतिरूप ही मान बैठा है। विश्व मे जितने पदार्थ एव प्रतिक्रियाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, उन सब मे सचालन-शक्ति भगवान शनिश्चर की ही मानी है। विश्व-व्यापार की विस्तृत सूचिका के माध्यम से सृष्टि के समस्त प्राणी, ब्रह्मा, विष्णु एव महेश तथा सूर्यादि सभी देव अहर्निश शनिश्चर का ही ध्यान करते हुए चित्रित किये गये हैं। छन्दो के पश्चात् छप्पयों मे शनिश्चर की कृपा के प्रसाद स्वरूप जगत मे अनेक व्यक्ति सुख-समृद्धि को प्राप्त हुए, इसकी चर्चा है। आगे एक 'वेलियो' गीत के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, नव लाख शक्तियाँ, बावन वीर, चौरासी सिद्ध, सात समुद्र, नौ सौ निन्यानवे नदियाँ, चांद, तारे, पृथ्वी, आकाश, नर, नाग, पक्षी आदि चराचरों की सम्पूर्ण सृष्टि को देवाधिदेव शनिश्चर का जाप जपते हुए बताया है। अन्त मे कवि शनिश्चरदेव की अतुल एव अमोघ शक्ति का उद्घाटन करते हुए कहता है कि जो व्यक्ति उन्हे जपता रहेगा, उसे सदैव शान्ति मिलती रहेगी और जो उन्हे हृदय से भुलायेगा, वह व्यक्ति पछतायेगा। इस प्रकार कवि ने अपने रक्षण तथा अमन-चैन की कामना से शनिश्चर भगवान की बहुत सुन्दर महिमा गाई है। शनिश्चर-महिमा के छन्दों का आकार बहुत बडा न होने के कारण उन्हे अविकल रूप से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, यथा:—

सनोसरजो रा छन्द

दोहा

सिव सुत वरदायक सदा, गणनायक गणपत्त।
देव सुभक्खर दीजिये, सुध बाणी सुरसत्त ॥१॥

छन्द रोमकन्द

सिमरू सुरसत्तिय आद सगत्तिय, हस चढत्तिय वीण हथूं।
गरवा गणपत्तिय दीध जुगत्तिय, कीध उकत्तिय नाम कथू।
प्रभणा सुरपत्तिय गोरख जत्तिय, सत्तिय नाम सदा सिमर।
किरणाल दिनकर सेवत सकर, आप सनीसर ईसवरं ॥१॥
पहला सब पत्तिय नाद नमत्तिय, आद सगत्तिय ऊपजिया।
गुण तीन गिणत्तिय तत उमैतिय, पाच प्रकत्तिय पूजविया।
घर आभ धरत्तिय थाप थिरत्तिय, नाग देवत्तिय कीध नर।
किरणाल दिनकर सेवत सकर................................ ॥२॥
सुरलोक मडाणिय पव्वन पाणिय, च्यारू खाणिय तेण रचे।
नवदूण पुराणिय व्याकरण बाणिय, वेद चत्राणिय जेण वचे।

ब्रह्मा ब्रहमाणिय रुद्र रुद्रांणिय, अलख वाणिय है अजर।
किरणाल् दिनकर सेवत सकर .... ॥३॥
केई किवलासिय हेत हुलासिय, जोग अभ्यासिय नाम जपै।
प्रम ग्यान पियासिय रिक्ख अठ्यासिय, तेम चौरासिय सिद्ध नपै।
नवनिद्ध निवासिय पूरण आसिय, वासिय वैकुंठ जेण वर।
किरणाल दिनकर सेवत संकर.. ॥४॥
सब देव सुरेसुर मुन्न महेसर, पूज प्रमेसर पाय पडै।
जिख रिक्ख जडाधर सिद्ध सिधेसर, झाट त्रिये जुर ताप झडै।
अवतारिय अम्मर वीर विसम्भर, कीत कवेसुर जाष कर।
किरणाल दिनकर सेवत सकर.. ॥५॥
निरभै रिव नदण दैत निकदण, सै जग वदण वात सही।
जप जाप जणोजण ग्यांन कथै गण, आद भजै सुण नाम अही।
घमसाण लियां घण ग्रेह नवे गण, कोपेय खमख्य नास कर।
किरणाल् दिनंकर सेवत सकर.. ॥६॥
अमरा पत इदाय देव दिनदाय, कीरत चदाय मोल् कला।
फुणपत्त फुणदाय नाथ नरदाय, और भणदाय आभ इला।
पिपलाद मुनदाय राखत छन्दाय, ग्यान कथदाय ध्यान घर।
किरणाल दिनकर सेवत सकर.. ॥७॥
लंकापत लाइय ग्रेह बधाइय, कस्ट दिराइय कोप किया।
भजिया मन भाइय होत सिहाइय, दीन दिखाइय छोड दिया।
लख फौज लडाइय लक लगाइय, पाज बधाइय दद्ध पर।
किरणाल दिनकर सेवत सकर.. ॥८॥
उज्जीण धराजाय बीकम राजाय, कोप अकाजाय जेण कियौ।
भमियौ वन काजाय संग न साजाय, लाख विखाजाय अत लियौ।
भ्रमनौ भुज भाजाय साप्रत साजाय, कोध दयाजाय राज करं।
किरणाल् दिनकर सेवत सकर.. ॥९॥
ऐहडो अजरारिय है अवतारिय, कस्ण मुरारिय वान कहू।
चुहनौ छत्रधारिय गेह मजारिय, सै त्रपुरारिय साम सहू।
तोहरी बलिहारिय दास तुमारिय, साम हमारिय स्याय कर।
किरणाल दिनकर सेवत सकर.. ॥१०॥

आदीत अर्णकल सोम निरमल, मानत मगल तूझ मया।
सुकरा बुध सब्बल है गुर सीतल, देख चहू वल तूझ दया।
केत राहु सकोमल वदत विम्लम, रीजैय प्रघ्वल राजेसुर।
किरणाल दिनकर सेवत सकर, आप सनीसर ईसवर।
जी आप सनीसर ईसवर ।।११।।

छप्पय

राजेसुर सनिराय, करौ नित स्याय कवेसा।
राजेसुर सनिराय, कृपा कर हरौ कलेसा।
राजेसुर सनिराय, दाय थारी वड दाता।
राजेसुर सनिराय, स्याय कीजे सुख साता।
त्रिय लोक माय दोसै तुंहिज, नीच ऊच निरवाणिया।
सनिराय आप देवा सिरै, व्रम रूप वाखाणिया ।।१।।
रीज छनोछर राय, राम वनवास कटायौ।
रीज छनीछर राय, राज अजुध्या रघु पायौ।
रीज छनीछर राय, ध्रूह द्रढ राजस थप्पे।
रीज छनीछर राय, लक वभ्भीखरा अप्पे।
रविनद सनी राजेसुवर, मनत करू बुध मदता।
कर जोड 'चिमन' कवियौ कहै, विगन हरौ पग वदता ।।२।।

दोहा

हरी व्रम सकट हरौ, सदा करौ नित स्याय।
चारण 'चिमनीदान' री, रछ्या कर सनिराय ।।१।।

गीत

व्रमा सिव माधौ चरण तुज वदै, सातूं समद करै नित सेव।
नवसौ अनै निनाणू नदिया, दाखै सुजस छनीछर देव ।।१।।
गोरखनाथ जल धर गावै, रिख मानव सिमरै दिन रात।
वावन वीर सुपारस बोलै, गुण नवलाख सगतिया गात ।।२।।
सिध चौरासी करै नित सोभा, नित प्रभुता बोलै नवनाथ।
दिणयर सुतन तास री निसदिन, तरवर गिरद न मेलै ताथ ।।३।।

पंखी सरप गणेस गणपत, सह धरती असमान समेत।
भूपत विसन तूझ पद भेटै, नारद नखत अनै निसनेत ॥४॥
सेवा करै जकां रौ साथी, भजै नही ज्यां रै सिर भार।
थाप उथाप करण जुग थाहर, तू जगदीस तणौ अवतार ॥५॥

३. पिछमी पीर रा छंद

श्री चिमनजी कविया ने सं० १६३३ से १६३५ तक थाट एव पारकर जिलो में खूब भ्रमण किया था, ऐसा अन्तः साक्ष्य के आधार पर प्रकट होता है। सिंध के ऐतिहासिक शहर उमरकोट से लेकर कराची तक आये हुए प्राय सभी महत्वपूर्ण स्थानो की यात्रा यह कवि कर चुका था। जहां जिस तत्व ने इनके हृदय को अधिक प्रभावित किया, वहां उन्होंने हृदयगत ऊर्मियो को काव्यबद्ध कर दिया। हैदराबाद (सिंध) के निकट 'रोडी-शक्खर' एव 'कळाघर' नामक बड़े प्रसिद्ध एव पावन स्थल हैं, जहां अनेक दैविक विभूतियां अविर्भूत हो चुकी है। श्री जमियल्लशाह नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध करामाती पीर रोडी-शक्खर के निकट हो चुका है, जिसे हिन्दू एव मुसलमान दोनो ही समान रूप से अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूजते हैं। बाबा रामदेवजी को जिस प्रकार 'रामशाह पीर' कह कर हिन्दू एव मुसलमान दोनो पूजते हैं, उसी प्रकार 'पिछमीर पीर' अर्थात् पश्चिम के पीर जमियल्लशाह का भी जन-समूह अगाध भक्ति-भाव से पूजन करता है। जब श्री चिमनजी ने उस सुरम्य स्थल को देखा तो, उनके आस्तिक हृदय मे बडे सात्विक भाव जगे तथा उन्होने उस उल्लसित हिलोर को सुन्दरतम छंदों मे बद्ध कर सर्वजनहिताय बना दिया। मगलाचरण की एक गाथा से स्तुति-काव्य का आरम्भ होकर ८ त्रिभगी छंदों मे लगभग उसी प्रकार जमियल्लशाह पीर की महिमा गाई है, जिस प्रकार शनिश्चरदेव की। इस चमत्कारी पीर को 'अणघड अल्ला' कह कर कवि ने साक्षात् ईश्वर का ही रूप माना है। 'कूड' एव 'काम' से परे इस परमज्ञानी महापुरुष के मुह से कहीं तो राम का स्मरण कराया है, तो कहीं नबी व पैगबरो का। इस प्रकार जगत के कुत्सित भेद-भावो एव साम्प्रदायिकता से परे हृदय की उन्मुक्त एव उच्चतम अवस्था में यह स्तुति-काव्य रचा गया प्रतीत होता है। आगे एक छप्पय था, जिसका खडित रूप ही प्राप्त हुआ है। इसमे कवि के अरबी, फारसी शब्दो के ज्ञान का परिचय मिलता है, जैसे —

दोहा

'अला इलल्ला आप, आप जग सोय उपाए।
अली हजरत आप, आप जुग नाम जपाए ॥'

इसके पश्चात् ३ दोहे व ६ 'रोमकन्द' जाति के छन्द व एक छप्पय मे डिंगल-काव्य का प्रतिनिधित्व करने वाली स्तुति है। 'पीर वडौ पिछमाण पती' की ध्वनि से पूरित प्रत्येक छन्द 'खाखंबर बेशधारी' पीर की सुखद स्तुति से ओतप्रोत है। स्थान की पावनता, चमत्कारों की अलौकिकता, वर्णनों की विशदता एव कल्पना की कमनीयता से परिपूर्ण इस

अलंकृत लघु स्तव-काव्य को काव्य-प्रेमियों की आत्म-तुष्टि हेतु प्रायः ज्यों का त्यों नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:—

पिछमी पीर रा छन्द

गाथा

आद पुरस ऊंकार इकल्ला।
प्रणमा सकर देव पैहल्ला।
मानू पीर वडौ विसमल्ला।
जोगी आद नमो जमियल्ला ॥१॥

छद त्रिभंगी

मानू विसमल्ला जोग जलल्ला, सुध बुध भल्ला दै सल्ला।
वाखाण वचल्ला कायम कल्ला, ग्यान गहल्ला दिढ गल्ला।
हाकल सुण हल्ला आव वैहल्ला, पाल कसल्ला दुख पल्ला।
जोगो जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड अल्ला ईलल्ला।
जी अणघड अल्ला ईलल्ला ॥१॥
धरणी नां धार अभ आकार, नवलख तार ना हंता।
दिनकर देदार सस भी सार, वेद चियार नां वता।
अवनी अधार धधूकार, झैल न भार मिणझल्ला।
जोगी जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड अल्ला ईलल्ला ॥२॥
तीने गुण तत्त पाच प्रकत्त मा इक भूत मूरत्त।
ओहूं कर अत्त सोहूं सत्त, आद सगत्त उतपत्तं।
सायर भी मत्त सबै सिलत्त, लख परवत्त कर सल्ला।
जोगी जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड अल्ला ईलल्ला ॥३॥
ऊपन्नो आप माय न वाप, पुन्न न पाप परचडा।
अणभे आलाप थै धर थाप, मेर अमाप ब्रहमण्डा।
जप्पै घण जाप मान मुखाप, तोनू ताप मिटतल्ला।
जोगी जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड अल्ला ईलल्ला ॥४॥
नब्बी पढ नाम तजै तमाम, मान इमाम मतवाला।
मिमरै सब साम आठूं जाम, मन हुलसाम गहमाला।
रट्टै गुण राम कूड न कामं, पिच्छम धाम परचल्ला।
जोगी जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड अल्ला ईलल्ला ॥५॥

जालन्धर नत्थं गोरख सत्थ, द्वादस पत्थ दीपन्नू।
आपै नित अत्थ भर भर बत्थ, करण समत्थ कवजन्नू।
हैवर दै हत्थ ग्यान गरत्थ, आपौ जत्थ एकल्ला।
जोगो जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड अल्ला ईलल्ला ॥६॥
.... ।
... . ।
. ... ।
जोगी जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड़ अल्ला ईलल्ला ॥७॥
नीपज्जै नूर जोग जरूर, पौरस पूरं अणपार।
हाजर हज्जूर वाजै तूर, तप आकूर अवतार।
सेवा कर सूर दालद दूर, नित्त हजूर 'चिमनल्ला'।
जोगी जमियल्ला भ्यासै भल्ला, अणघड अल्ला ईलल्ला ॥८॥

दोहा

सिध सामी जमियल्लसा, गुण घण जाण गहीर।
टकर धणी दुख टालणौ, पिछम तणौ गुर पीर ॥१॥
गिर तरवर झगर गहर, नदिया निज्झर नीर।
परमेसर पूरौ पुरस, सामी सिखर सधीर ॥२॥
वाघबर आसण वणौ, जम डबर जोगेस।
धिन तापै सिक्खर धणी, वण खाखंबर वेस ॥३॥

छंद रोमकंद

खाखबर वेस वणौ हद खाखिय, साखिय सूरज चंद सदा।
रहमाण प्रमाण कला दिढ राखिय, वाण मुखाखिय आप वदा।
घमसांण लिया सिध पाखिय घूमर, वार अढार वनासपती।
दुनियांण दिवाण लखा पर दाताय, पीर वडौ पिछमाण पती ॥१॥
हद वेगच वेस लिया हक हिन्दुअ, कोरत देस महेस कला।
तपधार मुनेस भूतेस तराजैय, वेस जोगेस किया विमला।
ललकेस फुणाधर सेस लपेटाय, सोभत वेस किया सगती।
दुनियाण दिवाण लखा पर दाताय, पीर वडौ पिछमाण पती ॥२॥
गिर झगरं पूर तरव्वर गूजैय, जग अघोफर नीर झरं।
चरसाल तणी विध डवर वाजैय, केहर जोर अवाज करै।

नर देव ग्रहीसुर नारद नाचैय, ग्रच्छर राग करै उकती।
दुनियाण दिवाण लखा पर दाताय, पीर वडौ पिछमाणो पती ॥३॥
जडधार जोधार उधार सबै जग, लार हजार तपेस लिया।
ललकार ग्रपार ग्रलेखत चेलाय, कार लगार सबद्द किया।
हलकार हुंकार भडाधर हालैय, लार जमात पगा ललती।
दुनियाण दिवाण लखा पर दाताय, पीर वडौ पिछमाण पती ॥४॥
....।
....।
....।
दुनियाण दिवाण लखा पर दाताय, पीर वडौ पिछमाण पती ॥५॥
मलिनाथ तुहीज तुही सिध जैमल, धोरमनाथ तुहीज धडै।
भजडौ तपधारस हाडि भिड़गम, कथड गोदड तेज कड़ै।
जडधार दातार जलन्धर जोगिय, जूनौय गोरख देव जती।
दुनियाण दिवाण लखा पर दाताय, पीर वडौ पिछमाण पती ॥६॥

छप्पय

'तुही देव दातार, तुही गोरख माछन्द्री।
तुही जलन्धरनाथ, काम जीतौ दस इन्द्री।
दत्तात्री ग्रवतार, सेव ससार सदाई।
सै तू जमियलसाह, मदत राखे पिछमाई।
सुलताण पठै गोगै सहत, तू लख चेला तारणा।
कर जोड 'चिमन' कवियौ कहै, चिन्ता मेटे चारणा' ॥१॥

(८) गुमानभारती री वेल

जैसा कि ग्रालोच्य कवि की जीवनी से ज्ञात होता है कि श्री चिमनजी कविया ने जीवन के ग्रतिम वर्ष जोधपुर जिले की शेरगढ़ तहसील के गडा नामक गाँव मे बिताये थे। कवि पर नाथ-पन्थ का प्रभाव तो था ही ग्रौर साथ ही वे एक बार 'स्वामी भेष' भी धारण कर चुके थे। इन कारणों मे स्वभावत उनकी प्रवृत्ति स्वामी-पथ के सुप्रसिद्ध सिद्धो व नाथों की ग्राराधना व स्तुति मे सवृद्ध होती गई। गडा गाँव मे श्री गुमानभारती नामक एक सिद्ध बाबा की जीवित-समाधि है। बाबा की चमत्कारपूर्ण गाथाग्रो मे वहाँ के जन-समुदाय का ग्रटूट विश्वास देख कर कवि के हृदय पर भी उसका प्रभाव पड़ा ग्रौर उन्हो एक 'वेल' रच डाली। सभव है कि वह 'वेल' ग्रामीण जनता के ग्रनुरोध पर ही लिखी गई हो।

सिद्ध बाबा गुमानभारती का समय १८ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। कुल ४४ दोहलों मे रचित इस स्तुति-प्रधान 'वेल' के अनुसार बाबा गुमानभारती का जीवन वृत इस प्रकार था—

श्री गुमानभारती पूर्व जन्म मे एक ब्राह्मण थे। वृद्धावस्था मे योग धारण कर उन्होंने खूब तपस्या की तथा मोह-माया को त्याग कर लोहगढ़ शहर मे आकर रहने लगे। जव ईश्वरीय विभूति के प्रकट होने पर हृदय मे ज्ञान का प्रकाश हो गया, तो वे जगद्-भ्रमण में निकल पड़े और घूघू नामक गांव (सभवत जयपुर राज्य में) आकर कुछ दिन ठहरे। उस गांव के तालाब की पाल पर धूनी रमाकर वह साधु भजन कर रहा था कि सयोग से गांव के कछवाहा गोत्र के ठाकुर का अनुज शिकार जाते समय उधर आ निकला। ठाकुर के छोटे भाई ने उस महात्मा को देख कर कुछ उपहास करना शुरू किया। साधु ने कहा— 'ठाकुर ! तुम नि.सतान हो और यदि ' महीने के पश्चात् तुम्हारे पुत्र हो जाय, तब तो जानना कि कोई साधु मिला था, वरना कुछ नहीं, मजाक तो है ही।" यह सुन कर ठाकुर कुछ गभीर हुआ और विनम्रता से बोला कि महाराज ! पहले भी दो महात्माओ ने ऐसा कहा था किन्तु आज तक तो कोई पुत्र हुआ नही—"दोय अतीथा वाचा दीना अजे कंवर नीं जाया"। महात्मा ने प्रत्युत्तर दिया— 'मैं अपना वचन सत्य करूगा और स्वय तेरे घर जन्म लूगा, किंतु १२ वर्ष तक तुम्हारे आंगन में खेलने के पश्चात् योग कमाने को सन्यास धारण कर लूगा।"

अपने वचन के अनुसार बाबा ने घूघू गाँव, कछवाहा गोत्र तथा हरीकुवर माता के उदर मे बालक के रूप मे जन्म लिया।

बालक के जन्मोत्सव की बधाइयां बंटने लगीं, मागलिक वाद्य बजने लगे तथा जैत नामक ज्योतिषी ने नक्षत्र आदि बता कर 'गुमान' नाम रखा। इस प्रकार आनद-मगल मे १२ वर्ष पूर्ण होने पर पूर्व-सुधि आई और माता-पिता को ज्ञान का उपदेश देकर योगी बन कर निकल पड़े।

तत्पश्चात् बाल-रूप मे श्री गुमानभारती जयपुर आये।। वहां पर परिक्रमा लगा कर गुरु को प्रणाम किया तथा लाल रग की ध्वजा फहराई। फिर दो महीनो तक गुरु के सान्निध्य मे रहे और विगत काल के वियोग की बातें एव कुशलक्षेम पूछी। इसके बाद मे गिरनार पर्वत पर जाकर ३ वर्ष तक कठोर तप किया। वहां पर गोरखनाथ सिद्ध की धूनी के निकट श्री गुमानभारती को दत्तात्रेय गुरु के दर्शन हुए। फिर गिरनार मे उतरकर आबू के पहाडों मे चले गये और वहां पर लगभग ११ वर्ष तक तपस्या की। अजपाजाप' जपता हुआ गुमानभारती बाबा जीवन मे एक बार फिर कुटुम्ब यात्रा के बहाने अपनी जन्म-भूमि गांव घूघू मे पहुँचे। वहाँ कुछ दिन तक ठहर कर पुन देशाटन मे रम गये और पश्चिमी राजस्थान मे शेरगढ (जोधपुर जिला) की ओर गडा नामक गांव मे जा पहुँचे। गडा की भोली जनता के स्वाभाविक बर्ताव ने बाबा के हृदय को स्पर्श किया फलस्वरूप वे वहाँ पर ठहर गये। उस गांव मे कुए का पानी अत्यन्त कडवा था, अत बाबा गुमानभारती ने अपने तपोबल एव दैविक-शक्ति से उसे मीठा बना दिया।

इस प्रकार बाबा गुमानभारती गडा गांव मे बड़े सतोष एवं सुख के साथ भजन करते हुए जीवनयापन कर रहे थे, कि सहसा वहाँ पर ८० साधुओ की एक जमात आ पहुँची। उन साधुओ ने बाबा को साधारण व्यक्ति समझकर ऊटपटांग उपहास करना शुरू कर दिया। अधिक तग आ जाने पर बाबा गुमानभारती ने अपना स्वरूप बदला और यकायक एक भीषण सिंह का रूप धारण कर लिया। बाबा की ऐसी करामात देखकर पूरी जमात भय के मारे थर्राने लगी और हाथ जोडकर गुमानभारती के आगे अनुनय-विनय करने लगी। बाबा का क्रोध शांत हुआ, तब वे पुनः पूर्व आकृति मे आये। जमात के महन्त श्री खेमनाथ ने गुमानभारती से करबद्ध क्षमा मांगी और मंडली लेकर आगे चलते बने। कुछ दिनो के पश्चात् साधुओं की एक टोली फिर आई, जिसमे ३५ सत-मूर्तियाँ थीं, उनके आग्रह पर बाबा गुमानभारती भी उन्हीं के साथ हिंगुलाज देवी की यात्रा के लिये रवाना हो गए। उस जमात मे स्वामी अमरगिरि अगुआ भी था, जिसके साथ श्री गुमानभारती ने 'सोहनमेडी' स्थान पर छडिया चढ़ाने का दस्तूर किया।

आगे आदिशक्ति श्री हिंगुलाज के पावन स्थल पर पहुँचने के बाद वहाँ के कुछ जगद्-प्रसिद्ध चमत्कार भी देखे। सूर्योदय से ५ घडी पूर्व आदिशक्ति का रथ आने से पहाड का गजना, देवी के चरणों मे पहने हुए नूपुरो की ध्वनि सुनाई पडना, रोमांच हो उठना आदि प्रमुख घटनाओ का उल्लेख है। इसके बाद अलिलकुड मे स्नान करना, परिक्रमा लगाना, आच्छा (इच्छा), बूट, कालिका आदि देवियो तथा महादेव आदि के यथाविधि पूजन का वर्णन है। श्री हिंगुलाज के दर्शन कर पुनः लौटते समय वहाँ से ८ कोस की दूरी पर 'उत्तरिये रण' नामक स्थान पर चीर-चूनडी आदि चढावा करने की परंपरागत रस्म अदा की और कुछ गौओं का दान भी किया। इसके पश्चात् कोटेश्वर मे भक्ति की छापें लगवा कर तथा गऊकोठे मे नहाकर कच्छ, गुजरात और मालवा को पार करते हुए पूर्व की धरती पर आने का उल्लेख है। नेपाल के महादेव को गोले चढाकर घूमते हुए बाबा श्री गुमानभारती पुन: पश्चिम की ओर मुड़े व शेरगढ के गडा नामक गाँव मे आ पहुचे, जहाँ ग्रामीण जनता ने उनका अत्यत भावभीना स्वागत किया।

गडा गांव मे पहुँच कर बाबा ने प्राचीन प्रथा के अनुसार साधु-सतो को बुलाकर द्वितीया व शनिवार के दिन 'जम्मा' (एक प्रकार का कीर्तनमय जागरण) दिराया। घर-घर मे हर्ष की बधाई व स्त्रियों के मागलिक गीतों की गूज उस दिन कुछ विशेष आकर्षक रही। इस आनदित वातावरण के बीच खिरजां गांव (गडा से दो कोस दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित) के एक निवासी को 'पीवना' सांप डस गया। सर्प-दंश से व्यक्ति का प्राणांत हो गया, तब उसके परिवार वालो ने बाबा को सिद्ध समझ कर चुपके-से उनके आंगन में मृतक को वस्त्र ओढाकर लेटा दिया। प्रभात वेला मे जब सभी व्यक्ति उठ उठ कर अपने घरों की तरफ जाने लगे, तो बाबा ने वस्त्र ओढे हुए उस व्यक्ति को भी आवाज दी। प्रत्युत्तर नहीं मिलने पर बाबा ने उस के मुँह से कपडा हटाया, तो मृतक देखकर सहसा स्तंभित रह गये। लोग समझेंगे कि बाबा ने कुछ कर दिया होगा, इस भय से श्री गुमानभारती ईश्वर की स्तुति मे लीन हो गये और मृतक को जीवन-दान देने हेतु समाधि मे रत हुए। ईश्वर ने बाबा की वाणी को सुना और वह मृतक पुनः जी उठा। यह बात जब लोगों को

ज्ञात हुई, तो सभी बड़े प्रसन्न हुए एव गुमानभारती बाबा के चरणो मे नतमस्तक होने लगे। बाबा ने जान लिया कि अब ससार मे जीना दुष्कर है, क्योकि कोई भी व्यक्ति मरेगा, तो लोग आकर बाबा के पास धरना दे देंगे। कुदरत के विरुद्ध सदैव जीत हो नहीं सकती, अत समाधि लेने का निश्चय किया। बुधवार एव षष्टमी तिथि के दिन बाबा ने गडा गाँव मे जीवित-समाधि ले ली। जीवराज नामक बाबा का एक प्रिय सेवक था, जिसे समाधि का पता नहीं लगा, अत वह विलाप एव पश्चाताप करता हुआ अत्यन्त रुदन करने लगा। तब बाबा ने उसे जीवित स्वरूप मे पुन दर्शन देकर संतुष्ट किया। हमारे कवि को भी बाबा के प्रति अटूट श्रद्धा व भक्ति थी तथा उन्हीं की कृपा से उन्हें 'अरणभै' ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस प्रकार गुमानभारती बाबा का सक्षिप्त जीवन-वृत्त था, जिसे कवि की 'वेल' के आधार पर चित्रित किया गया है।

कुल ४४ दोहलों में आवृत बाबा गुमानभारती की वेल इस प्रकार है:—

गुमानभारती री वेल

सारद माय करू सुनमांना, गणपत देव मनाऊ।
देव गुरूजी अग्या दीनी, (जद) 'गुमान' परचा गाऊ।
भेख रा भांण गुमान भारती, दरसण सुनमुख दीजे।
(कोई) जोगीसर दया करीजे ॥१॥

एक बिरांमण विरध अवस्था, जोग लियौ मन भायौ।
लोहगढ मे तपस्या कीनी जद, घट उजवालौ थायौ।
भेख रा भांण ॥२॥

किरिया धरम अनोखा कीया, नीर गगू नख नाया।
मस्त फकीरी त्यागो माया, धूत्र थांनक आया।
भेख रा भांण ॥३॥

डेरा दिया सैर रै वारै, ध्यांन अलख रा धाया।
सामी जांण सैर सगलै री, लोक रसोयां लाया।
भेख रा भांण ॥४॥

ठाकर तणै थाटवो भाई, चढे सिकारा आया।
क्रोधी जात मसकरी कीनी, (थांनै) ऊंचा किण लटकाया।
भेख रा भाण ॥५॥

विरद विचार बोलियौ बावौ, सेवा विना संत आया।
नसै महीणै पुत्र होवै तौ, यू जांणे सिध आया।
भेख रा भाण ॥६॥

कूडी जात थांगी कूडी सिधाया, कूडा पथ हलाया।
दोय अतीथा वाचा दीना, अजे कवर नी जाया।
भेख रा भाण ॥७॥

वाचा देऊ करू सो साचा, गरभवास मे आवा।
वारै वरस आगणैं खेला, पीछे जोग कमावा।
भेख रा भाण ॥८॥

वाचा दिया ठाकर घर आया, मन विसवास सवाया।
सामी जाय लोहागढ पूगौ, पडदै होय पूजाया।
भेख रा भाण ॥९॥

गाम धूघू नै भाण कछावा, ज्या रै वालक जाया।
हरीकवर राणावत माता, उदर जका रै आया।
भेख रा भाण ॥१०॥

भरियौ थाल मोतिया आखा, प्रेम नखत पूछाया।
जैत विरामण ज्योतक जोयौ, आछै नखता जाया।
भेख रा भाण ॥११॥

पाट कवर रूपै रै पायै, आछै नखता जाया।
जैत विरामण ज्योतक जोयौ, नाम गुमान दिराया।
भेख रा भाण ॥१२॥

घर-घर होवै हरख बधावा, नेते गोत जीमाया।
ढाढी वैठा करै बधावा, सहिया मगल गाया।
भेख रा भाण ॥१३॥

वरस एक नै बीजौ तीजौ, साता समद सवाया।
आठौ नमौ इग्यारौ बारौ, पूरवलो सुख पाया।
भेख रा भाण ॥१४॥

मात-पिता सू इग्या मागी, सद्गुर ग्यान सीखाया।
काची काया जोग कमावौ, इणरै कारण आया।
भेख रा भाण ॥१५॥

अवल धरा सू जैपुर आया, सत गुरू मन भाया।
देय परकमा पाये लागा, लाल धजा फरकाया।
भेख रा भाण ॥१६॥

दोय मास रहिया गुरुद्वारे, विध-विध पूछी वार्तां।
देय परकमा पाये लागा, तन पूछी कुसलातां।
भेख रा भांण ॥१७॥

तीन बरस गिरनार तापिया, अलख नांम रै आसै।
दत्तात्री गुरु दरसण दीना, गोरख धुणी रै पासै।
भेख रा भाण ॥१८॥

आबू ऊपर वरस इग्यारै, तत समाधी तपिया।
एक नाम रै रया आसरै, जाप अजपा जपिया।
भेख रा भांण ॥१९॥

भाव सरूपी पैरचौ भगमौ, सेत वभूत चढ़ाई।
गुलाब गुरू रा पञ्जा लीया, पूरी करामात पाई।
भेख रा भांण ॥२०॥

दया करे नै आया धूधू, फेरी नुरगुण फिरिया।
मात-पिता नै दीनौ मेलौ, कुटुंब जातरा करिया।
भेख रा भांण ॥२१॥

मैर करे सांमीजी मिलिया, अणभै ग्यान सुणायौ।
'चिमनौ' अरज करै सामीजी, पुरां नै भोज चढायौ।
भेख रा भांण ॥२२॥

गाम गड़ै गोगादे स्यांनी, ठाकर दीसै ठावा।
मढी बाध बैठा सांमीजी, जमात रा कुछ दावा।
भेख रा भांण ॥२३॥

परज भली पण कड़वौ पांणी, आय दया उपजाई।
कूंप तणा जल मीठा कीया, देव कला दरसाई।
भेख रा भांण ॥२४॥

एक जमात मूरतां अस्सी, आतस करनै आई।
जिण नै बावै परचौ दीनौ, सिध रूप दरसाई।
भेख रा भांण ॥२५॥

खेमनाथ कहै करज्यो खिम्या, किया जकै म्हे पाया।
सिव जोगी रा पाव परस नै, सीधा पथ हलाया।
भेख रा भांण ॥२६॥

हिंगलाज सै हियौ हुलसियौ, वस रै मारग वूवा।
महापुरस पैंतीस मूरता, उवा र साथे हूवा।
भेख रा भाण ॥२७॥

सोवनमेडी मे छडिया मेल्ही, अग्गर धूप उपाणा।
आगे होय अमरगर अगवौ, जैजैकार जपाणा।
भेख रा भाण ॥२८॥

पाच घडी दिन ऊगा पैला, आदसगत रथ आवै।
जाभरमाल वाजिया गैरा, गर डूगर गरणावै।
भेख रा भाण ॥२९॥

अगवौ कहै हमे थे ऊठौ, सरण नीकलौ सारा।
करौ सपाडा अलिलकुड मे, परचौ क्हियण प्यारा।
भेख रा भाण ॥३०॥

चरणा मे सामोजी निकल्या, अजगपुरी गुर भाई।
धोती नारेल अगवै नै दीया, कीनी सफल कमाई।
भेख रा भाण ॥३१॥

आछा पूज कालका पूजी, वूटा वकर चढाई।
महादेव नै रोट चाढ नै, चद्र कूप वोलाई।
भेख रा भाण ॥३२॥

परस माई रै वलिया पाछा, हरख मना मे हूवा।
गुर चेलै रै समाध गुढ्डे, सावधान हुय वूवा।
भेख रा भाण ॥३३॥

कोस आठ रौ पैंडौ करने, उत्तरियै रिण आया।
चीर चूनडी थान चढाया, दान गउवा देराया।
भेख रा भाण ॥३४॥

कोस आठ रौ पैंडौ करने, अकल आठमी आया।
लाला नै जसराज कापडौ, मगर भीव परठाया।
भेख रा भाण ॥३५॥

चढिया सोनमैडी मे चाडी, सरधा ह्वै सोइ चाडौ।
दान मान घर सारू दीजे, दसे नामे अखाडौ।
भेख रा भाण ॥३६॥

कोटेसर मे छापा लीनी, गउ काठै मे नाया।
अगवै हाथ ठूमरा दीना, लेय कठ लपटाया।
भेख रा भाण ॥३७॥

कच्छ गुजरात मालवौ लाघ्यौ, धर पूरबले धाया।
महादेव नेपाल कहीजै, गोला उठै चढाया।
भेख रा भांण ॥३८॥

फेर पिच्छम री वाटां फिरिया, अवघट घाटा आया।
घणै हरख सू गडै पहूता, विध-विध लोक वधाया।
भेख रा भाण ॥३९॥

बीज थावर रौ जमौ जगायौ, बाबै साध बुलाया।
घर-घर होवै हरख वधावा, सहिया मगल गाया।
भेख रा भांण ॥४०॥

वेदन घणा खिरज रा वासी, कौ थनै पनग पीवाणा।
जीण आण नाख्यौ जागा मे, जिणनै आय जीवाणा।
भेख रा भाण ॥४१॥

छठ बुधवार समाधी लीनी, लिखियौ पडदौ लीयौ।
जीवराज नै सेवक जाणे, दिन रौ परचौ दीयौ।
भेख रा भाण ॥४२॥

चारण जात भजन रौ चेलौ, थेट्टू लजिया थानै।
आत निवारी दुबध्या मेटौ, मिलजो सुनमुख मानै।
भेख रा भाण ॥४३॥

मैर करे सामीजी मिलिया, अणभै ग्यान सुणाया।
'चिमनौ' अरज करै सामोजो, 'गुमान' परचा गाया।
भेखरा भाण गुमान भारती, दरसण सुनमुख दीजे।
(कोई) जोगीसर दया करीजे ॥४४॥

साहित्यिक मूल्यांकनः—

श्री चिमनजी कृत स्तुति-काव्य उपासना के अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टिकोण से भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके 'रामदे-चरित' मे भाषा सरल एव सुबोध तथा वर्णन क्रमपूर्वक एव हृदयग्राही है। 'व्याहलो' मे दोहो की भाषा वडी ओजस्विनी और प्रभावशाली है। रामदेवजी की धर्मपत्नी नेतल के द्वारा उनका जन्मजन्मान्तर का पतिपत्नी-सम्बन्ध व्यक्त किये जाने के प्रसग मे कवि ने अपने पौराणिक ज्ञान का परिचय दिया है।

इसी प्रकार शनिश्चर-महिमा मे कवि ने ऐसी अलंकृत शब्दावली प्रयुक्त की है, जिसे सुन कर कोई भी काव्य-रसिक आनन्द-विभोर हुए बिना नहीं रहता। शनिश्चर के माध्यम से ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता का वर्णन 'रोमकद' जैसे उत्कृष्ट छद मे करते हुए कवि ने अपनी अपरिमित काव्य-दक्षता का परिचय दिया है। सुप्रसिद्ध प्राचीन राज-मनीषियो, मुनियो, ग्रहो, तत्वो, ग्रथो आदि के नाना प्रकारो एव परिमाणो की पौराणिक अनुभूति कवि को बहुत थी, इसका प्रमाण उनके शनिश्चर-महिमा के छद हैं। रोमकद जैसे सुन्दर छद की रचना जहां प्रत्येक छद मे एक से ९ अनुप्रास वयणसगाई सहित हो और भावों मे भी परिपक्वता लाना साधारण कवि की पहुंच का कार्य नहीं है। अर्थात् कलापक्ष के साथ भावपक्ष का सुन्दर समन्वय कवि की इस कृति मे आद्योपान्त दिखाई देता है।

'पिछमी पीर' के छदो मे डिंगल का रूप मुखरित हो उठा है। क्या दोहे क्या त्रिभगी छद और क्या रोमकद छद—सभी एक से एक बढकर प्रतीत होते है। सबसे बडी बात तो यह है कि यहां पर कवि ने राम और रहीम के भेद को भुला दिया है। यह निस्सदेह उनकी उदार मनोवृत्ति का सूचक है कि 'अणघड अल्ला' को 'रट्टं गुण रांम' की मुद्रा मे चित्रित किया है। वैसे कवि की यह वृत्ति 'हरीजस मोख्यारथी' मे प्रकट हो चुकी है, जहां वे यह कहते हैं.—

'अला अल्लेक सो एक इवणास है, भ्रम भीना जिके दोय भाखै।'

किंतु इस स्तुति-काव्य मे तो उन्होंने मुसलमानी पीर जमियल्लशाह को साक्षात् रुद्र के रूप मे चित्रित किया है। फणधर का लिपटना, शक्ति का पास मे सुशोभित होना एव हिंदू हक' को धारण करना आदि बातो के समन्वय से हिंदू-मुस्लिम एकता को एक प्रकाशमय नवीन मार्ग बताया है। टकसाली भाषा, मनमोहक छद, कमनीय कल्पना, सुन्दर शब्द चयन, नूतन दृष्टिकोण और उदार हृदय—इन सब के सगम से ये छद डिंगल-काव्य की अमूल्य निधि कहे जा सकते हैं।

इसी प्रकार गुमानभारती बाबा की 'वेल' अपने ढंग की महत्त्वपूर्ण रचना है। अशिक्षित वर्ग को भक्तिपूर्ण प्रसाद बांटने के लिये ऐसी सरल व ग्रामीण भाषा में रचना का होना नितान्त आवश्यक होता है। कवि ने सर्वसाधारण की रुचि एव अनुभव के अनुसार तत्कालीन प्रचलित ग्रामीण बोली मे इस 'वेल' का सृजन किया था। यदि इस मे क्लिष्ट शब्द तथा गूढार्थ होते तो समवत आज हमे उपलब्ध भी नहीं हो पाती। यह कहीं लिखित रूप मे प्राप्त नहीं हुई, बल्कि पिछडी जातिग्रों के लोग सत्सग कर जागरण आदि पर्वों के समय इस 'वेल' को गाते हैं। पिछडे हुए क्षेत्र मे ऐसी भक्तिपूर्ण एव बहुजनहिताय रचना का सृजन करना भी उस दृष्टि मे कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार श्री चिमनजी के स्तुति-काव्यों के विवेचन से हमे उनकी कला-प्रवणता, भक्ति भाव तथा धार्मिक उदारता का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। इन काव्यों की निश्चित तिथि ज्ञात न होते हुए भी हम यह मान सकते हैं कि ये उनकी प्रौढ़ावस्था की रचनाएं होगीं, अत अवस्था के साथ-साथ काव्य का स्तर भी प्रौढ प्रतीत होता है। अंत मे हम यह कह

सकते हैं कि चिमनजी के धर्म दर्शन सम्बन्धी काव्य एव स्तुति-काव्यो का इतना परिमाण व गुण उनकी भक्ति-भावना, काव्य-मर्मज्ञता तथा हृदय की उदारता को स्वत ही प्रकट करता है।

(घ) प्रशस्ति-काव्य—

महाकवि श्री चिमनजी जिस युग मे जन्मे थे, वह राजा-महाराजाओं की प्रशस्ति का युग था। चारो ओर रीतिकालीन परपरा का वातावरण छाया हुआ था। यद्यपि इस कवि ने नख-शिख वर्णन या नायिका भेद जैसी घिसी-पिटी तथा युग के प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी प्रवृति को नहीं अपनाया, तथापि प्रशस्ति-काव्य से वे वचित नहीं रह पाये। यदि हम उस जमाने की बारीकियो को पूर्णत समझने की चेष्टा करेंगे, तो हमे सहज ही प्रशस्ति-काव्यो के प्रति अपना उदार रुख अपनाना पडेगा। नीति समय के अनुसार हुआ करती है और समय पर वातावरण की अमिट छाप रहती है। वातावरण का भला अथवा बुरा होना सदैव वहां के शासक वर्ग पर निर्भर करता है। जनता सदैव उसी टोह मे लगी रहती है, कि हकूमत क्या चाहती है ? यदि शासन सुचारु एव सुष्ठु हुआ, तब तो यह प्रवृत्ति देशभक्ति व वफादारी बढाने मे सहायक होगी, अन्यथा इसके परिणाम विपरीत भी हो सकते हैं। जन-मानस मे भावनाओ और सस्कारों के प्रजनन का बहुत बडा उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सरकार का हुआ करता है—यह बात ध्रुव सत्य है। हाँ, किसी युग मे जनता इतनी अधिक जागृत भी हो सकती है कि वह सडी-गली शासन-व्यवस्था के प्रति विद्रोह भी कर दे। किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। राजा तथा प्रजा के बीच शासनीय सम्बन्ध हजारो वर्षों तक चलता आया, अतः यह कल्पना भी नहीं होती थी कि इस व्यवस्था का आमूल परिवर्तन होगा। ऐसी हालत मे राजस्थान के कवियो पर तो हम दोषारोपण कर ही नहीं सकते। एक तो यहाँ पर प्रकृति से ही सघर्ष का जीवन, त्याग एव बलिदान की आदत, शरणागत-वत्सलता का विरुद तथा शौर्य एव पराक्रम की पराकाष्ठा—इन विशेषताओं के अतिरिक्त कवियों एवं साहित्यकारो का बेहद सम्मान आदि बातें कवियो को आकृष्ट कर सकीं। अनेक शासक तो स्वयं अच्छे कवि, चित्रकार, सगीतज्ञ व कला पारखी भी थे। उन्होने साहित्य, सगीत व कला का विकास करने की भावना से कवियों एव कलाकारों का खूब सम्मान किया। यह स्वाभाविक बात है कि कोई अदना व्यक्ति भी यदि हृदय से हमे चाहेगा, तो हम उसे देखकर प्रसन्न होगे। इसी प्रकार यदि कोई बहुत बडा व्यक्ति हमारी कला-प्रवणता पर मुग्ध होकर हमे सम्मानित करे, तो हमारा हृदय उसकी प्रशसा किये बिना नहीं रहेगा। कवि होगा तो कविता में प्रशंसा करेगा और दूसरा व्यक्ति होगा, तो बातो मे तारीफ के पुल बांधेगा। यह हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, इस पर किसी का वस नहीं। यदि वास्तव मे कोई व्यक्ति सद्गुणो से सम्पन्न हो और अपनी हैसियत से अधिक साहित्य तथा कला को बढ़ावा देता हो, तो वह प्रशस्ति के योग्य है। इसमे कवि या कलाकार किसी को दोष नहीं दे सकते। हमारे देश के प्रथम प्रधान मंत्री स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू निस्सदेह सच्चो मानवता के प्रतीक थे और हुआ भी यही कि हजारों लोगो ने सभी भाषाओ मे उनके प्रशस्ति-गीत लिखे। हाथ मे सत्ता होने से व्यक्ति को अपनी खूबियां दिखाने का विशेष अवसर मिलता है। इसके विपरीत अनेक सुन्दर

व सुगन्धित पुष्प निर्जन-प्रदेश मे प्रफुल्लित होकर पारखी के अभाव मे अपनी सुषमा व सौरभ को बेकार मिटा लेते हैं। इस प्रकार हमने देखा कि जो व्यक्ति हृदय को जीत लेता है, वह प्रशस्ति पाने का अधिकारी है। साथ ही काव्यात्मक प्रशसा एव निंदा से व्यक्ति के चरित्र-निर्माण पर भी बडा जबरदस्त प्रभाव पडता है।

हमारे आलोच्य कवि श्री चिमनजी कविया ने जिस किसी भी काव्य प्रेमी नरेश अथवा जागीरदार की प्रशस्ति मे काव्य-रचना की, वास्तव मे वह हृदय से काव्य का परम पुजारी ही था। श्री चिमनजी ने जिसकी प्रशस्ति मे दो शब्द लिखे, वो अन्य सैकडो कवियो ने भी उसकी सराहना की। भुज-नरेश महाराव श्री लखपतजी ने १८ वीं शताब्दी मे भुज मे व्रजभाषा की एक पाठशाला खुलवायी थी, जहाँ काव्य-सृजन की शिक्षा दी जाती थी। वह पाठशाला स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक निर्बाध गति से चलती रही और वहाँ पढ़ने वाला प्रत्येक विद्यार्थी व्रजभाषा का कवि बना। उसी लखपत के वशज तथा देसल के पुत्र श्री प्रागराव पर साहित्य-प्रेम का गहरा रग देख कर श्री चिमनजी कविया ने भी एक छोटा-सा प्रशस्ति-काव्य 'प्रागराव-रूपग' रच डाला। यह कवि जिस ओर मुडा, उधर ही भावों एव उपमाओ की एक सरिता-सी उमड पडी है। प्रशस्ति-काव्य मे भी जी खोल कर यशोगान किया है। यद्यपि परम्परा तो प्राचीन ही अपनाई है, तथापि शब्द-चयन, छन्द, अलकार व नूतन भाव-व्यजना आदि पर कवि की मौलिक छाप भी दृष्टिगोचर होती है। दूसरा प्रशस्तिपूर्ण वीर-काव्य 'सम्मा रा झूलणा' इस कवि की रचना है, जिसे परिशिष्ट १ मे ज्यो का त्यो प्रकाशित कर दिया गया है। तीसरा ग्रन्थ 'लिछमण-सुजस विलास', जो बिलाडा के अधिपति दीवान श्री लक्ष्मणसिहजी की प्रशस्ति मे रचा गया है। स्मरण रहे, उक्त दीवान श्री लक्ष्मणसिहजी अपने जमाने के माने हुए साहित्यानुरागी व कलाप्रेमी व्यक्ति थे। उन्होने अपने शासन-काल मे हजारो हस्तलिखित काव्य-ग्रन्थ एकत्रित करवाये तथा चित्रकारी एव वास्तुकला के भी अनेक सुन्दर नमूने तैयार करवाये थे, जो आज भी मौजूद हैं। अब हम इस कवि के दो प्रशस्ति-काव्यों का सक्षिप्त विवेचन करेंगे।

(१) प्रागराव-रूपग :

प्रस्तुत ग्रन्थ कवि ने तत्कालीन भुज-नरेश श्री प्रागराव की प्रशस्ति मे लिखा था, जिसका रचना-काल अन्तःसाक्ष्य के आधार पर स० १९३१-३३ वि० के बीच ठहरता है। भुज मे कवियो एव पडितो के सम्मान की चर्चा प्राय सर्वत्र ही प्रचलित थी, अत. श्री चिमन कवि भी घर की आर्थिक परिस्थिति से तग आकर काव्य के साथ भाग्य को परखने हेतु भुज चले गये। वहाँ पहुँचने पर राजसभा मे उनका स्वागत हुआ और सफलता की उस पूर्व-सूचना को शकुन मान कर बाद मे उन्होंने 'प्रागराव-रूपग' की रचना की। सर्व प्रथम कवि ने भुज शहर की साहित्यिक गरिमा एव नरेश की काव्य रसिकता का वर्णन किया है। साथ ही वहाँ के गुणी विद्वानो को बड़े विहग मान कर कवि स्वय को एक कीट-पतगे के सदृश अल्पज्ञ मानता है। उनकी वाक्-चातुरी से जब दरबारी-गण प्रभावित हो गये, तब कवि ने मगलाचरण के साथ ग्रन्थ का प्रारम्भ किया है। प्रारम्भिक दोहे इस प्रकार हैं.—

दोहा

भुज सैहर कासी अभन, पडत लाख पढत।
मदबुधी हू पात मुढ, कायब किसी कहत ॥१॥
नह जांणूं अगगण नगण, भगण मगण गुण भेव।
जातुक छद न जाणहू, देह वेह गुरदेव ॥२॥
गुणियण वडा विहग गत, मैं कव कीट प्रमांण।
रूपग राव रटत हूँ, करौ खिम्या कवियाण ॥३॥
कवियाणा क्रिप्पा करी, राव मिलयौ रिझवार।
अब हूँ रूपग उच्चरू, तुच्छ बुधी विस्तार ॥४॥
मागण कोयक होय मुढ, जो भुज पौहतै जाय।
राव पढावै रूपगा, पावै लाख पसाय ॥५॥
इसी जाण हू आवियौ, राव तपै ध्रम रीत।
अकल प्रमाणै आपरै, कहू बुधी मम क्रीत ॥६॥

इसके पश्चात् कवि ने ग्रन्थ का प्रारम्भ किया है। रेणकी छन्दों की मधुर झकार के माध्यम से कवि ने भारत के प्रमुख नगरो की विस्तृत नामावली अकित की है। 'इतने शहरों मे हे राजन्! तुम्हारी कीर्ति फैल चुकी है'—इस भाव के बहाने देशी नगरो के साथ विदेशी शहरों व देशो तक के नाम गिनाये गये हैं। स्मरण रहे, यहाँ ऐसी परम्परा थी, जिससे सर्व साधारण को देश की भौगोलिक व ऐतिहासिक जानकारी मिल सके। प्रस्तुत ग्रन्थ मे कवि ने काबुल, कधार, गजनी, लका, रो मग्रौर विलायत में लन्दन तक के नामो का उल्लेख किया है। प्रायः प्रान्त के निकटस्थ शहरो की गणना एक-एक छन्द में पृथकत की गई है।

प्रशस्ति के माध्यम से कवि ने राजसी वैभव, राज-प्रासाद, सेना, दरबार, कारीगरी, अश्व, गज, ऊँट, पालकी, शस्त्र, राग-रग, नाटक, सगीत, वाद्य आदि सभी कलाओं एव उपकरणों को उपमाओं तथा रूपको से सुसज्जित करते हुए चित्रित किया है। राजा की उदारता, गुण-ग्राहकता, काव्य प्रेम, शौर्य, आखेट, राजदरबार, न्याय-परम्परा, कलानुराग आदि गुणों का अत्यन्त सुन्दर ढग से प्रवाहमय प्रशस्ति-गान किया गया है। सेना रूपी घटा, शत्रु-दल रूपी बिजली, कवि रूपी चातक व रजत रूपी वर्षा आदि के रूपकों की मनोहर झाँकियाँ कवि के काव्य-कौशल की विशेष परिचायक हैं। इस ग्रन्थ का सावधानी से अध्ययन करने से स्पष्टत प्रतीत होता है कि इसमें वर्णनो की विशदता, अलकारों का अनोखा प्रयोग, पौराणिक ज्ञान, दानवीरों का इतिहास, भौगोलिक अनुभव तथा कवि की पैनी दृष्टि प्राय. आद्योपान्त परिलक्षित होती है। अन्त मे छप्पयो मे दी गई दानवीरों की भारतीय विख्यात परिचयात्मक सूची अपना पृथक ही एकविशिष्ट स्थान रखती है।

'प्रागराव रूपग' के मगलाचरण के प्रथम दोहे मे ही कवि ने दो भगण का प्रयोग किया है, जो कीर्ति का प्रदाता गण माना जाता है। उसके बाद मे ग्रन्थ शुरू हो जाता है। वैसे यह ग्रन्थ बहुत बडा तो नहीं था, तथापि कुछ खडित हो जाने से अवशिष्ट अंश आकार मे बहुत छोटा ही मिला है। अत्यन्त छानबीन व अथक परिश्रम के पश्चात् जो कुछ भी सामग्री समुचित व सुव्यवस्थित रूप मे प्राप्त हो सकी है, उसमें से कुछ अश को छोड कर हम शेष पाठको के रसास्वादन हेतु अविकल रूप से यहाँ उद्धृत कर रहे हैं, यथा:—

प्रागराव रूपग :

दोहा

आद अलेख अदेख रग, धणी त्रपुर वौह ध्रम्म।
कव 'चिमनेस' कहत है, प्रथम निमो परब्रम्म ।।१।।
धर पूरब पिच्छम धरा, उत्तर दिखण अखड।
रूपग जाडाराव रा, खेलै जस नवखड ।।२।।

छद रेंणकी

सुर नर वाखाण खड नव साभल, देस दसू सोभाग दखै।
चवदै ही भुवन अवर दिस च्यारू, लिव कथ सातू दीप लखै।
सपतम पाताल ब्रमड इकवीसा, तणै सुजस दै दान तिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ।।१।।
गूडल इल नगर अवर जूनौगढ, राजकोट प्रभुताज रटै।
गढ वाकानेर मोरवी (वागड). धण कवियाण रोर घटै।
अवनी कठियाण सरब इम आखै, जबर न को जदुभाण जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ।।२।।
अरवद आंबेर उदैपुर ईडर, कमध किसनगढ सुजस करै।
अलवर लाहौर भरतपुर ऊपर, प्रसध वाच दरियाव परै।
प्रगटत सोभाग सतारै पूनै, करै ईढ सो मीढ किसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ।।३।।
धारापुर नगर पमार तणो धर, गौड बगाले सुजस गिणू।
सोभा अणपार आबझर सैहर, ते रजवाडै व्रच्च तणू।

रैणा रतलाम राठवड राजा, जंपै वीकम भोज जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥४॥

सैहर पुरनाग ममोई सूरत, भावनगर कीरत भारी।
पालणपुर अनै सैहर रायधणपुर, कथ अैमदपुर इधकारी।
बाव स थाराद सिंधपुर वाचै, दान प्रगट है दसू दिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥५॥

देसापत भोम विलायत नदण, कपनी सायब राज करै।
लकागढ दैत नाम लै लेता, धर पर जेता पाव धरै।
काबल कधार गजणी काबा, दान सराहै रूम दिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥६॥

ऊमरपुर सैहर पारकर आखै, हैद्रापुर मे सुजस हुवै।
सातू ही सिंध खैरपुर सधी, लख चात्रक कव क्रीत लवै।
लाहोर मुलतान उतर धर लाखा, कीरत दाखै भूप किसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥७॥

अजसै जेसाण तणी धर आदू, चहु पख जादू नीर चढै।
वरसलपुर अनै अनै वीकमपुर, पूगल कायब तूझ पढै।
सोभा बीकाण कमध साभल सह, जस (आगर) वाखाण जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥८॥

.... चरण करण सु प .... , .. नाम जपै।
मीठौ सोव्रन्न विकै इकमोला, थिर जै कीरत तूझ थपै।
महपत मघवान इसी छिब महमा, कव वरणै वाखाण किसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥९॥

गाढा गढ काठ बुरज गजगीरिय, काठल सोव्रन महल कला।
झगमग नग हीर झरोखां झखत, परवाल थंभा प्रघला।

अधफर असमान कंगोरां ओपम, जाण स्रंग गिरमेर जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥१०॥

जाजम पचरग रग बहु जाझिय, सेत चानणी जेथ सदा।
राजत जिण सीस दलीचा रेसम, मिसरू तकिया है उमदा।
सुरियद पौसाक सुहै इम सोभा, जाणक आफू खेत जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥११॥

केसर छिडकाव अतर हुय कादौ, जाणक भादू मा जलं।
जाता जुग क्रीत कबू नह जावै, पावै मद पाता प्रगलं।
हूकल रगराग रभ नाटक हुय, जाण तखत है इद्र जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥१२॥

वसी सुरनाय सितारस वाजत, क्रह क्रह बोलत करनाल।
दुकडा मरदग उपग दमकारा, बोलत तासा त्रवाल।
वाजत नीसाण भेर सुर गका, जाण गाज सुरराज जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज [प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥१३॥

मोभट थट सकल विकट काठल सज, खल वादल् चख चपल खिवै।
सुपखा जल चाड़ जाड़ देसलसुत, लख चात्रक कव क्रीत लवै।
रूपा झड सुदत रास भाराहर, नीकसियौ सोभाग निसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥१४॥

घूमर थट (सुभट विक) ट हुय घोडा, घर पुड पोडा हूत घसै।
.... ।
.... ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥१५॥

हैवर गजराज व्रवण घण हाथा, द्रव भर बाथा दपट दियू।
लागौ झड दान मान घण लोभिय, थांनक भा मघवान थियू।

जाडा कुल भाण प्रथीपत जादम, वस वधारण वीस विसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥१६॥

सुभ तिथ विन वार नखत दिन पुल सुभ, कव जदुपत दरसाव कियौ।
इल पर अखियात बात इम ऊब्रर, लहर उदध जस गहर लियौ।
मौजा झड इद्र प्रघल जस महि पर, तौर सधर इद पभर तिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसौ।
जी आज प्राग महाराव इसौ ॥१७॥

अबर धर सूर ससीहर एतै, जलहर पवन र अमर जितै।
सायर गिरमेर फेर फुणधर सिव, तरवर कलव्रछ अमर तितै।
घरहर नीसाण सहर भुज जसघण, जबर प्राग भड अनड़ जिसौ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्रागे महाराव इसौ।
जो आज प्राग महाराव इसौ ॥१८॥

छप्पय

भड ऊनड भूपाल, दुरग जस नीम दिराई।
लाखै धन लूटाय, क्रीत मैहलात कराई।
.. . . , कल मध जस रा कीना।
जेहे कली चढाय, दान वौह हैवर दीना।
देसलासुतन रायधण हुवा, मौजां मेह मचाड़जे।
महाराव प्राग दाखै 'चिमन', चाव कलस जस चाडजे ॥१॥
प्रागराव कव पाल, काछ भूपाल दिनंकर।
प्रागराव कव पाल, वडो लंकाल तालावर।
प्रागराव कव पाल, वंस किरणाल वडालो।
प्रागराव कव पाल, अस जादम अजवालो।
कव पाल प्राग चढती कला, अरा जीप सैहजा अथग।
प्रवाडा जीत भुज रा पतो, जाडा प्रतपे क्रोड जुग ॥२॥

दोहा

जाडा प्रतपे क्रोड जुग, जस रजवाडा जीत।
दुखिया गढवाडा दियण, फरण प्रवाडा क्रीत ॥१॥

कवित्त

जोस वीरभद्र सौ क दांन झडी इद्र सौ क,
उझेला समद्र सौ क तेज रौ स भाण है।
दधीच भूप दत्त रौ क हरच्चद सत्त रौ क,
गुणेस उकत्त रौ क विद्या स्रब्ब जाण है।
गोरखेस ग्यान रौ क सूर हिंदवान रौ क,
वीक भोज दान रौ क गुणा को पछाण है।
अभंग [तेग] आछ रौ क सूरधीर साच रौ क,
रे नरेस काछ रौ क प्राग ऐ प्रमाण है।'१।।

दोहा

खाग त्याग नवखड मे, प्रागराव परचड।
कदमे लाग भुवाल केइ, डरता समपै डड।।१।।

छद मोतीदाम

भरै केइ डड वडा भुवपाल।
ओहक्कैय प्राण रिमां विन आल।
सकै केइ सूम वडा तिरसीग।
धुजै असथान अरा चौय धीग।।१।।
महा वल भूप जाडा कुल मौड।
तेगा वल केक दिया दल तोड़।
अनेकाय वार खेलत आखेट।
भगाया हु लाख सत्रा खग भेट।।२।।
जीपै कुण आज जिकै सू जग।
रावापत राव दुनी दिय रग।
जझक्कैय सक मानै अगरेज।
तपै महाराव इसौ वड तेज।।३।।
किया सत्रु जेर कठीर कोधाल।
छौला द्रव आपैय व्रद्द छौगाल।
गिणोजैय आज नृपा सिणगार।
पडै जम पात किता अणपार।।४।।

चवै नित राग छतीसाय चोज।
महा मन वछत पावैय मौज।
करे नित कचनिया त्रतकार।
हगामाय नाटक रग हुस्यार ।।५।।
के के छिडकाव सुगधाय कीध।
लखा ताजीम सलामाय लीध।
ठहै इक त्रवक जाभिय ठोर।
घटा जिम भाद्रव मास सघोर ।।६।।
भुमै खभुठाण किता गज झूल।
सजै जरदाल सुभट्ट सादूल।
जले तिरवाज हजारिय जाण।
कसै जरि तास वेवांण केकांण ।।७।।
हुवै असवारिय प्राग हमेस।
नेजा पचरगाय काछ नरेस।
जैकार नकीव जपै हथ जोड।
करत सलाम दुनी लख क्रोड ।।८।।
सिंघासण चम्मर होत प्रसद्ध।
विराजत छत्र सोव्रन्न विहद्द।
भला कवराव सदा जस भाख।
लिये मद छाक दिये द्रब लाख ।।९।।
वडा व्रख वेद अहोनिस वाच।
चवे दरबार कवी गुण साच।
पढे लख चारण ग्यान प्रसग।
रावापत राव चड़ावैय रंग ।।१०।।
इसौ अजराव दीठौ मैं आज।
लीधां कुल जादम हंदिय राज।
चवै वरणाव इसौ 'चिमनेस'।
सजै दिन राजेय काछ नरेस ।।११।।

दोहा

काछपती जसकारणां, रीज दियै राजंद।
सडाहल मैंगल असव, सांसण गांम समंद ।।१।।

देस दसू जस दाखवै, रजवाडा इण रीत।
सुत देसल सुदतार री, कहत सबै जग क्रीत ॥२॥

नीसाणो

जाडै भूप उजालिया, एता इलपत्ती।
राणा रावत यू रटै, धिन काछ धरत्ती ॥
दिन ऊगता दाखवै, कवियाण कीरत्ती।
हैवर गैवर दै हथा, दातार दौलत्ती ॥
आज इसौ धर ऊपरा, सुणियौ वड सत्ती।
चवदै विद्या वेद च्यार, सह जाण सुमत्ती ॥
और पुराण अठार ही, व्याकरण विगत्ती।
अरथ अनुक्रम ऊपजै, भाखा भगवत्ती ॥
पिंगल पराक्रत पारखू, सैसक्रत्त स्रवत्ती।
राग अढारै दूण ही, किरणाल कीमत्ती ॥
कव जैसौ वाखाण कै, ऐसी इलपत्ती।
हाथा वड भाराहरौ, चित वेल चढत्ती ॥
दान घणौ सुनमान दै, मिलिया मोहबत्ती ॥
दत केता नित दीजिये, महा ध्रम्म मूरत्ती।
कीरत काछ नरेस की, दस देस दीपत्ती ॥
जाडो अवचल क्रोड जुग, राजै रिधवत्ती।
कव दाखै रिछिया करै, नवलाख सगत्ती ॥१॥

झूलणा

जग ऊपर जाडेच का, वाजै जस वाजा।
मौजा नित री माणवै, पगी दध पाजा।
देस दिसावर दाखवै, रग [अवचल] राजा।
जग अरदा जीपसं, क [र जोम स] काजा।
अग महाबल तेज अत, लीधा कुल लाजा।
जग मारो जस जांणवै, महि मडल माजा।
यव धनवती के किया, जस कारण जाजा।
जास तणा मह जग्ग मे, पहचांणै प्राजा।

कोण समोवड कीजिये, धरपत्त धराजा।
केता गज दीधा कवां, जस काज जमाजा।
सुरियन्द वीकम सारखौ, पर दुक्ख पराजा।
देसल सुत दै दूथिया, ताजी वड ताजा।
राव पिराग राजेसुरा, दातार दयाजा।
क्रोड जुगा राजस करौ, सुख सपत साजा ॥१॥

दोहा

साज भलौ सुख सप सू, राज करै राजद्र।
आज तखत भुज ऊपरा, अवचल जाड़ा इद्र ॥१॥

झूलणा

राजवसां रवि रूप ज्यू, जाडेच जपीजै।
सह दातारा सेहरौ, गुणग्राग गिणीजै।
जेण तणी छक जोवता, छित अदवा छीजै।
ऊगै रवि एता असव, दत मौजा दीजै।
अमला गलिया ऊपरै, प्याला मद पीजै।
ह्वै मनवारा हेत सू, वड चाव वचीजै।
राग रगा कव रूपगा, जैकार जपीजै।
सार आचार सिरोमणी, कवतार कहीजै।
वार कल जग वीखमै, सत चाल सुणीजै।
जोर भडा थट जोस मे, कव रोर कपीजै।
दाखी कीरत दान दे, लाखा जस लीजै।
पगां चगा पालगर, कुंमेर कहीजै।
राव जदूपत राजवी, रूपग सुण रीजै।
'चिमन' कहै नित चारणा, दत हैवर दीजै ॥१॥
.. . ., दीपग दातारा।
सूमा रै उर साल है, जग ढाल उदारा।
माल समापै मागणा, कुल जस ऊवारा।
भाराहर बगसै भला, हुव्वास हजारा।

जस वधियौ सारी जमी, पहचांण अपारां।
सूम केता धन संचता, लेग्या नह लारा।
माया साथै न वहै, त्रगुणा अवतारा।
जो जस कारण वावरी, अग्गै दातारा।
... . जमीन पर, वाचा इण वारा।
कव साची 'चिमनेस' कै, सुणजो सिरदारा।
प्राग धरा कछ पाटवी, सूरज न्रप सारा ॥२॥
देसलसुत दातार कूं, ससार सरावै।
वस जदू वाखाणता, उर अजस आवै।
जै कुल 'लाखै' जैहडा, दाता दरसावै।
क्रोड देवा जस कारणै, कल ब्रद कहावै।
कवियाणा रीजा करै, कीरत्त करावै।
भांणव अलगी भोम सू, अणविद्या आवौ।
पैहला दान पसाव दै, पोह जस्स पढावौ।
इण वेला न्रप ऐहडौ, कुण मीढ कहावौ।
लाख अपै द्रब लोवियां, वाखाण वचावौ।
सरणागत केता सकव, राजान रहावौ।
राव अवच्चल राज कर, गढवी गुण गावै।
रूपग जाडाराव रा, कवराव कहावै ॥३॥

दोहा

रूपग जाडाराव रा, पढ पावै कुण पार।
क · ·· ·· ेरा करे, सो वरणै बुध सार ॥१॥

छप्पय

भड वीक्रम क्रन भोज, वहू जुजठल इधकारा।
वल राजा बुधवत, प्रसध वाघो दध पारा।
वगडावत जिण वार, भूप जेहो भाराणी।
कव दाखै कीरती, फजर लाखो फूलाणी।
दध्धीच जगड़ हरचंद दखा, वाघ कमध जिण वार मे।
प्रगटियौ जेण मारी प्रथी, सुजस प्राग ससार मे ॥१॥

भागीरथ कुल भाण, राण हम्मीर रीझायौ।
ऊनड कुल आदीत, छौला देयण छतरालौ।
तिकै हुवा दातार, जिकै सारौ जुग जाणै।
सह एता सिरताज, वडा गढ कोट वखाणै।
रायसिघ भूप बीकाण पर, कुरद कवदा कापिया।
महाराज मान मुरधर मुगट, इगसठ सासण आपिया ॥२॥
प्रथीराज चहुवाण, कवा पालग किरणालौ।
वच्छराज अजमेर, साख गौडा सेघालौ।
किसन हद्द हौकबा, किया व्रज मा जस कारण।
पौह दाता गोपाल, चापे रखवालौ चारण।
काछबौ हेम लालर कहा, व्यदत कीधा वारणै।
बलवतसिंघ दौलत ब्रवी, कीरत हुंदै कारणै ॥३॥
मूडेती कुल मौड, वलै सूजौ इण वारै।
ईहग व्रन आविया, आप ऊचा आधारै।
माधौ ऊदा मुगट, प्रगट दाख रायापुर।
भाटी मूलौ भूप, पाल कोधी अबला पर।
दातार वडौ मालम दुनी, खडा प्रभता खाटवो।
सु एता [रीझवारा] सिरै, प्राग धरा कछ पाटवो ॥४॥
रामचद राजान, लक बगसी लहराणी।
प्रीछत राज प्रमार, जका वाता जस जाणी।
खानाखान नबाब, खड नव कीरत खाटी।
त्रप गुर लाडूनाथ, लाख मू प्रभता लाटी।
उवै हुआ सोय इल पर अमर, जगत माय जस जम्पियौ।
सुदतार 'प्राग' देसल सुतन, कविया दालद कम्पियौ ॥५॥
इण धरती ऊपरा, ... या सिरदारा।
इण धरतो ऊपरा, वजे ग्या केयक वारा।
इण धरती ऊपरा, रघू कइ रावत राणा।
इण धरती ऊपरा, गुणा गढपत गवराणा।
अणपार हुवा दाता अगै, गुण दाखै केता गिणा।
दाखिया जोड केता दुनी, तिका छत्र देसल तणा ॥६॥

गोरख दै कुरा ग्यान, सेव कुरा मत्र सिखावै ।
व्रहमा हूता वेद, वाच कुरा अवर वतावै ।
पखी करै आपारा, वेग कुरा गुरड़ वडालौ ।
दे गरापत उपदेस, अवर कुरा ग्रथ उजालौ ।
कोह भरै सदन दीया कमरा, आप अथग अरापार है ।
गढपती प्राग ऐसौ गुरा, दिल सायर दातार है ।।७।।

(२) लिछमण-सुजस-विलास

श्री चिमनजी कविया ने विलाडा के दीवान श्री लक्ष्मरासिंहजी की प्रशस्ति मे लगभग सौ-सवा सौ छदो का एक डिंगल-ग्रथ रचा था। स० १९४० वि० आषाढ़ कृष्णा १३ शनिवार के दिन इस ग्रथ का समापन हुआ, ऐसा ग्रथ की पुष्पिका से सिद्ध होता है। श्री लक्ष्मरासिंहजी अत्यन्त उदार तथा काव्य-रसिक व्यक्ति थे। उनके पास कवियों और विद्वानो का प्रायः जमघट लगा रहता था। जोधपुर राज्य के सरसब्ज नगर विलाडा के अधिपति को देवी के दीवान की उपाधि प्राप्त है। जिस प्रकार उदयपुर के महाराणा एकलिंग (महादेव) के दीवान कहलाते हैं, उसी प्रकार विलाडा के ठाकुर आईनाथ (जगदम्बा) के दीवान हैं। सर्व प्रथम मगलाचरण का एक दोहा है, जिसमे आदिशक्ति की महिमा गायी गई है। तत्पश्चात् चार छप्पयो मे आईनाथ (आदिशक्ति) का सविस्तार स्तवगान किया गया है। प्रत्येक युग मे ईश्वर की अर्द्धांगिनीस्वरूपा देवी के विविध रूपो एव चरित्रों का महिमा-गान करते हुए उसके द्वारा दुष्टों व दैत्यो के वध का चित्रण भी किया है। बिलाड़ा-दीवान साहब के कोट को 'वडेर' कहते हैं, जिसमे देवी का एक मदिर बना हुआ है। उस मदिर मे अखड ज्योति से केशर पडती है, जिसका वर्णन कवि ने बड़ी गरिमा के साथ किया है।

इसके पश्चात् बिलाडा की शस्य-श्यामला भूमि एव हरियाली आदि का सुरम्य वर्णन किया गया है। वापी, कूप, सरोवर, सरिता आदि के अतिरिक्त वृक्ष, लता, पुष्प, त्रिविध समीर, भ्रमर-गुजार आदि का भी वड़ा ही मोहक चित्रण किया गया है। आगे के छन्दों मे श्री दीवान के राज-भवन, राजसी उपकरणों, चित्रकारी, सगीत, वाद्ययन्त्र, सेना, दरबार, शस्त्र, वाहन आदि के साथ उनके शौर्य एव औदार्य की अतुल महिमा गाई है। महलो के शिखर-शिखर स्वर्णिम कलश सोने की लका का भान कराते हैं। कुल २२ रेंराकी छन्दो मे दीवान का यशोगान भारत एव विदेशो तक के प्रायः सभी प्रमुख नगरों मे प्रकट किया है। इन छन्दो मे जीवन से सम्बन्धित सैंकडो कला-कृतियो का समावेश करते हुए वर्णन को और भी विशद एव रुचिर बना दिया है। सादगी के साथ शृङ्गार का सुन्दर मेल इन छन्दो की कारीगरी मे स्पष्टत प्रतीत होता है। पयदल, हयदल एव गयदल सहित चतुरगिनी सेना, भडों का फहराना, नृत्य की ठुमरियां, कीर्ति का मधुर कठ, घोडो की घूमरें, झरोखो मे जटिल बहुमूल्य नगीने, रवा मखमल वीर पचरगी जाजमे, मिसरु के तकिये, हौज व फुहारे, केशर, कस्तूरी, गुलाल एव अबीर के झौंके, पक्षियो का

कलरव, कल-कल-निनादिनी सरिता, सुखद छाँह, शीतल, मन्द और सुगन्ध समीर, नभ-स्पर्शी गवाक्ष, विशाल शामियाने, दुन्दुभि का उद्घोष, चित्रसारी मे लालें, पुखराज, पन्ना आदि की लूमे, चवर का हिलना, बांसुरी, शहनाई, सितार आदि मधुर वाद्यों का मरदग, दुकडा, उपंग आदि बाजों के साथ सुर मिलाना आदि आमोद-प्रमोद की रंगरेलियो के साथ साहित्यिक चर्चा का सरस सगम देखकर साक्षात् इन्द्र के दरबार की प्रतीति होने लगती है। प्रथम १२ रेंणकी छन्दो मे तो नगरों की गणना एव उनमे व्याप्त दीवान की कमनीय कीर्ति का ही सकेत मात्र है। आगे कुछ छप्पयों मे सात्त्विक, राजसी एव तामसी यज्ञो का वर्णन तथा दीवान के शौर्य एवं सैन्य बल को प्रकट करने वाले वीररस-प्रधान वातावरण की सृष्टि है। वैसे यह ग्रन्थ आकार मे बहुत बडा नहीं होने पर भी अत्यन्त सरल, सुबोध एव हृदयग्राही है। पाठको के रसास्वादन हेतु इस ग्रन्थ के महत्त्वपूर्ण भाग को ज्यो का त्यो नीचे प्रकाशित कर रहे हैं:—

लिछमण-सुजस-विलास :

दोहा

सत रज तम व्रम विसन सिव, त्रगुण पाच है तत्त।
इल जल तेज समीर अभ, सबकी आद सगत्त ॥१॥

छप्पय

आईनाथ अनाद, ओहु सू नाद उपजिये।
आईनाथ अनाद, सोहुं महमाय सिरजिये।
आईनाथ अनाद, चड मुडा रत्त चूसण।
आईनाथ अनाद, वडा मधकट विधूसण।
सोखवा [दैत सिंघवाह]णिय, धसल सूल पाणा धरे।
दीवाण सुजस निरमल दखा, कृपा दिस्ट ऊपर करे ॥१॥
रांमण सीता रूप, होय तै दन्नियौ हाथा।
देवी धिन द्रोपदा, भखण कैरव भाराथा।
वनरावन वेहार, रमी कृस्ना संग राधा।
बगडावत जैबती, खफर डकरां भर खाधा।
केतांन चिरत धारा वहू, ध्यान अमर नर एह धरे।
दीवाण राण प्रभता दखा, कृपा निजर मो पै करे ॥२॥
जुग जुग दैता जीत, कीत महि गिगना कीनी।
आपै सदा अजीत, भक्त हित जिगना भीनी।

थित बीलाडै थांन, मान पूजै मह लोका।
दियै अभैपद दान, तान चख लखै तिलोका।
प्रम जोत कला केसर पड़ै, देव सता जगदीस री।
'चिमनेस' हस्त जोडे चवै, ऊपर करज्यो ईसरी ॥३॥
मग उबक चौगान, वहै नित [नगर] विचाळै।
पियै गेहु प्रथमाद, भलम परचा जुग भाळै।
संजल कला सदीव, अकल कलणी नह आवै।
प्रघल परच्चा पूर, गुणी जन केता गावै।
धियावै लोक पावै सु धन, विगन विलावै वीसहथ।
बुलावै उकत कीरत बकै, सगत अहोनिस रहौ सथ ॥४॥

दोहा

सघर उकत दीजे सगत, मदत होय फुरमाण।
कथत अरज कर 'चिमन' कव, विवध दिवाण वखाण ॥ ॥
लज सायर जाहर लछौ, रीणव मछा रहत।
अछा सुजस इल ऊपरा, कर कर जोड कहत ॥२॥
इण थानक बल नृप अगै, किया जिगन जस काज।
लिछमण उण तक लेखियै, अडर कल विच आज ॥३॥
विध विध कर अब वीनवू, सघरकोट अणसक।
सिखर सिखर फब सोवना, लखा कलस ज्यू लक ॥४॥

छप्पय

सघर कोट [अणसक], [पा]स बुरजा वड प्रग्गळ।
गोख सिखर गजगीर, विकट मैहला छिब विम्मल।
छटा घटा नभ छिवत, जटत हीरा नग जाली।
के हिलमी चित्रकार, आब रूपा अजवाली।
सिंघासण किनक छत्रह सोव्रन, मौजां दाळद मेटणो।
विराजै लछौ दिनकर वदन, भाग भलां ह्वै भेटणो ॥१॥
जाझै रग जाजमां, गिलम रेसमी गरक्कां।
जरि तकिया नग जड़त, हूंस अत कमळ हरक्खा।

कर केसर छिडकाव, सुधा अतर कसतूरी।
उड्डुत रंग अबीर, पोहप परमल बोह पूरी।
झोकबा झडफ चमरां हुवै, करत्त राग हूकल कलल।
बिरदाय जात लाखा बिरद, पात क्रीत दाखै प्रगल ॥२॥
तान मचै ततकार, नाच त्रितकार निरम्मल।
खेलत कचन स्याल, [चूप सू रम]ती चप्पल।
झहक भेर करणाल, ओप छक रौनक ऐहो।
अवर किसी दा ओप, जांण छक सुरपत्त जेहो।
रजरीत नीत कुल् ध्रम रिधू, प्रीत सुपाता पालणौ।
पख नीर चाढ चावी प्रभा, गाढ अदावां गालणौ ॥३॥
जिण आगल जोधार, बडा सिरदार बिराजै।
कामदार अन्नेक, सामध्रम हुक्कम साजै।
लाखां लियै सलाम, दियै, लाखां द्रब दूणा।
देख राण दीवाण, असत के पडिया ऊणा।
सुदतार धिनो सेवग सगत, वार अक मौजां वरै।
छक इद्र जेम दीसै छटा, कमध राण राजस करै ॥४॥
रीज ताल रैणावां, मेघमालास उमंडै।
खीज झाल्ल प्रलैकाल्, खाग प्रसणा दल् खडै।
सोभा सग सुचंग, सरब गुण जाण गुणेसुर।
अग रूप अन्नूप, जवर पौसाक अडबर।
ऊमदा वणै इल् पर इसौ, जिसौ गैण मघवाण है।
भय रोर [मिटै मिलि]या भमर, देव कला दीवाण है ॥५॥
बीलाड़ो पुर बंडौ, पास सिलता वैह प्रग्गल।
वापी कूंप तलाव, मोद प्रज कै मन मगल।
निरमल् नीर गभीर, मधुर बौह भरे सरोवर।
हवा छाय हुल्लास, तेथ हद फूल तरोवर।
अठार भार बनवास फल, मधुकर गुंजत मोद मन।
अन्नेक तरै रस स्वाद है, घण आणद सुगध घन ॥६॥
ऐसा बाग बगेच, हौद चादरू फुहारा।
हवा वास हुल्लास, पोहप परमल अणपारा।

सीतल मद सुगन्ध, पवन ग्रहुँ भात प्रकासै ।
दरखत छाय सदीप, जेथ कचण उजियासै ।
जाजम दुलेच सोहै गिलम, तहा बैठत सोभट थटा ।
कवियान सोभ दाखै किसी, मनहु स्वेत बादल घटा ।।७।।

दरवाजै दौढिया, सोभ ऐसै दरसावै ।
उडत पख की फेट, पडण भीतर नह पावै ।
रैणवास मंदरा, तिकै इद रा तमामू ।
के [क भात] चित्रकार, क्रोड़ हिलमी हुय कांमू ।
पयदा व [घणा] पाटबरां, पड़दा जरकस प्रग्गला ।
चन्नण कपाट जाली ग्रचल, ग्रटा भरोखा ग्रग्गला ।।८।।

सिरै कलस कव सोन, कली इम स्वेत प्रकासै ।
वडै ऊजल वेतान, भांन जिम जवहर भ्यासै ।
मरदानै ऐवास, दुरग ऐसा दिखलाड़ै ।
जिसकी धुजा पताख, गरद नभ हूं की भाड़ै ।
मकरान पान दरिखान मे, ग्रदभुत वुरजागल इसौ ।
वाखान कहत कैसा बनै, जाण सक्र थानक जिसौ ।।९।।

दोहा

इधक ग्रोपमा ग्रनत है, बरनत कहा बनाय ।
भनत सुपगी भारथी, पार तहू नह पाय ।।१।।

सगत क्रिपा वर सधर है, थिरपत जैसे थोक ।
पूजत सक्त प्रताप सैं, लिछमण सब ही लोक ।।२।।

सैं ग्रवनी परजे सैहर, पसर तहां जस पूर ।
लिछमण इण भूलोक मां, जंपै नाम जरूर ।।३।।

ग्रम्बा तणै प्रताप ग्रव, दखै प्रभा सत्र देस ।
वरणत है सोभा वरण, चारण कव 'चिमनेस' ।।४।।

ग्रवल जोधपुर ग्रागरौ, नरवर वीकानेर ।
दाखै जस दीवाण रौ, फजर समै चहु फेर ।।५।।

छंद रेणको

पूजत जोधाण उदैपुर पूजत, पूजत धर जेसाण परा।
पूजत जैयनगर अजैपुर पूजत, नरपत पूजत सोय नरा।
पूजत बीकाण जाण वावलपुर, पाण कला सगती प्रगटै।
लिछमण दीवाण राण बीलाडै, रग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥१॥

सोभा जग भणत प्रथीपत सुरपत, जगत विगत नित नांम जपै।
देवत दत उकत प्रवत सव देसाय, तखत वखत वा राण तपै।
खडा नव दीप सपत भांजण खल, उदध छौल मौजां उलटै।
लिछमण दीवाण रांण बीलाडैय, रग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥२॥

घोडा घमसाण गरट थट घूमर, कर झलूस कुजर कितना।
चाकर रजपूत सुभट आता चव, जरद मरद हाजर जितना।
है थट नीसाण घुरत नित हलवल, जुगत विगत नित नाम जठै।
लिछमण दीवांण रांण बीलाड़ैय, रग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥३॥

मुरधर मेवाड माड धर मालम, चाड सुजल परियास रहू।
प्रसणां दल पाड राड के जीपण, कवियां दल दपछाड कहू।
वका आंनाड़ रावका बसिय, तखत झलूसा साज तठै।
लिछमण दीवाण राण बीलाड़ैय, रग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥४॥

पाराकर सोढ अमरपुर प्रभता, जबर हैदराबाद जपै।
रोडी के भख खैरपुर कीरत, अमल लियता रग अपै।
के रूमसूम मुलतांन किराच्चिय, थियै सुपगी नगर थटै।
लिछमण दीवांण रांण बीलाड़ैय, रग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥५॥

गोगै भानग्र अवर जूनैगढ, राजकोट अगरेज रहै।
हलवद [वा ध्रोल] मोरबिय हनवज, क्रीत जांमधर नगर कहै।
भुजपुर कछ देस अहोनिस भाखैय, पीर कला सुलतान पठै।

लिछमरा दीवारा राण बीलाडेय, रग सुजस दुनियांरा रटै ।
जी रूपग सब दुनियारा रटै ॥६॥

अरबद गुजरात सिंधपुर ऊपर, पालरापुर सुरा हाक पड़ै ।
रायधरापुर पटरा बडौदैय रूपग, चित कर अमला रग चडै ।
मालम जसवास नागपुर माहो, जबर ममोई सुरत जठै ।
लिछमरा दीवांरा रांरा बीलाडैय, रग सुजस दुनियारा रटै ।
जी रूपग सब दुनियारा रटै ॥७॥

.... र धार उजोरिगय सोभा, · .... देस दखां ।
नरवर नेपाल ताल ....नाय, लिछमरा जपै नाम लखा ।
मालागर देस बगालै मालम, चढै कीत लका चौहटै ।
लिछमरा दीवारा रारा बीलाडैय, रग सुजस दुनियारा रटै ।
जी रूपग सब दुनियारा रटै ॥८॥

अलवर भूपाल अमरसर ऊपर, पुर पटियालै सुजस पढै ।
हथरगापुर दिलो चली जस हाकल, चवै अडर नर वेल चढै ।
कासी हरद्वार अजोध्या कीरत, किसन हुवौ सो मुथर कठै ।
लिछमरा दीवारा रारा बोलाडैय, रग सुजस दुनियारा रटै ।
जी रूपग सब दुनियारा रटै ॥९॥

सुरिगयौ हिंदवारा फिरंगी सुरिगयौ, धर हिंदू घरा अजस धरै ।
इल पर रतलाम आवझर ऐसौय, कमध किसनगढ अजस करै ।
प्रथमी कनवज्ज सुजस अत पूगौय, तखत हुवौ जैयचंद तठै ।
लिछमरा दीवारा रारा वीलाडैय, रग सुजस दुनियारा रटै ।
जी रूपग सव दुनियांरा रटै ॥१०॥

अवनो लाहौर देस हरियांरणैय, भूप भरथपुर गरथ भरणै ।
सोभा उतराद भियारिगय सरसै, घर घर करसै कोड घरणै ।
कनखलपुरवाद याद किलकत्तैय, जाणै कुल मरजाद जठै ।
लिछमरा दीवारा रांरा वीलाडैय, रग सुजस दुनियारा रटै ।
जी रूपग सव दुनियांरा रटै ॥११॥

पूगल परियांरा जारा वरसलपुर, घर कावल खुरसारा धरा ।
हिंदवारा सकल तुरकारा सराहै, प्रसध जांरा मैहरारा परा ।
हुवसी पकड़ारा कररा सूपड ह्वै, एक चररा गत वररा उठै ।

लिछमरण दीवारण रारण बीलाडैय, रग सुजस दुनियारण रटै।
जी रूपग सब दुनियारण रटै ॥१२॥

गाढा गढ कोट बुरज गजगीरिय, काठल़ सोव्रन महल कला।
झगमग नग हीर झरोखांय झखत, परवाल थभा प्रघला।
अघफर असमारण जारण पुर इदर, मगत खाचातारण मिटै।
लिछमरण दीवारण रारण बीलाड़ैय, रग सुजस दुनियांरण रटै।
जी रूपग सब दुनियारण रटै ॥१३॥

ऊचा ऐवास चवद खरण ऊपर, थभा कंचरण जोड़ थटा।
खरण खरण पर कल़स नगा मिरण खभाय, घरण वादल उतराद घटा।
लाला पुखराज पना मिल लूबाय, देखत सूबाय दोर दटै।
लिछमरण दीवारण रारण बीलाडैय, रग सुजस दुनियारण रटै।
जी रूपग सब दुनियांरण रटै ॥१४॥

कर कर चित्रांम तमांम अरणकल, वेहद छाजाय धनस वली।
हिलमी हुय काम साम थय हाजर, करण मोताहल़ रूप कली।
अन्नेकाय दांम लगा तिरण ऊपर, जालि़य गोखा होर जठै।
लिछमरण दीवारण रारण बीलाड़ैय, रग सुजस दुनियांरण रटै।
जो रूपग सब दुनियारण रटै ॥१५॥

कर कर छिडकाव अतर कसतूरिय, परमल़ पूरिय सैल पगा।
ऊडत्त अबीर फुहराय ऊपर, जाजम हाजर तेरण जगा।
गिलमा [छिव भर]त सुरगिय रगिय, अग [अपार उमग अ] ठै।
लिछमरण दीवारण रारण बीलाड़ैय, रग सुजस दुनियांरण रटै।
जी रूपग सब दुनियारण रटै ॥१६॥

सिंघासरण कनक जड़त नग सोभाय, गादो तकियाय रूप गिरणूं।
अन्नेक नकोब पुकारत आगेय, जैय जैय जपत लाख जरणूं।
बिरदावल़ पात अपाराय बोलैय, कवजरण लाखां दल़द कटै।
लिछमरण दीवारण रारण बीलाडैय, रंग सुजस दुनियारण रटै।
जी रूपग सब दुनियांरण रटै ॥१७॥

चमरां झपटाय लपट सूघाचड़, एम सुभट थट ओपवियू।
परगट वाखारण रटत भट पाथुव, जूनी कुलवट जोपवियू।
ऐसा आरभ दरस थट इदाय, जग मा बंदा अरणद जठै।

लिछमण दीवाण राण बीलाडैय, रंग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥१८॥

जाजम पिचरग रग बहु जाझिय, स्वेत चानणिय जेथ सदा।
राजत जिण सीस दलीचाय रेसम, मिसरू तकिया है उमदा।
सोभत पौसाक [अतर धोरा सज], जाणक चन्नण बाग जठै।
लिछमण दीवाण राण बीलाडैय, रंग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥१६॥

केसर छिडकाव अतर हुय कादोय, जांणक भादोय मास जला।
जाता जुग बात कबूहन जाणैय, पावै मद पात प्रगला।
हूकल रग राग रभ नाटक हुय, इद्र अखाडौ जाण अठै।
लिछमण दीवाण राण बीलाडैय, रग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सब दुनियाण रटै ॥२०॥

वसी सहनाय सतारस वाजत, त्रह त्रह तासा त्रबाल।
दुकडा मडदग उपग दमकाराय, क्रह क्रह बोलत करनालं।
बाजत नोसांण भेर सुर बकाय, लेख लेख मघवांण लटै।
लिछमण दीवाण राण बीलाडैय, रग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सव दुनियाण रटै ॥२१॥

पलटण चतुरग अनेकाय पैदल, गैदल हैदल खूर गजां।
असवारिय इन्द्र तणौ छक ओपम, धिन दिन झडा फरक धजा।
वरहासा पौड प्रथी पुड वाजत, फीटल सूमा बाक फटै।
लिछमण दीवाण राण बीलाड़ैय, रंग सुजस दुनियाण रटै।
जी रूपग सव दुनियाण रटै ॥२२॥

छप्पय

फटै वाक फैलियो, [हटै अदतो] हिंदवाणै।
मिटै अरा मद मांण, तेज सूकै तुरकाणै।
दटै ताप रिम दला, खटै प्रभता नव खडै।
वडा रटै वाखाण, विमल कव रोर विहडै।
जगदव स्याय हाजर जका, क्रोड पाप मिलिया कटै।
दीवांण लछो परखै दवग, समपै दत कीरत सटै ॥१॥

उपर्युक्त विशद वर्णन के अतिरिक्त कवि ने कुछ छप्पय दीवान के शौर्य को प्रकट करने वाले भी रचे हैं। उदाहरणार्थ एक छप्पय प्रस्तुत है, जिसका भाषा-सौष्ठव तथा ओज का उदात्त रूप अनुप्रासिक छटा के साथ विशेष आकर्षक बन पडा है, यथा —

छप्पय

भिडत मूछ मुख भ्रूह, चडत पौरस परचडह।
अडत सेन असमान, खिवत वीजल नवखडह।
रुडत भेर रिडि बब, सत्र दल उघडत सकै।
तेज झडत तुरकाण, धजा पग सेस धमकै।
इण रीत क्रीत राखण अमर, भाणव सुज्जस भीजियौ।
दीवाण करण दालद दफै, राण 'लिछम्मण' रीजियौ॥

इसके पश्चात् ५ त्रोटक छंद तथा १८ पद्धरी छद थे, जो अब खडित रूप मे उपलब्ध होते हैं। आगे १५ दोहों मे कवि ने जो बात कही है, वह विशेष दृष्टव्य है। कहते हैं कि एक बार जोधपुर के महाराजा को दिल्ली के बादशाह ने पूछा कि मारवाड में कितने घर सर्वाधिक धनाढ्य हैं। इस पर महाराजा ने उत्तर दिया कि सर्व प्रथम धनाढ्य घर तो रीयाँ के सेठ का है, दूसरा समृद्धिशाली घर बिलाडा के दीवान साहब का तथा तीसरे नम्बर मे जोधपुर का राजघराना आता है। यह किवदन्ती राजस्थान मे काफी प्रचलित है। इसी उपर्युक्त प्रसग से कवि ने अपनी बात शुरू करते हुए कहा है कि यदि वह रीयाँ के सेठ की याचना करे तब तो जाति दस्तूर के खिलाफ होगी, क्योंकि चारण कवि क्षत्रियो के अतिरिक्त किसी भी कौम की याचना नहीं किया करते। दूसरी बात यह कि वह जोधपुर के महाराजा को प्रसन्न कर पाये, इतनी करामात अथवा विभूति नहीं है। बिलाडा मे युक्ति और भक्ति दोनो का ही सुन्दर संगम है। वहाँ पर कवि गण बडे सम्मान और आनद से रहते हैं, यही सुन कर वह भी आया है। आगे कवि कहता है कि मोर कौनसी काव्य रचना सुनाता है, जिसकी वाणी पर प्रसन्न होकर इन्द्र उमडती-घुमडती घटाओं के साथ आकर बरसात कर देता है। यह तो देवेन्द्र का ही बड़प्पन है कि वह मयूर के मन की भावना को समझ लेता है। इसी प्रकार श्री चिमन कवि कहता है कि, "हे दीवान! तुम मेरे अतस् की आवाज को पहचान कर ही मेरी कद्र करना, जिस प्रकार मोर की वाणी पर इन्द्र प्रसन्न हुआ करता है। काव्य की अपेक्षा मेरी भावना पर अधिक गौर करते हुए सारी स्थिति को समझने की सुचेष्टा करना, बस यही अनुरोध है। अब जरा मेरे काव्य को भी परखिये।" इतना कहने के बाद आगे कवि ने यह भी कह दिया है कि "राजा बलि भी किसी युग मे इसी बिलाडा मे हुआ था और स्वयं भगवान ने वामनरूप धारण कर उससे जो महान् दान (त्रिलोकी का राज्य) प्राप्त किया था, ठीक उसी प्रकार मैं भी दिखने मे तो छोटा ही हूँ, किन्तु मेरा मन तो उसी प्रकार बड़ा है। तुम बलि के सिंहासन पर आसीन हो और मैं वामन-स्वरूप कुछ

चाह लेकर ही आया हूँ।" इस प्रकार तर्कपूर्ण युक्ति से अपने वाक्चातुर्य का प्रभाव जमाता हुआ कवि पूरे १५ दोहे कह देता है। दुर्भाग्यवश वे सभी दोहे समग्र रूप मे तो प्राप्त नहीं हो सके, अतः उनमे से केवल ६ दोहो को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है, जो इस प्रकार हैं —

दोहा

पातसाह दिल्लीपती, [पूछे घर] परवीन।
जोधापत कहियौ जदे, तीखू ऐ घर तीन ।।१।।
रिया सेठ घर है रिधू, दूजौ घर दीवांण।
एम पडूतर आखियौ, ज्यू तीजौ जोधांण ।।२।।
कवियण जाचै साह कूं तिको नही दसतूर।
जाचू पत जोधाण रौ, इसौ नही आकूर ।।३।।
बीलाडे दोहूं बणौ, जुगती भगती जोग।
रैणव नित सोरा रहै, 'लछा' कहै सब लोग ।।४।।
आयौ हूं इण वासतै, वाचे बिरद वखांण।
कहै अरज 'चिमनेस' कव, दूहा परख दिवाण ।।५।।
औडी ऊ[णत] आवियौ, चित्या वस 'चिमनेस'।
कवता त [ज भ] गवा किया, नह को लख्यौ नरेस ।।६।।
ज [स] करसू रैसूं जिलै बांध झूपडी बार।
हू छोटौ [क] वता विहद, तू मोटौ दातार ।।७।।
आयौ जाचण वास्तै, बलद्वारै बावन्न।
थो लुघता दीसत थनै, मूझ 'लछा' ऊ मन्न ।।८।।
मोर किसी कवता मुणौ, उण सुण रीझै इद।
ज्यू मो गुण सुण रीजिये, 'लिछमण' भाग बिलद ।।६।।

इसके बाद ग्रंथ का रचनाकाल प्रस्तुत करते हुए कवि ने एक दोहा कहा है, जिसके अनुसार स० १९४० वि० आषाढ़ कृष्णा १३ शनिवार के दिन इस ग्रंथ का समापन हुआ है, जैसे:—

दोहा

'उगणीसै चालीसै अख, आदू पख आसाढ।
सन्नीवार त्रयोदसी, 'चिमन' कलस [जस चाढ] ।।१।।'

इसके पश्चात् आशीष-रूप में ४ छप्पय और एक दोहा है। फिर सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी यज्ञों के वर्णन मे नाना प्रकार के खाद्यान्नों का वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ सात्त्विकी यज्ञ के लक्षण देखिये:—

छप्पय

घृत आटौ अत घणौ, जणौ जण ही ले जावै।
साकर बूरा सधर, चिप्र पकवान वणावै।
पुडिया फलका प्रगल, हुवै सीरा हुसियारो।
मिलै घणा मिसठाण, सखर लापसी सुधारी।
हर भक्त विप्र पूरण हुवै, जीमण कज आवै जती।
'लछमाल' प्रेम आसीस लै, तिको कहै जिग स्वातकी ।।१।।

इसी प्रकार राजसी यज्ञ का चित्रण भी देखने योग्य है, यथाः—

छप्पय

होवै अत हौकबा, वणै पैठा विगताला।
घेंवर लाडू घणा, जीमै ठाकर जुगताला।
पैडा बरफी पूर, दहीतरिया सुखदाई।
गिगनगाठिया गहर, मुदै बहु भात मिठाई।
अन्नेक भात भोजन अपल, सत बलराव समाजसी।
तपधार राण 'लिछमण' तपै, जिको कहै जिग राजसी ।।१।।

इसके आगे का अश अप्राप्य है तथा बाद मे एक पन्ने पर पुन ग्रथ का रचना-काल अकित है। यह ग्रंथ श्री चिमनजी के अतकाल से केवल चार वर्ष पूर्व की ही रचना है, अत इसका प्रौढ व सुष्ठु रूप होना तो स्वाभाविक ही है। इस प्रकार हमने देखा कि श्री चिमनजी कविया के तीनो प्रशस्ति-ग्रथ —(१) सम्मारा भूलणा, (२) प्रागराव-रूपक, तथा (३) लिछमण-सुजस-विलास— डिंगल-साहित्य मे अपने नमूने के प्रशस्ति पूर्ण विशिष्ट वर्णन-ग्रथ कहे जा सकते हैं।

(ङ) प्रकीर्णक काव्य—

प्रत्येक महाकवि के कृतित्व मे बडे-बडे ग्रन्थो के साथ न्यूनाधिक रूप मे प्रकीर्णक काव्य का भी अस्तित्व देखने को मिलता है। हमारे आलोच्य कवि श्री चिमनजी कविया ने भी जहाँ एक ओर बड़े ग्रन्थो का निर्माण किया, वहाँ दूसरी ओर पर्याप्त मात्रा मे प्रकीर्णक काव्य की भी रचना की। श्री चिमनजी कृत प्रकीर्णक काव्य मे कुछ तो ऐसे अनमोल नगीने बन पडे हैं, जो डिंगल-साहित्य मे अपनी विशिष्ट प्रदीप्ति को चिरस्थायी बनाये रखने की सामर्थ्य रखते हैं। कुछ रचनाएँ बहुत ही साधारण विषय तथा परिस्थिति से प्रभावित होकर लिखी जाने के कारण स्वभावतः हल्के स्तर की कही जा सकती हैं। अब हम उनकी फुटकर रचनाओ पर सक्षिप्त रूप में प्रकाश डालेंगे।

(१) ऊठ रा बखांण

डिंगल-काव्य मे ऊट व घोडो के बखान की परम्परा बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही है। राजस्थान प्राय रेतीला प्रान्त है और ऊँट रेगिस्तान का जहाज कहलाता है। उपयोगी वस्तु मनुष्य को सदैव प्रिय लगती है। कहा भी है कि —

'वस्तु न मीठी होत है, सब से मोठी चाह।
अमली मिसरी छड कर, आफू खात सराह ॥१॥'

वास्तव मे जो चीज विषम परिस्थिति मे सहायक होती है, वह स्वभावतः मानव-हृदय मे स्थान बना लेती है। राजस्थान शुरू से ही संघर्षों का केन्द्र बना रहा। त्याग और तपस्या के जीवन मे युद्ध एक आवश्यक अग था, जिसकी तालीम राजस्थान के प्रत्येक घर मे अनिवार्यतः दी जाती थी। प्राचीनकाल मे न तो मोटरें थीं, न हवाईजहाजें, न जेट विमान थे और न रॉकेट ही। एक दूसरे पर शौर्य का रौब डालना होता, तो युद्ध, यदि किसी की भूमि हडपनी होती तो युद्ध, यदि किसी से अपने पूर्वजो की धरती पुन. कब्जे मे करनी होती तो युद्ध, किसी सुन्दरी से विवाह करना होता तो युद्ध, किसी ने अपनी सीमा मे नगाडा बजा दिया तो युद्ध और यदि किसी बात पर 'हाँ' या 'नां' की जिद्द छिड गई तो युद्ध। मतलब यह कि जीवन युद्धो से भरपूर एक दुर्गम यात्रा थी, जहां पग पग पर शूल थे और उनके निराकरण हेतु, शस्त्र सचालन परम आवश्यक था। जब युद्ध इतना आवश्यक था, तो उसमे उपयोगी साधनों की भी कद्र बढनी स्वाभाविक थी। यही कारण था कि 'घोडो' और 'भडो' पर ही सत्ता का अस्तित्व कायम था। घोडो के साथ ऊट भी युद्ध की सुदूर यात्रा मे भार-वाहन करते तथा काम पडे ऊटो पर भी लडाइयां होती थीं। निर्जल प्रदेश मे घोडो की अपेक्षा ऊँट अधिक काम देता है। शान्ति के दिनो मे, भार ढोने मे, आवागमन मे, तथा हल चलाने आदि अनेक कार्यों मे ऊट अधिक उपयोगी होने से यहां के निवासियों ने ऊँट की प्रशसा मे कई लोकगीत तथा डिंगल-छद रच डाले थे। 'करसा', 'करहा', 'तोडडली', 'काछी करियो' आदि नामों से ऊँट की उपयोगिता तथा सुडौलता पर मुग्ध होकर यहां का लोकमानस झूम उठता था। राजस्थान के पश्चिमी भाग से लेकर उमरकोट (सिंध) तक ऊँटों का ही ठाट है। बरातें ऊँटों पर जाती हैं, अनाज आदि असबाब ऊँटो की कतारों पर ढोया जाता है, डकैतियां तक मे ऊँटो का ही सहारा लिया जाता है तथा सीमा के निकट सिपाही भी ऊँटो पर ही गश्त लगाते हैं। जब आज के युग मे भी ऊँटो की उपयोगिता इतनी है तो प्राचीन काल की तो बात ही क्या? सैकडो कवियो ने डिंगल एव पिंगल मे ऊँट व घोडों के बखान किये हैं। डिंगल-भाषा के लगभग सभी महाकाव्यों मे ऊँट व घोडो के बखान की बात यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो ही जाती है। इसके अतिरिक्त प्रकीर्णक काव्य में तो सैकडो की तादाद में ऐसे वर्णन मिल सकेंगे। राजस्थानी साहित्य मे ऊँट और घोडो की सुडौलता, उपयोगिता, नश्ल, साजसज्जा, स्वभाव और अंग-प्रत्यंग की उपमा, आदि विषयो को लेकर रचे गये काव्य पर शोध-कार्य किया जा सकता है।

इसी परपरा के अतर्गत् हमारे कवि श्री चिमनजी ने भी ऊँट व घोडो के बखान रचे हैं। ऊँट के बखान तो सिणधरी (जिला बाड़मेर) के रावल ठा० श्री बभूतसिहजी की प्रशसा मे रचित काव्य के अतर्गत् आते हैं। डिंगल मे ऊँटो व घोडों की तारीफ मे प्राय दानी व्यक्ति का नाम छद के स्थायी चरण मे आता ही है। श्री दौलतसिह सोढा के छदों मे भी यही बात है, यथा—

'सज कीरत काज धजाबध सोढोय, दौलतसिंघ जमाज दिये'।

उपर्युक्त पंक्ति प्रत्येक रोमकद छद का चौथा चरण बनती जायगी और जमाज (ऊंट) के बखान के साथ उसके प्रदाता का भी गुणगान होता रहेगा। ठीक इसी प्रकार महाकवि श्री चिमनजी कविया ने भी ठा० बभूतसिहजी के द्वारा प्रदत्त एक सुन्दर व सुडौल ऊंट के बखान रोमकद छदो मे रचे हैं, जो डिंगल-साहित्य मे तथा श्री चिमनजी की कविता मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। रीझ मे दिये हुए उत्तम नश्ल वाले उस ऊंट के रूप व गुणों पर लुभायमान होते हुए कवि की वाणी छंदों की आकर्षक ध्वनि मे झकृत हो उठी। कुल बारह रोमकद छंद, तीन छप्पय कवित्त, दो गीत तथा पाँच दोहे सिणधरी रावलजी की प्रशस्ति मे लिखे थे, ऐसा कवि के एक दोहे से ज्ञात होता है, यथा —

'बारै छद बखांणिया, तीन कवत इण रीत।
दुहा पाच कव दक्खिया, गुणजोड़ा दोय गीत ॥१॥'

किन्तु केवल एक दोहा, १२ छद तथा एक छप्पय ही प्राप्त हो सके हैं, शेष सामग्री नष्ट हो गई। जो कुछ अश प्राप्त हुआ है, उसे ज्यों का त्यों नीचे प्रकाशित किया जा रहा है —

दोहा

ऊठ धरा कछ ऊपना, तेज बरा गज तोर।
रावल दीधा रीझ रा, जस रा कोट सजोर ॥१॥

छंद रोमकद

छतअत्ता सजोर चकोर अछप्पल मोर जिसा छिब कोर मडै।
चहुं ओर इला वध तोर चहू चक, खैर दिये कव रोर खडै।
घण माकड ठोर दियताय घूमैय, मारग जाण लिगोर मपै।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ॥१॥
थलवाट हुवा कन धाट तणै थिर, घाट विधाताय आप घड़ै।
नलवाट नरैण निराट अनोखाय, धूरज थाट प्रचड धडै।

अरिया देय भाट उराट उथप्पैय, वेग छछोह सुघाट वपै ।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै ।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ।।२।।
थित जोड तणा कन राम तणै थल, जायाय काछण तोड जिकै ।
छल छोड रिमा दल घूम रछीजैय, तेजिय होय न मीढ तिकै ।
भफलोड उडताय पखिय भाफैय, जस्स कवेसर कोड जपै ।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै ।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ।।३।।
मतवाल कमाल वितड अमामाय, जै पग देवल मंड जिसा ।
अघला पण पड पहाड प्रमाणेय, अग भणू परचड इसा ।
विण सूड हसत्तिय चीरस वकाय, कोपविया नवखड कपै ।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै ।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ।।४।।
वणिया मतवाल् भाद्रव्विय वादल, कीध कमाल् कठोर कडूं ।
इण रीत कनाल सुडाल अनोपम, भाल सरावत लाख भडूं ।
प्रोहचाल् पचायण जेम पराकम, छात वडाल गिरद छिपै ।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै ।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ।।५।।
मुरगाण कथाण प्रमाणैय मैंगल, ईडर जाण आरीस इसा ।
बगलाण विचै ससियाण वहताय, कै कवियाण बखांण किसा ।
उडियाण इसा गुरडाण उतावल, हाक वगां फिरगाण हफै ।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै ।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ।।६।।
सव अग उमंग वखाण सरावत, ओपम थूह छै रग इसा ।
तण तग पलाण पडच्छ तयारिय, जे उतवग टामक जिसा ।
फरवा अत जग विभाडण फौजाय, देह सुचग अहीस दपै ।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै ।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ।।७।।
वड टोल तणा अत जगल वासिय, चाल भली रग चोल चखा ।
वहता मग मा रमभोल वजावैय, लागैय मोल इलोल लखा ।

गगरोल [घणै मद जोपत गैमर, थाट मचोल सुडोल] थपै।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ॥८॥

कधवट्ट सुघट्ट सिगोह कनोतिय, नट्ट छछोह नुघट्ट नली।
गजथट्ट पछाड़ण मैंमत गूजैय, ताघट वाटक जेम तली।
घुघरट्ट बधाय किया लट घूंघट, ताव सूमा घट लाग तपै।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ॥९॥

सिणगार सजाइय साखत सोव्रन, झूलाय रेसमदार झिलै।
गोरबध सुप्यार जवार गूथांणाय, घासियै तार जडाव घलै।
महवेच दातार अवीसैय मौजाय, धार विचार दालद्द धुपै।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ॥१०॥

[इण वेर लियौ जस घेर पुणौं इम], खेड अनै भटनेर खरा।
चहु फेर दुनी भड रग चडावैय, बेपख मेर सऊ बबरा।
धन देर किया कव के धनवतिय, जेर अरा समसेर जिपै।
मुहगा अत मूठ हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ॥११॥

जुगतेस हरौ बलराव विजाइयै, तेज वडै छतरेस तणौ।
'चिमनेस' कहै दस देस चवैजण, जस्स लियै वभुतेस घणौ।
धिनधिन्न दिनेस पता व्रदधारिय, थारिय कीत सुदेस थपै।
मुहगा अत मोल हजारिय मैंगल, ऐसाय ऊठ वभूत अपै।
जिय ऐसाय जूग वभूत अपै ॥१२॥

छप्पय

मैंगल लख मोलाय, व्रवै पाता वरदाई।
सजै झलूसां साज, सोव्रनां जडत सजाई।
लूवा रेसम लगाय, कीध रूपा नाकेला।
मोहरा हीर अमोल, रेसमा डोर रंगेला।
झलूसा साज वाजा झिलै, अदवा मांण उथप्पिया।
सिणघरी पती कीरत सटै, ऊठ वभूतै अप्पिया ॥१॥

उपर्युक्त छन्दों में एक राजस्थानी ऊंट की विविध मुद्राओं का सांगोपांग वर्णन किया गया है। एक सजोर, चकोर तथा मोर की तरह सुन्दर ऊँट जिसकी सुघट्ट नली, घोडे सा सीना, आरीसी के सदृश ईडर तथा मुर्गे की भांति सुहावनी गर्दन है। राह मे लंगूर की तरह छलांग भरने वाला, सिंह के सदृश पराक्रमी तथा बडे टोले मे से लाया गया वह रेगिस्तानी ऊँट कवि का मन मोह लेता है। वितुंड की भांति विशालकाय, देवल के खभो की तरह मजबूत पाव, भाद्रपद के बादल की तरह उमडता-घुमडता तथा परिपुष्ट पांवो के बीच मे इतनी छेटी कि दौडते समय मध्य भाग से खरगोश पार हो सके, ऐसा ऊंट सिणधरी के रावल ने श्री चिमन कवि को नजर किया। धाट, थली, कच्छ अथवा रामा के थल मे जन्म लिये हुए इस ऊट के गले मे गोरबद लटक रही है, तो दूसरी ओर घूघरमाल का रुचिर रव झकार कर रहा है। स्वर्णिम साखत, सुन्दर सजाई, रेशमी झूला, चांदी की नकेल, नगीनो से जडा हुआ मोहरा, रगीन रेशम की लूमे, पगों मे रमझोल आदि शृङ्गारो से सुसज्जित भली चाल वाला यह ऊँट बरबस ही दर्शको का मन मोह लेता है। तेज गति से दौडते समय यह ऐसा लगता है मानो आकाश मे उडने वाले पक्षियो को झांप रहा हो। इसकी चाल के आगे ताजी नश्ल का घोडा भी मात कर जाता है। इस प्रकार दुर्जनो के हृदय को दग्ध करता हुआ, माकडो की ठोर लगाता हुआ तथा मस्ती मे घूमरें देता हुआ यह सुडौल ऊंट जिस ओर से भी देखें, आंखो को आकृष्ट कर ही लेता है। ऐसा था वह रेगिस्तानी जहाज, जिसको सिणधरी रावल श्री बभूतसिंहजी ने महाकवि श्री चिमनजी कविया को इनायत किया था। रावलजी श्री बभूतसिंहजी महेचा गोत्र के राठौड़ थे, तथा इनके पिता का नाम बलराव (बलवतसिंहजी) एव पितामह का नाम जुगतसिंहजी था। ये अपने जमाने के बडे प्रसिद्ध दानवीर क्षत्रिय थे। सं० १९२९ वि० चैत्र शुक्ला ९ के दिन ये छन्द सिणधरी के निकटवर्ती क्षेत्र मे हाथमा नामक गांव मे लिखे गये थे, ऐसा कवि के लेख से सिद्ध होता है।

(२) घोड़ै रा बखांण

श्री चिमनजी कविया ने ऊंट के बखानो की भांति घोड़ो के बखान भी पर्याप्त मात्रा मे लिखे थे, ऐसा उनकी खडित कृतियो से ज्ञात होता है। जैसा कि कवि की जीवनी से पता चलता है कि उन्होने जीवन के कई वर्ष धाट एव पारकर जिलो मे भ्रमण करते हुए व्यतीत किये थे। स० १९३१ से १९३५ वि० तक तो एक प्रकार से वे लगातार वहीं पर घूमते रहे। उन्हीं दिनों मे गांव चेलार (उमरकोट इलाका) के निवासी श्री जूझारसिंहजी सोढा अपने इलाके दान-मान के लिये बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उस युग मे राज्याश्रित कवियो की बडी धूम थी और वही कवि समाज की दृष्टि मे श्रेष्ठ समझा जाता, जिसे रईशो व सरदारो मे अधिक सम्मान मिल पाता था। कवि की दृष्टि मे भी व्यावहारिक पक्ष बैठ चुका था, अतः कीर्ति के क्षेत्र मे अन्य सभी गुणो से दानशीलता को प्रमुख गुण बताना कवि का धर्म और कर्म बन चुका था। श्री अमान कवि का यह कवित्त उस जमाने मे बिल्कुल ठीक लगता था, कि कवि को कैसा व्यक्ति चाहिए? उदाहरणार्थ मनहर कवित्त पढ़िये —

कवित्त

'सुन्दर शरीर होय महा रणधीर होय,
वीर होय भीम सो भिरैया आठू जाम को।
गरुवौ गुमान होय भलौ सावधान होय,
शान होय साहिबी प्रताप पुज धाम को।
भनत 'अमान' जो पै मघवा महीप होय,
दीप होय वश को जनैया गुण ग्राम को।
सर्व गुण ज्ञाता होय जदपि विधाता हो, पै,
दाता जो न होय तो हमारे कौन काम को ॥१॥

इस प्रकार सोढा जूझारसिहजी की उदारता व काव्य-प्रेम की बातें सुन कर यह कवि वहाँ पर जा पहुँचा। ठा० जूझारसिह ने इस कवि की सच्चे हृदय से खूब आवभगत की तथा रवाना होते समय एक बढ़िया कीमती घोडा कवि को भेंट किया। कवि ने भी अपना फर्ज़ अदा करते हुए उस ठाकुर की कीर्ति मे घोडे के बखान छदोबद्ध कर दिये। प्रत्येक छंद की चतुर्थ पक्ति मे चेलार निवासी श्री जूंझारसिह का नाम आता रहता है। इस प्रकार दो दोहे, सात रोमकद छद तथा एक छप्पय कवि ने रचे थे, किन्तु अब केवल आधे ही बच पाये हैं। ऊँट वाले छदों की ही भाँति रोमकद छद मे वर्णित घोडे के ये बखान भी अपनी तरह के अनूठे छन्द हैं। वैसे उपमाएँ वगैरह परम्परागत ही दी गई हैं, किन्तु अनुप्रासिक छटा के साथ कवि की मौलिकता हर शब्द मे प्रकट होती है। इन छन्दों का कुछ नमूना देखिये:—

दोहा

सुरसत पैहला सिम्मरू, पाय लगू गणपत्त।
जस्स जपू जूझार रो, अम्बा ब्रवी उकत्त ॥१॥
हाथां वड सिरदार हर, जस बाता घण जांण।
भोम वगै रा है भिड़ज, कै उपना कठियांण ॥२॥

छद रोमकद

कठियाण धरा खित जाण अणकल, खेग नेपांण खधार खरा।
खुरसाण वखांण [अमो]ल वंगै खित, ढागिय खांण [ईरा]क धरा।
तुरगांण इसा उडियाण तेजाहल, जाण जुपै रथ भाण जेवा।
इण वार चेलार दातार अगजिय, आपैय खेग जूझार ऐवा।
जी आपैय बाज जूझार ऐवा ॥१॥

.... ।

.... , द्रब्ब हजार दलाल दियै।

रिझवार गुणां सिणगार सोढारौय, क्रोध रिमां दल सार केवा।
इणवार चेलार दातार अगजिय, आपैय खैग जूझार ऐवा।
जी आपैय बाज जूझार ऐवा ॥२॥

दल साल अरां अवदाल दीसताय, पाल कुरंद कहूं प्रघला।
विनता सुत हाल न पूगैय वैहत, चाल छछोह मनूं चपला।
सुखपाल सोरा अत वाल सिरोमण, आठुय ओपम ढाल ऐवा।
इण वार चेलार दातार अगजिय, आपैय खैग जूझार ऐवा।
जी आपैय बाज जूझार ऐवा ॥३॥

.... ।
.... ।
.... ।
इण वार चेलार दातार अगजिय, आपैय खैग जूझार ऐवा।
जी आपैय बाज जूझार एवा ॥४॥

नखवट्ट उलट्ट कटोर निरक्खैय, आब भणू घट उद्धरियां।
नट जाण कुल्नट्ट भरंतायै नाचत, कै लट घूघट यू करिया।
नुघटा नलवट्ट सुघट्ट अनोखायै, है थट गाहट झट्ट हेवा।
इणवार चेलार दातार अगजिय, आपैय खैग जूझार ऐवा।
जी आपैय बाज जूझार ऐवा ॥५॥

.... ।
.... ।
.... ।
इणवार चेलार दातार अगजिय, आपैय खैग जूझार ऐवा।
जी आपैय बाज जूझार ऐवा ॥६॥

.... ।
.... ।
मैहमा सुण थारिय अवियो मागण, कीत अपारिय तूझ कैवा।
इणवार चेलार दातार अगजिय, आपैय खैग जूझार ऐवा।
जी आपैय बाज जूझार ऐवा ॥७॥

इन छन्दों के आगे का छप्पय पूरा प्राप्त नहीं हो सका है, केवल प्रथम चरण 'सोढौ कुळ सिणगार' इतना ही स्पष्ट दृष्टव्य है। इस प्रकार घोड़ों के बखानो के साथ दानवीर की भी सुन्दर महिमा गायी गई है। आज चेलार निवासी ठा० श्री जूझारसिंह तो इस ससार मे नहीं हैं और न इन छन्दों के प्रणेता स्वय कवि ही; तथापि काव्य की ये कड़ियां हर युग मे अपनी सबल झंकृति से वातावरण को गुजायमान करती रहेगीं। इसीलिये किसी कवि ने ठीक ही कहा है, कि.—

दाता ने कवि को दिया, कवी गया सो खाय।
कवि ने दाता को दिया, जाते जुगे न जाय।।

इसी भाव से अनुप्राणित राजस्थानी का यह दोहा भी कितना सार्थक है, कि —

कोट खिसै देवल डिगै, व्रख इंधण हुय जाय।
जस रा आखर 'जेहिया', जाता जुगा न जाय।।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त इस कवि ने कुछ दानशीलता की प्रशस्तिपूर्ण फुटकर रचनाएं भी लिखी हैं, जिनमे अधिकांश तो जीवित व्यक्तियों की हैं तथा एक रचना दिवगत व्यक्ति के प्रति श्रद्धाञ्जलिपूर्ण 'मरसिया' है। अब कुछ चमत्कारपूर्ण प्रशस्तियां अवलोकित कीजिये।

(३) सोढै जालमसिंघ रा छन्द

सोढा जालमसिंह थाट जिले के सलामकोट का निवासी था। इसी के आग्रह पर श्री चिमनजी ने 'सोढायण' ग्रन्थ की रचना की थी, जैसा कि कवि ने सोढायण मे कहा भी है—'जोड़ कराई जालमैं, दांन पांण दातार'। श्री जालमसिंह अपने समय का अत्यन्त प्रभावशाली, उदारमना, काव्य-प्रेमी तथा बहादुर व्यक्ति था। उसके आचार-विचार से प्रभावित होकर कवि ने 'सोढायण' के अन्त मे दिये छप्पयो के अतिरिक्त कुछ दोहे तथा आठ दुहालों का एक 'सपंखरो' गीत भी रचा था। कवि के द्वारा लिखित वह रचना अब इतनी जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है, कि केवल एक ही दोहा पूर्ण रूप से मिलता है, जो इस प्रकार है:—

'सांभल कीरत देस मे, आवै कवी अपार।
सोढै 'जालम' सीरखौ, दूजौ नह दातार'।।

इसके अतिरिक्त कवि ने इस गुणवान क्षत्रिय की प्रशसा मे 'विधांनीक जथा' से युक्त ४ रेंणकी छंद और एक दोहा भी रचा था, जो प्राप्त हो गया है। इन चारो छन्दों मे श्री चिमनजी ने कवि, अश्व, तलवार एव योद्धा के विभिन्न पर्याय-शब्दों की सानुप्रासिक पुनरावृत्ति की है। 'विधांनीक जथा' की यही रीति है कि जो शब्द एक पक्ति मे जिस क्रम से आ जायें, वे उसी क्रम से छन्द की अन्य पक्तियों मे भी पर्याय रूप मे आते रहे। ऐसी रचना कवि के अतुल शब्द-भंडार की परिचायक कही जा सकती है। वैसे इस रचना मे

भाव-पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष की ही प्रधानता रही है, तथापि उसका अपना विशेष महत्व है। एक पंक्ति मे जहां दो विश्राम आते हैं, तो दोनों में ही उपर्युक्त चारो ही के पर्याय-वाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार इस रचना मे कवि, अश्व, कृपाण तथा योद्धा इन चारो के चौवीस चौवीस पर्यायवाची शब्द आये हैं। यह कार्य किसी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान का ही हो सकता है, अन्य का नहीं। रचना छोटी होने से हम उसे ज्यो की त्यो प्रकाशित कर रहे हैं।

छंद रेंणकी

समजण धज तेग अरा-उरसालण, कहण उडण रुक भीच कनै।
नीपण हय सार अनम घड नामी, मगण सुगण खग जोध मनै।
पाथू अस धूप विकट दल् पालण, सकव तेज [सल सुहड] सिरै।
जगमलहर सोढ चतर विध 'जालम', कहर निजर भर परख करै।
जी कहर निजर भर परख करै ॥१॥

कवियण केकाण त्रजड भड कायम, जसकर सिधव विजड जुटै।
ईहग वरहास दुजड जुध आफल्, कव कूदण वढ प्रसण कटै।
लोभी अँतकरण धार जसलेयण, वाचक धज हण दांन वरै।
जगमलहर सोढ चतर विध 'जालम', कहर निजर भर परख करै।
जी कहर निजर भर परख करै ॥२॥

जाचक साकुर चंद्रहासा जूटण, कहण विडग खग भाण कला।
रैणव तोखार रूक रग राखण, पात जगम खग भड प्रगल्।
दूथी ऊडड खडग रिमदोटण, हेतव धज खग वैर हरै।
जगमलहर सोढ चतर विध 'जालम', कहर निजर भर परख करै।
जी कहर निजर भर परख करै ॥३॥

सोभाकर वाज नराजा सोहड, वेपण ताजी [ठे]ल वडा।
दाखण गुण भिजड़ सुजड धनदेयण, गढव असव वढ तोड़ गडा।
भाणव तेजाल कवाण सोभड, पात पथा खग ध्राह परै।
जगमलहर सोढ चतर विध 'जालम', कहर निजर भर परख करै।
जी कहर निजर भर परख करै ॥४॥

दोहा

सकव धजा खग सोहडा, कहण उडण खग क्रोध।
'चिमन' भणै पारख चतर, 'जालम' मालम जोध ॥१॥

(४) राणॅ उमेदसिंघ रा छंद

राणा उम्मेदसिंह वाव ठिकाने (पालन राज्य) का ठाकुर था। यह भी उस इलाके का प्रसिद्ध दानवीर तथा काव्य-रसिक व्यक्ति माना जाता था। श्री चिमनजी वाव ठिकाने मे कुछ समय तक रहे थे और वहीं पर उन्होने जसुराम-राजनीति' ग्रन्थ की नकल तैयार की थी—ऐसा उनके द्वारा लिखित प्रमाणो से सिद्ध होता है। गुणी व्यक्ति चाहे कहीं भी चला जाय, उसके गुण-सौरभ पर रीझने वाले मधुकर मिल ही जाते हैं। उर्दू के मशहूर शायर अकबर ने ठीक ही कहा है कि'—

'कमी नही है कद्रदाँ की 'अकबर',
करे जो कोई कमाल पैदा।'

इसी भाव को लेखक ने राजस्थानी के एक दोहे मे इस प्रकार व्यजित किया है —

'गुण सौरभ जिण मे गहर, रुकै न बाधक रीत।
भवर पारखू भेटसी, पाल हियं री प्रीत' ॥१॥

[शक्तिदान कविया]

इस प्रकार श्री चिमनजी की काव्य दक्षता तथा सभा-चातुरी से प्रभावित होकर वाव के राणा श्री उम्मेदसिंह चौहान ने उनका अत्यन्त सम्मान किया। राजा, रईस, कवि को धन की भेंट देते थे, तो 'कवि की भेट कवित्त कै दोहा' उन्हे भी मिलती थी। यहाँ भी यही हुआ और कवि ने उमग मे आकर बरसात के रूपको सहित रेंणकी छन्द रच डाले, जिनमे उम्मेदसिंह को इन्द्र से भी बढ़ कर दानी कह दिया। वैसे तो यह अत्युक्ति है ही, कि इन्द्र तो वर्ष भर मे केवल तीन महीने ही बरसात करता है, पर राणा उम्मेदसिंह तो बारहों मास धन वृष्टि करता ही रहता है। इसी भाव से ओतप्रोत एक दोहा तथा कुछ छन्द थे, किन्तु दुर्भाग्यवश अब केवल एक दोहा तथा ४ रेंणकी छन्द ही उपलब्ध होते हैं। इतने लघु आकार मे भी कवि ने बरसात के रूपक को जिस सागोपांग ढग से निभाया है, वह वास्तव मे स्तुत्य है। शोभा रूपी दामिनी का दमकना, यश-रूपी घोर से अन्तरिक्ष का गुञ्जायमान होना, प्रभा-रूपी सरिताओं का विश्व के नव खडो मे कल-कल निनाद करना, सुकवियो-रूपी हरियाली का छा जाना, कतिपय दिग्गज कवि-रूपी तरुओं का शोभायमान होना तथा उनका हर्ष-विभोर होकर फूलना, धन एव सौजन्य-रूपी सागर का लहराना, धेनु-पय रूपी अमृत का पान करने हेतु उक्त सागर मे अनेक गुणी-आढों का तैरना आदि रूपक वास्तव मे हृदय को छूने वाले तथा मौलिकता से ओतप्रोत हैं। रचना छोटी होने से पाठकों के रसास्वादन हेतु उसे ज्यों की त्यों उद्धृत कर रहे हैं, यथा—

दोहा

इद्र घटा घण ऊमँडै, त्रण मासा वरसात।
अवचल राण उमेदसी, प्रग्गल ध्रवै सुपात ॥१॥

छंद रेणकी

इदर कर जोर घटा घण आफल, काठल काजल रग कियूं।
वलियौ वरसात वलोवल वादल, रलतल जल थल रेलवियू।
खलकत परनाल खाल इल खलहल, हलवल लूहर विखम हरै।
चावौ उम्मेद छात चहुवाणा, कर राणौ वरसात करै।
जी कर मौजा वरसात करै ।।१।।

चहुंदिस सोभाग दामणी चमकै, दमकै इदर रूप दला।
घरहर गयणाग लाग जस घोरा, हलवल कव जस वरज हलां।
तपधर सारग सुपाता तूठौ, वूठौ सुरनर दान वर।
चावौ उम्मेद छात चहुवाणां, कर राणौ वरसात करै।
जी कर मौजा वरसात करै ।।२।।

खलहल नदियाण प्रभा नव खडा, भलहल सेहर थाट भडा।
कलहल सुर मोर राग रग हूकल, अरदल मूमा [मूल] अडा।
रूपग जसवास धिनो मनरगिय, धर पर सुरपत रूप धरै।
चावौ उम्मेद छात चहुवाणा, कर राणौ वरसात करै।
जी कर मौजा वरसात करै ।।३।।

वहला हरियाल सुपाता बौरग, कव तर केता सुजस करू।
फूलत पिचरग मदीला फावत, घण सायर जल आथ घरूं।
दूजत घण धेन क्रीत पय दाखत, तज दालद कव आड तिरै।
चावौ उम्मेद छात चहुवांणा, कर राणौ वरसात करै।
जी कर मौजा वरसात करै ।।४।।

(५) श्री परतापसिंघ रा छंद

हमारे आलोच्य कवि श्री चिमनजी ने श्री जूझारसिंह सोढा तथा सिणधरी रावलजी श्री अमृतसिंहजी के द्वारा दिये गये घोड़े व ऊँट के अनूठे वखानों की तरह एक और रचना लिखी थी। उनके द्वारा लिखित एक खडित प्रति से पता चला है कि उन्होंने श्री प्रतापसिंह नामक किसी उदार क्षत्रिय की प्रशसा मे ७ रोमकद छद, ५ दोहे, ७ दुहालों का एक सपखरा गीत तथा १ छप्पय रचे थे। बडे खेद का विषय है कि इतने छदों में से केवल एक प्रथम छद ही समग्र रूप मे प्राप्त हो सका है, शेष सामग्री प्राय: विनष्ट हो चुकी है। प्रथम छद तथा आगे के काव्यांशों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये छद भी किसी ऊँट ही के बखान मे रचे गये थे। प्रथम छद इस प्रकार है —

छंद रोमकंद

'मदवा मतवाल़ सुडाल अमोलख, कोसांय रोल़ चकोल करै।
झिलता पत हाल [पुछा] लग झाटक, साकुर ओपत व्रग्ग सिरै।
पंथ रा तत्रकाल भ्रिगाल न पूगैय, ईढ हरी रथ ओपविये।
सुणियौ जस जाप नरां पत सूरज, दांन इसा परताप दिये।
जी दान इसा परताप दिये ॥१॥

(६) सोढै अणंदसिंघ रा मरसिया

मानव-हृदय की सहज, स्वाभाविक एव रसभरी अभिव्यक्ति का नाम ही काव्य है। जिस व्यक्ति या वस्तु से हृदय का लगाव होता है, उसके सौन्दर्य तथा गुणों की सराहना स्वभावगत हो ही जाती है। प्रिय वस्तु के बिछुडने पर अतस मे एक मीठी याद की सवेदना घुलती रहती है, जिसे कवि अपनी वाणी मे चित्रित कर हलकापन महसूस करता है। किसी गुणवान या प्रिय व्यक्ति की याद मे हृदय के शोकोद्गारों को काव्य-बद्ध करने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। अग्रेजी साहित्य में भी 'एलीजी' विषयक कविताएँ मिलती हैं, उर्दू मे 'मरसिये' लिखे ही जाते हैं, तथा हिन्दी मे भी शोकगीतों के नाम से रचनाएँ मिलती हैं। यह प्रथा मनुष्य स्वभाव की द्योतक है। इसी भावना से ओतप्रोत श्री चिमनजी कविया ने भी एक सोढा के आकस्मिक निधन पर 'मरसिये' लिखे थे। श्री आनदसिंह सोढा घाट जिले के केरटी नामक गाँव का निवासी था। वह अपने समय का प्रसिद्ध परोपकारी, उदार, शूरवीर, काव्य-प्रेमी तथा कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति था। उसके दुखद देहान्त पर पूरे क्षेत्र में शोक का वातावरण छा गया। स्वयं कवि के हृदय पर भी इस व्यक्ति की मृत्यु का विषम आघात पहुँचा। इससे हृदय के वे करुण उद्गार कविता बन कर बह चले। एक सोरठा, आठ छप्पय तथा दो दोहों मे आनदसिंह के मानवीय उदात्त गुणों का स्मरण करते हुए हार्दिक शोकोद्गार प्रकट किये गये हैं। अंत में ज्ञान तथा धर्म दर्शन-सम्बन्धी विचारों की चेतना होते ही कवि विलाप को छोड कर ज्ञान से हृदय को सान्त्वना देने की बात कहता है। स० १९३५ वि० श्रावण कृष्णा अमावस्या गुरुवार के दिन श्री आनंदसिंह सोढा का देहान्त हुआ था। उन्हीं दिनों की यह रचना है तथा सादगी व मौलिकता से ओतप्रोत है। रचना छोटी-सी है, अत पाठकों के रसास्वादन हेतु ज्यों की त्यों प्रस्तुत कर रहे हैं, जैसे:—

सोरठा

सिगल़ी वातां साव, जिण मिलता आतो जरू।
अणद उतारै आव, मग्गांणी देवां मुगट ॥१॥

छप्पय

जिण 'अणदै' जोर सू, महा जस मारग भमियो।
जिण 'अणंदै' जोर सूं, नहीं किण आगल़ नमियो।

जिण 'अणदै' जोर सूं, सत्रा घण दीना संका।
जिण 'अणदै' जोर सूं, काम सोय कीना वका।
वैरियां तास देयण वडां, भाया राखण भाव रे।
केरटी गाम देवा तिलक, ऐ केसांणो आव रे ॥१॥
जिकै 'अणद' जीवतै, दांन लाखा द्रब दीना।
जिकै 'अणद' जीवतै, कवा धनवती कीना।
जिकै 'अणद' जीवतै, धाट अजस धारायौ।
जिकै 'अणद' जीवतै, सूर वाघेल हरायौ।
जीवतै काम कीना जिकै, नही हुवै अवरा नरा।
ा ग······पाल मोटै·········ौ, घण ·········वै घरा ॥२॥
मूठा मागणियार, [लखा] कुण पारख लेसी।
कव मूठा केतान, दान घोडा कुण देसी।
मूठा बधव मूल, अकल देसी कुण आंठौ।
सगा समधी सैण, लेखता सब ही लाठौ।
थल मांय इता मूठा थिया, 'अणद' पखीणा आज रे।
उतारै आव 'अणदा' अभंग, कवां सुधारण काज रे ॥३॥
कवियाणां कीत री, मौज कुण करसी मोटी।
मुस्साफर मुलक रा, जिका कुण देसी रोटी।
सबलां खाग संभाय, दलां कुण लेसी दावौ।
बधाणी बापडा, मागसी किण सूं मावौ।
जाणियौ आप मन मा जकौ, कांम धरम रौ सो कियौ।
हाथ रौ करन रेवा हरौ, पाट सरग रै पौचियौ ॥४॥
पडे काम सुरपत्त, विसन कोय वात विचारी।
धुर्जट पातर ध्यान, सला कोय पूछी सारी।
वीसरयौ ब्रहमाण, ब·····ां······ उण बकता।
······················, अकल नह आवी उकता।
परक्रम आप भूलौ परौ, कियौ न आछौ कामजी।
खोसियौ केम मोटौ खत्री, रांक तणौ धन रामजी ॥५॥
राजा भोज मर गियौ, परीछत नायौ पाछौ।
मानधाता मर गियौ, इलापत हूतौ आछौ।

दरजोधन मर गियौ, जिकै महाभारथ कीनौ।
रामण पग मर गियौ, लक जिण जीते लीनौ।
अनाद काल चलगत इसी, कबहू सोच न कीजिये।
कलपना किया हूसे कहा, राखै जेम रहीजिये ॥६॥

राम राम सब करौ, मोह की सगत तोडौ।
करौ धरम को काम, जीव को बंधण छोडौ।
हाय हाय मत करौ, भेद ले करौ भलाई।
भ ·· ··· ·· जाप स ·· ····, ······· ा य ········· ना भाई।
जोख [म्यौ मरद] 'अणदै' जिसौ, भव बधण तज भूल है।
मत करौ सोच दाखै 'चिमन', वाय व्रच्छ के फूल है ॥७॥

सुरगापुर पौचियौ, जोवतै सोभा लीनी।
दान हजारा दे'र, केरटी ऊजल् कीनी।
आप गयौ सुरलोक, जगत मे कीत वचाणी।
अमर नाम कर गयौ, जोत मा जोत समांणी।
हेत सू भूप मिलतौ हसे, गुणियण कीरत गावसी।
कीरती भणै 'चिमनौ' कवी, 'अणद' वल् कद आवसी ॥८॥

दोहा

स्रामण उगणीसै समत, वद पख नै गुर वार।
तिथी अमावस थिर तरण, 'अणद' गयौ हर द्वार ॥१॥
विखधर पैतीसै वरस, भूप थियौ सुर भाल।
सरगा पूगौ साख रिव, 'अणदौ' बिरद उजाल् ॥२॥

इस प्रकार उपर्युक्त मरसियों में शोक-गीत के साथ नीति तथा ज्ञान का शुभ सदेश भी सुनाई पडता है। पौराणिक काल के उदाहरणों से पुष्टि करते हुए कवि ने मानव-शरीर की क्षणभगुरता की ओर स्पष्ट सकेत किया है। सांसारिक प्रपचों के आघात-स्वरूप घुट-घुट कर मरने की अपेक्षा 'रखै ज्यों प्रभू त्यों खुशी मे रहन्ना' की धारणा ही अधिक लाभप्रद व श्रेयस्कर है। इसीलिये कवि ने इन मरसियों मे जीवन को पवन रूपी पेड का एक पुष्प मात्र माना है, जो किसी भी क्षण कुदरत के थपेडों से झड़ कर विखर जाता है। अत 'कळपना कियां हूसे कहा, राखे जेम रहीजिये' वाली वात मे ही सार है और बाकी सब करुण-क्रन्दन निस्सार है। उपर्युक्त मरसियो में अपने ढग की एक विशेष वात है, जो अन्य फुटकर रचनाओं से भिन्नता रखती है। अब हम कवि द्वारा रचित दो-तीन फुटकर डिंगल गीत प्रस्तुत कर रहे हैं।

कल इण वार अवतार जैसी कला,
जगत संसार नै झूठ जाणै।
गहर घण लगावै [धुनी] गुर ग्यान री,
एक भगवान री सुरत आणै ॥३॥
मुकन नरसग जोगद सिरखै मतै,
धरा असमान विच जोगधारी।
आज 'हुकमेस' दस नाम रौ उजागर।
भारथी लियै सो भेखधारी ॥४॥

दोहा

भेख उजागर भारथी, साजै जोग सुप्यार।
कव 'चिमनौ' कीरत करै, दिल हुकमौ दातार ॥१॥

(१०) जोधपुर री वसावळी

श्री चिमनजी कविया ने जोधपुर के महाराजा श्री तखतसिंहजी तथा राजकुमार श्री जसवतसिंहजी (द्वितीय) जो कवि के समकालीन थे, से सूर्य वश की समस्त पीढियों को ठेट सूर्य और उसके पिता, पितामह एव प्रपितामह तक का पौराणिक वर्णन किया है। पुराणों के अनुसार परमेश्वर के पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्मा के मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के सूर्य, सूर्य के वैवस्तमनु और वैवस्तमनु के इक्ष्वाकु हुए। इसी इक्ष्वाकु के पीछे इक्ष्वाकु-वश चला जिसमें राठौडों की शाखा मिलती है। यहां पर कवि ने दो छप्पयों में तो मगलाचरण तथा परिचय मात्र व्यक्त किया है तथा आगे 'तपै भांण तखतेस' से प्रारम्भ करते हुए पूरे वश-वृक्ष की नामावली चित्रित की है। कुल १४ छप्पयों में से प्रथम दो में मगलाचरण व विषय-महिमा तथा अन्तिम दो में सूर्य महिमा का गान किया गया है, शेष १० छप्पयो में राठौड़-वश की सम्पूर्ण पीढ़ियां वर्णित करते हुए कवि ने अपने ऐतिहासिक तथा पौराणिक ज्ञान का स्पष्ट परिचय दिया है। प्रथम दो छप्पयों में मगलाचरण की स्तुति तथा जोधपुर नरेश की महिमा का उल्लेख इस प्रकार है:—

छप्पय

नमो विसभरनाथ, नमो माता सरसत्ती।
नमो अजोनी ईस, नमो दाता गणपत्ती।
नमो चडका माय, विगन व्यारणी विकट्टा।
नमो सु भैरवनाथ, देण गुण रीज दपट्टां।
हर ब्रम ईस सुनमुख हुवौ, भेद बतावौ भाणवा।
तखतेसनद कवरौ तिलक, बुध मम कहे वखाणवा ॥१॥

जबर नग्र जोधाण, भाण तखतेस भलाहल।
मंडप गढ महराण, वजर असमाण महाबल।
ससि नखत्र ग्रह सूर, राज वसा महाराजा।
सजै क्रीत सिणगार, वजै चत्रकूटा वाजा।
हिंदवांण भाण विजमलहरी, विकट वडप्पण वेस रौ।
पाटवी कवर 'जसवत' पणा, तरण तेज 'तखतेस' रौ ॥२॥

इसके पश्चात् महाराजा श्री तखतसिंहजी की पीढियां शुरू होती हैं यथा—

छप्पय

तपै भांण 'तखतेस', 'मान' 'गुमनेस' महाबल।
'विजै' 'वगत' 'अभमाल', 'अजौ' 'जसराज' अणकल।
'गजन' 'सूर' गुणग्राग, 'वडौराजा' वरदाई।
'मालदेव' 'गगदेव', 'वाग' नित लेण वडाई।
'सूजाण' राव 'जोधौ' सरस, 'रिडमल' 'चूडै' जीह रौ।
'वीरमौ' 'सलख' 'तीडौ' विकट, 'छाडौ' 'जालणसीह' रौ ॥१॥
'कनैपाल' 'रायपाल', 'धुहड' 'आसथान' जसधर।
मयद 'सीयौ' महाराज, 'सेतरामौ' भड सद्धर।
'वरदाई' न विसेक, जैकस 'जयचद' जपीजै।
'दिजैचद' 'अभैचद', चावौ 'अजैचद' चवीजै।
'बबधरम' भूप श्री 'पुज' बर, 'भारथ' अरा विभाडणौ।
'तोगसेन' कहू 'ग्यानपत्त' तणौ, च्यार पखा जल चाडणौ ॥२॥

इस प्रकार उपर्युक्त वंश-माला 'सूरजप्रकास' में दी हुई वंशावली से पूर्णत मेल खाती है, केवल एक स्थान पर विवाद ठहरता है। यहां पर चिमनजी ने तो सेतराम का पिता वरदाईसेन माना है और वरदाईसेन को जयचन्द का पुत्र माना गया है। दूसरी ओर 'सूरजप्रकास' में सेतराम का पिता सेन तथा सेन का पिता वरदाईसेन को माना है जो जयचन्द का पुत्र था। ये प्राचीन काव्यों के आधार पर उल्लिखित नाम हैं, जिनमें अर्थ-वैभिन्य के कारण भी अन्तर रह सकता है। वरदाई तथा वरदाईसेन को एक ही मानना उचित है, क्योंकि दान-पत्रों के अनुसार शुद्ध वंशावली[1] मे भी वही क्रम मिलता है जो कवि ने यहां पर चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त राजा पुज के दादा तथा भरत के पिता तोगसेन के पिता का नाम चिमनजी ने 'ग्यानपत्त' लिखा है जब कि 'सूरजप्रकास' में

[1]सूरजप्रकास—स० श्री सीताराम लालस, भाग ३, परिशिष्ट ६ पृ० ८४

(७) सोढै दुरजरासालरौ गीत

श्री दुर्जनसाल सोढा धाट इलाके के काटिये नामक गांव का निवासी था। इसके पिता का नाम चदा (चद्रभांरा) तथा पितामह का नाम भारा था। गीत से ऐसा प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति अपनी हैसियत से कई गुना अधिक दानी था, अतएव कवि ने उसकी पवित्र भावना से प्रभावित होकर उस क्षत्रिय को एक तीर्थ-स्वरूप मान लिया। इस गीत मे श्री दुर्जनसाल सोढा के चारु चरित्र का तप प्रकट होता है। यद्यपि गीत मे दी गई उपमाएँ अतिशयोक्तिपूर्ण ही हैं, तथापि उस व्यक्ति के असाधाररा आचार-विचार की द्योतक अवश्य हैं। अनुमानत यह रचना स० १६३१-३५ वि० के बीच की होनी ठहरती है। कुल सात दुहालो मे रचित वह 'मिस्र वेलियो' गीत इस प्रकार है:—

गीत

कासी केदार जाय के पोहकर, नावै केक गगोदख नीर।
प्राछत गमरा पाल कव पाता, परसौ हेक 'दुजौ' गुर पीर ॥१॥
बदरोनाथ पहाड बिखम्मौ, चररा थाकिया नीठ चडै।
परगट ज्यं रै स्याय [पिथोरौ], जाच हमे नव निद्ध जुडै ॥२॥
ज्वालामुखी उतरपथ जावै, नर केयक जावै जगनाथ।
कीरत एक 'दुजै' री करता, सह तीरथ कीना इक साथ ॥३॥
सेतबध रामेसर परसौ, परसौ भला सरसती प्राग।
चररा 'दुजै' रा वदै सुभच्चित, भाल जका चौ मोटौ भाग ॥४॥
वड दातार भारगहर वाचा, साचा नरा करै नित स्याय।
काचा करम अनेका कापै, सोढौ आपै दान सवाय ॥५॥
मोटौ धाम अजोध्या मुथरा, छेत्रकरू परसौ रिराछोड।
मन रो साच सिमरलै 'चिमना', तन रौ सगठ 'दुजौ' दै तोड ॥६॥
आलस म कर काटियै आवौ, पावौ सू नर रिजक अपार।
चंदा सुतन भेटिया चाररा, द्रब देवै वकौ दातार ॥७॥

(८) सोढै लालजी रौ गीत.

श्री लालसिंह सोढा सियार गांव का निवासी था। इसके पिता का नाम श्री सगारसिंह तथा पितामह का नाम श्री गिरधरसिंह था। स० १६३१ वि० पश्चिमी राजस्थान मे भयंकर अकाल था, उस समय उक्त लालसिंह सोढा ने दीन-हीन व्यक्तियों की खूब सेवा की थी। उसके हृदय की सच्चाई तथा मधुर वर्ताव से प्रभावित होकर कवि को 'दिल ऊजळ मोटौ दातार' कहना पडा। यह पांच दुहालों का गीत स० १६३१ वि० मे ही रचा गया है। दूसरा तथा पांचवा दुहाला 'सोहरगौ' गीत तथा शेष वेलियो गीत के लक्षरग होने से इसे भी हम 'मिस्र वेलियो' गीत का उदाहररग ही मानेंगे। गीत इस प्रकार है:—

गीत

साभलज्यो हेक वात सिरदारां, कव कीरत दाखै अत कोड।
मन मां हुवा रहै केइ मोटा, हुवै न कोय 'लाल' री होड ॥१॥
सुतन खंगार नागडौ सूरज, सोढ उजालौ साख सिरै।
बीजा असतो सूम बापडा, किम 'लालै' सू ईढ करै ॥२॥
गिरधर हरौ पालगर गुणिया, सुणियौ नाम जगत मे सोभ।
प्रसण जिके हलका हुय पुलिया, 'लालै' सुजस लेण रौ लोभ ॥३॥
धणी सियार वडौ धनवती, व्रन खट रौ पालग इणवार।
दीठौ 'लाल' असत बीह डरिया, दिल ऊजल मीठौ दातार ॥४॥
तातीमूंद वरस इगतीसै, कायर बीजा सोच कियौ।
चारण सरण राखियौ 'चिमनौ', 'लालै' इण पुल सुजस लियौ ॥५॥

(६) श्री हुकमभारती बाबै रौ गीत

जैसा कि कवि के जीवन-परिचय मे कहा जा चुका है. कि वे भगवे वस्त्र धारण कर 'स्वामी-भेष' मे प्रवेश कर चुके थे। बाद में कुटुम्बियो के अत्यधिक आग्रह पर उन्होंने 'भेष' त्याग भी दिया था, तथापि उनकी मनोवृत्ति नाथपथ, दशापथ आदि के अनुयायी स्वामी-सम्प्रदाय की ओर हमेशा लगी रही। श्री हुकमभारती बाबा जो समर्वतः कवि का 'भेख-गुरु' था, उसकी स्तुति में चार दुहालों का एक 'बडौ सांणोर' गीत तथा एक दोहा रचा था। साहित्यिक दृष्टि से तो इस गीत का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, किन्तु कवि के गुरु अथवा श्रद्धेय बाबा का गुणगान होने से उसे ज्यो का त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है। रचना इस प्रकार है:—

गीत

करै ध्यांन माहेस नै दान पातां करै,
नवै खड कीरती करै नामी।
करै हर भगत नै सेव दुनिया करै,
सिधाई साच री करै सामी ॥१॥
लगन परब्रंम री समाधो लगावै,
पथ ध्रम लगावै जगत पेखै।
लाय[थेलि]या पुन भाविया लगावै,
लगावै दाम सो साच लेखै ॥२॥

'गणपत' नाम लिखा है। छन्द की सुविधानुसार भी ऐसा अन्तर माना जा सकता है। इस प्रकार सूर्य-वश की पूरी पीढियां १० छप्पयों में वर्णित करते हुए कवि ने बड़ा परिश्रम-पूर्ण गवेषणात्मक कार्य किया है।

तोगसेन के पिता ज्ञानपति (गणपति) तथा उसके पिता पदारथ (पदार्थ) तक तो 'सूरजप्रकास' के वश वर्णन से बिल्कुल मेल दिखाई देता है, किन्तु तीसरे छप्पय से पदार्थ आगे वाले नाम 'सूरजप्रकास' से सर्वथा भिन्न हैं। समव है कवि ने किसी प्रचीन वश-वृक्ष से ये नाम लिये हों। जिस प्रकार से नामों का क्रम वर्णित किया गया है, वे तीसरे छप्पय से लेकर पांचवे छप्पय तक मे इस प्रकार हैं—

छप्पय

पदारत्थ नथराय, मही मडल मिणधारी।
महीप जै वरसेन, सुकलवछ कीत सुधारी।
वच्छराज ···ामदेव, भ्रम उपकेत लघू घुज।
धोमा[सु]र मथनराय, जैतराय महनराय सज।
आणदसेन प्रियागदेव, जस्सपाल खेतपाल रौ।
सामसुर मूज चाचक सरस, भावदेव व्रद भाल रौ।।३।।

दुरजणसल जसदेव, दखू व्रजधर दानेसुर।
हरवब नद अधुन्न, अमर व्रजाधि उबवर।
सुबाहु पदमराय, करनपाल इधकारी।
कपालेसुर कासीनाथ, अधोख लीलराय मुदारी।
लोहताख व्रन कद्रप सुलज, मगले[स]र वीसालपत।
मुज राजा सत के·· ··· ···, तपधारी तपियौ तखत।।४।।

रामदेव वासदेव, भाव चद्रसेन भणीजै।
चद्रखत्त वामदेव, पवनजस विधुख पुणीजै।
क्रियांतराय कुभराय, हवेज सेदेव धनजय।
जाल धर हेमराय, भु······ ··· ·· ·················भय।
गहरराज प्रथिराय·· ··············· जग उनत्थ रौ।
अमखत्तराय ...रो सुतह, करण अवच्चल कत्थ रौ।।५।।

अन्त में इन पीढ़ियों के सूर्य तक पहुँचने पर स्वय सूर्य भगवान तथा उसके वश की महिमा अन्तिम दो छप्पयों में वर्णित की गई है, जो इस प्रकार है—

छप्पय

जिण सूरज ऊगिया, भोम नभ तिम्मर भागै।
जिण सूरज ऊगियां, जीव जतु सब जागै।
जिण सूरज ऊगिया, हुवै सत कामा हल्ला।
जिण सूरज ऊगिया, दला [निस] चरा दहल्ला।
ऊगिया भाण वाधै [अणद], जोस हरख ह्वै जब्बरौ।
पाण बे जोड 'चिमनौ' पढै, कवर भाण कामब्ब रौ ॥१॥

कासब राव करूर, सिस्ट उपजाई साची।
दैत पनग नर देव, वेद सायद कहै वाची।
कासब रौ जस करा, जकौ मम बुध सो जाणा।
तिण कासब रौ तात, विकट मारीच वखाणा।
.... रिण व्रहम, कव उतपत साची कही।
जोधपुर कवर 'जसवत' भुजा, सोभ इता ची सग्रही ॥२॥

इस प्रकार ये छप्पय अनेक दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचनाएँ कहीं जा सकती हैं। उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त भी कवि की अनेक फुटकर रचनाएँ हैं, जिनमे 'जाटा री गुण सबदी', 'लालै वाणियै रा भूडा', होका तथा घी पर रचित प्रहेलिकात्मक छप्पय एव अनेक भजन व वांणी आदि मुख्य हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन अवशिष्ट रचनाओ का कोई विशेष मूल्य नहीं होने की वजह से केवल नामोल्लेख मात्र कर दिया है। उक्त सामग्री तो जैसी-तैसी भी खडित रूप मे प्राप्त हो सकी है, जिसके आधार पर इतना कहा गया है। इसके अतिरिक्त न मालूम कितने काव्य-रत्न अज्ञात स्थानो पर बिखरे पड़े होगे, यह एक अनुसधान का विषय है।

महाकवि श्री चिमनजी के काव्य का अध्ययन व विवेचन करने से इतना तो सिद्ध हो ही जाता है, कि वे डिंगल-भाषा के एक श्रेष्ठ व सफल कवि थे। उनके काव्य मे न तो कहीं शब्दों का तोड-मरोड है और न बलात् अलकारो को ठूँसने की चेष्टा ही, अपितु स्वाभाविक रूप से ही वयणसगाई, अनुप्रास व अन्य अलकार प्राय. आद्योपान्त परिलक्षित होते हैं। इस कवि के ग्रन्थों की उपलब्धि व पठन भी जहाँ एक अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य है, वहाँ कवि के जीवन मे रची गई समग्र काव्य-निधि का मूल्याकन निस्सदेह एक गम्भीर शोध का विषय है। जो कुछ सामग्री उपलब्ध हुई, वह भी प्रायः अपूर्ण रूप मे है। यहाँ पर हमारा ध्येय केवल उनकी काव्य-कृतियों की विवेचनात्मक वानगी प्रस्तुत करना ही रहा है।

यह कवि उस जमाने का है, जब समाज मे चारों ओर दासता और विलासिता का रग छाया हुआ था। श्री चिमनजी ने उस प्रवाह मे बह जाना स्वीकार नहीं किया,

अपितु समाज का उद्धार करने वाली दार्शनिक मनोवृति से ही काव्य-प्रणयन किया। शृङ्गारिक कविता लिखने के लिये इसी कारण इस कवि के पास कोई समय नहीं था। कवि का काव्य उसके व्यक्तित्व का परिचायक होता है। श्री चिमन कवि के काव्य मे एक ओर भक्ति-रस की धारा प्रवाहित होती दिखाई देती है, जिसमे भारतीय संस्कृति एवं उदारता का रूप मुखरित हो उठा है। साथ ही जीव का दैन्य और लघुत्त्व तथा स्वामी का समर्थ्य एव महत्त्व प्रकट हुआ है। दूसरी ओर उनके वीर-काव्य मे कहीं योद्धा की रणोत्सुकता, कहीं विद्युत गति से जूझते हुए रणबाकुरे की झाँकी, कहीं शस्त्रों की खनखनाहट, कहीं प्रतिशोध की प्रखर भावना तथा कही मूंछों की शौर्य भरी मरोड दिखाई पडती है।

कवि के वीर-काव्य मे तेजस्विता, धीरता, प्रचडता, निडरता एवं भीषणता के साथ प्रेरणा और स्फूर्ति भी पर्याप्त मात्रा मे परिलक्षित होती है। क्या वीरता और क्या भक्ति, दोनो ही क्षेत्रो मे कवि ने कहीं भी रूखापन नहीं आने दिया है। एक कारीगर की भांति इस कवि ने अपनी कृतियो को सजाया है, बल्कि उस सजावट मे स्वाभाविकता का सुन्दर योग है। शब्दावली तो मानो कवि की जिह्वा पर खेलती है। भाषा विशुद्ध डिंगल है तथा कहीं पर भी यतिभग दोष नहीं आया है। मुहावरों का मेल, स्वाभाविक अनुप्रासों की छटा, उक्ति-सौन्दर्य एव अर्थ गौरव भी कवि की अपूर्व प्रतिभा के सुचक हैं। काव्य को मानव जाति के अनुभवो, भावो कार्यो तथा अतर्वृत्तियो का समष्टि रूप कहा गया है। इन सब बातों को ध्यान मे रखते हुए यह कहा जा सकता है, कि जब तक मातृभूमि का मोह, अत्याचारों के प्रति विद्रोह, अमरत्त्व हेतु मरण का सहर्ष आह्वान तथा भारतीय संस्कृति व धर्म का सम्मान रहेगा, तब तक इस देश की धरती पर महाकवि श्री चिमनजी के काव्य को भी जनता प्रेम और आदर की दृष्टि से पढ़ती रहेगी। ऐसे कवि-रत्नों के लिये 'श्री भर्तृहरि-शतक' मे ठीक ही कहा है, कि—

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा. कवीश्वरा.।
नास्ति येषा यश काये जरामरणजं भयम्॥'

※ इति शुभम् ※

परिशिष्ट ३

नामानुक्रमणिका

(भ)

(म)

(र)

(ल)

परिशिष्ट ४

छन्दानुक्रमणिका

पद्धरी